सत्साहित्य-प्रकाशन

भारत में पंचायत-प्रणाली के महत्त्व, इतिहास और
वर्तमान स्वरूप का विवेचन

विद्यासागर शर्मा

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९६३
मूल्य
साढ़े तीन रुपये

मुद्रक
भारत मुद्रणालय,
शाहदरा-दिल्ली

प्रकाशकीय

हमारे देश में पंचायतों की परम्परा नई नहीं है। प्राचीन काल मे पंचायतें होती थीं और देश के शासन का संचालन उन्हींके द्वारा होता था। वस्तुतः उन दिनों शासन विकेन्द्रित था और सत्ता किसी एक ही व्यक्ति के हाथ में सीमित अथवा किसी एक ही स्थान पर केन्द्रित न होकर पंचायतों में निहित थी। लेकिन समय के साथ उनके स्वरूप मे परिवर्तन होता गया। ब्रिटिश शासन-काल में इस परम्परा को धक्का लगा और ग्राम-राज्य की यह प्रथा तहस-नहस हो गई। भारत के स्वतन्त्र होने पर देश के नेताओं का ध्यान फिर उस ओर गया और उन्होंने पंचायतों का पुनः संगठन किया। आज सारे देश में पंचायतों का जाल-सा विछ गया है। यद्यपि अभीतक उनका पूर्ण विकास नहीं हुआ है, तथापि उनके द्वारा निस्सन्देह अच्छा काम किया जा रहा है।

इस पुस्तक में भारत में पंचायतों का प्राचीन काल से लेकर अवतक का इतिहास दिया गया है। इसे पढ़कर भारत में पंचायतों के विकास की पूरी कहानी तो मालूम होती ही है, साथ ही यह भी पता चलता है कि वर्तमान भारत में उनका क्या स्थान है, वे किस प्रकार काम कर रही हैं और उनका संगठन आदि कैसा है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक के अन्तिम भाग में लेखक ने कुछ मौलिक सुझाव भी दिये हैं, जो विचारणीय हैं।

उपयोगी होने के साथ-साथ यह एक बड़ा ही सामयिक प्रकाशन है। हमें आशा है कि देश के प्रत्येक क्षेत्र में इसका स्वागत होगा।

दूसरा संस्करण

बहुत-सी नई जानकारी से युक्त पुस्तक का यह दूसरा संशोधित संस्करण पाठकों के हाथों में पहुंच रहा है। शासन में पंचायतों के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए महत्त्व के साथ ही इस उपयोगी प्रकाशन की लोकप्रियता भी पाठकों में बढ़ती जायगी, ऐसा हमें विश्वास है।

निवेदन

गत पांच वर्षों में देश में पंचायतराज-सम्बन्धी नये-नये प्रयोग हुए हैं। इस दिशा में बहुत चिन्तन, अन्वेषण तथा विचार-विनिमय होता रहा है। 'बलवन्तराय मेहता-कमेटी' की रिपोर्ट तथा विभिन्न स्वायत्त शासन-सम्मेलनों ने पंचायत-राज को देश की विशेष नीति के रूप में अपनाया है। सामुदायिक विकास-मन्त्रालय ने श्री एस० के० दे के नेतृत्व में लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण द्वारा ग्रामीणों के उनके अपने नेतृत्व में विकास की अभिनव पद्धति को न केवल जन्म दिया है, अपितु उसे क्रियान्वित भी किया है। श्री जयप्रकाश नारायण ने पंचायतराज-सम्बन्धी एक व्यक्त, स्पष्ट तथा मौलिक विचारधारा प्रस्तुत की है। इस सबको ध्यान में रखकर पुस्तक को और अधिक लाभप्रद बनाने के विचार से इसमें कुछ परिवर्तन एवं परिवर्द्धन किये गए हैं। मूल निबन्ध को प्रारंभ में संक्षेप में दे दिया है और वर्तमान गतिविधियों का नये अध्यायों में समावेश कर दिया गया है। सामुदायिक विकास-मंत्रालय के इस सम्बन्ध में जारी किये गए कुछ गश्ती पत्रों तथा निर्णयों का सारांश भी दे दिया गया है।

आशा है, इन परिवर्तनों के साथ पुस्तक का यह नवीन संस्करण अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

—विद्यासागर शर्मा

विषय-सूची

: १ .

विषय-प्रवेश

यदि हम मनुष्य की तुलना अन्य प्राणियों से करें और यह जानने की चेष्टा करें कि वह किन बातों में उन प्राणियों से श्रेष्ठ है, तो हम इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि मनुष्य की श्रेष्ठता का सबसे बड़ा कारण है उसकी सोचने और समझने की शक्ति। इस शक्ति को साधारणतः बुद्धि तथा विवेक के नाम से पुकारा जाता है और अपनी इसी शक्ति के कारण उसे ईश्वर की सर्वोत्तम कृति माना जाता है।

आदिम मानव

इस बुद्धि तथा विवेक की शक्ति के बल पर मानव ने आज विज्ञान के क्षेत्र में महान् उन्नति कर ली है, जिससे उसके आत्म-रक्षा तथा सुख-सुविधा के साधनों में भी वृद्धि हुई है। मनुष्य में आत्म-रक्षा तथा वंश-वृद्धि की भावना आरम्भ से ही प्राकृतिक रूप से है, और इस भावना के वशीभूत होकर कई बार मानव स्वार्थ से अन्धा भी हुआ है। परन्तु यहां भी इसी बुद्धि-विवेक ने उसे सहारा दिया है और सही रास्ते पर डाला है। यदि यह क्रियाशील ...क मानव के पास न होता तो उसकी आदिम स्थिति में आज भी कोई ...न न आता और आज भी वह वही पशुवत् जीवन व्यतीत करता। हम जब आदिम मानव पर दृष्टि डालते हैं तो हम उसे किसी कन्दरा ... किसी वृक्ष के नीचे बैठा हुआ पाते हैं। धूप, वर्षा, सर्दी, गर्मी, आंधी-...ी से बचाव के लिए उसके पास कोई साधन नहीं और हम उसे जंगली ...नक जन्तुओं के भय से व्याकुल, किसी वृक्ष पर अकेला बैठा हुआ पाते ...। उसकी दशा बड़ी दीन-हीन है। न कोई निश्चित रहने का ठिकाना है न घर-बार और न परिवार है। उसका यदि किसी हिंसक जन्तु से सामना होजाता है तो बेचारे को उसका ग्रास बनना पड़ता है। यदि वह बीमार हो जाता है तो स्वयं ही ठीक हो गया तो हो गया, नहीं तो वहीं पड़ा-पड़ा मर

जाता है। कोई उसका अपना नहीं, कोई उसका सहायक नहीं, कोई उसका सगा-सम्बन्धी या मित्र नहीं, जो उसकी सहायता करे। उस समय पारिवारिक जीवन का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। स्त्री-पुरुष का संसर्ग घर बसाने के लिए न होकर केवल शारीरिक भूख मिटाने के लिए ही था। सन्तति के प्रति दम्पती के मन में कोई कर्तव्य-भावना नहीं थी। परन्तु मानव ने अपनी बुद्धि से शीघ्र ही समझ लिया कि एक-दूसरे के सहयोग और सहायता से अपने दुःखों और भय को बहुत-कुछ कम किया जा सकता है और किसी हद तक निर्भय तथा सुरिक्षत जीवन विताया जा सकता है। जब भी किसी मानव को अकेले अपने से किसी बलशाली जन्तु का सामना करना पड़ा होगा तो उसे अवश्य ही मुंह की खानी पड़ी होगी और इस हार ने ही उसे संगठित होने के लिए प्रेरणा दी होगी। उस जन्तु का दो-चार मनुष्यों से वास्ता पड़ने पर उसे जान से हाथ धोने पड़े होंगे। इस विजय ने ही उसको सहयोग तथा सामाजिकता का पाठ पढ़ाया होगा। इसी प्रकार आगे जीवन के हर स्तर पर मानव को इस बात का ज्ञान भली-भांति हो गया होगा कि सामूहिक जीवन में, समाज में ही, हमारा कल्याण है, समाज में ही हम हर प्रकार की उन्नति कर सकते हैं तथा सुख-शान्ति से रह सकते हैं। इस विचार से प्रभावित होकर, हम देखते हैं कि मानव-समाज में परिवार की उत्पत्ति हुई, जंगल से पेड़ों के पत्तों या छालों के उसने वस्त्र बनाना आरम्भ किया, जंगली जानवरों का मुकाबिला करने के लिए औज़ार बनाये और सर्दी-गर्मी, बारिश-आंधी से बचने के लिए उसने झोंपड़ों का निर्माण किया। इस प्रकार धीरे-धीरे मानव-समाज की काया पलटती गई और आज जब हम वर्तमान सुसभ्य समाज को देखते हैं तो यह खयाल भी नहीं आता कि किसी समय वह इस तरह का जीवन यापन करता रहा होगा। मानव की इस उन्नति के पीछे उसकी बौद्धिक तथा मानसिक वे मौलिक भावनाएं हैं, जो उसे अन्य प्राणी-संसार से पृथक् करती हैं, और वे हैं दया, करुणा, सहानुभूति, उदारता, त्याग, सहिष्णुता, विवेक, स्मृति, मनन आदि।

मानव-समाज के इस वैज्ञानिक विकास-क्रम के बारे में भले ही मतभेद हो, परन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि सृष्टि के प्रारम्भ में मानव-समाज में विषमता कम थी। ज्यों-ज्यों विकास के इस लम्बे पथ पर मानव-

समाज अग्रसर होता गया, त्यों-त्यों उसमें विषमताएं आती गईं। मनुष्य स्वभाव से ही एक सामाजिक प्राणी है और जबसे यह मूक प्राणी संकेतों को त्यागकर, वाणी का प्रयोग करके अपने मनोभावों की अभिव्यंजना करने लगा, उसका मस्तिष्क उन्नत तथा परिमार्जित होकर निज हित के साथ-साथ पर-हित की चिन्ता करने की क्षमता प्राप्त करने लगा। उसमें परिवार, समाज, शासन, राजा आदि सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक संस्थाओं के निर्माण का बीज अंकुरित होने लगा।

हमें यहां इस विवाद में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि प्रारम्भिक मानव-समाज पूर्ण-रूपेण विकसित तथा उन्नत था या नहीं। यह तो समाज-शास्त्र के विद्यार्थियों का विषय है। पर यह बात सर्वमान्य है कि आदिम मानव-समाज में कलह-कल्पना, भ्रष्टाचार, लड़ाई-झगड़ा, दुराचार और अपराध बहुत ही कम थे। लोगों का रहन-सहन, आचार-विचार शुद्ध तथा सादा था। वे सुख, शान्ति तथा समृद्धि से सम्पन्न थे। प्रत्येक के हृदय में बन्धुता तथा मेलजोल की भावना विद्यमान थी। यह सहृदयता, मेलजोल तथा बन्धुता की भावना प्राकृतिक आवश्यकताओं के कारण पैदा हुई या उसकी उत्पत्ति का कारण मानव के मौलिक स्वाभाव की उदारता थी, इसके बारे में भी बहुत मतभेद है।

पंचायतों की परपरा

पंचायतों की इस परम्परा का इतिहास बड़ा मनोरंजक है। इंगलिस्तान के प्रारम्भिक एंग्ल, सैक्सन तथा जूट कबीलों की पृष्ठभूमि ट्यूटानिक है। उनमें भी शुरू में ग्राम-संस्थाएं थीं और वे कबीले के वयोवृद्ध व्यक्ति द्वारा शासित होती थीं। परन्तु सैनिक सत्ता आने से वही वयोवृद्ध व्यक्ति इतना शक्तिशाली हो गया कि उसने दैवी शक्ति-सम्पन्न समझी जानेवाली बादशाह की संस्था को जन्म दिया, जिससे मौलिक ग्राम्य लोकतन्त्री संस्था का अन्त हो गया। प्रिंस क्रोपाटकिन ने अपनी पुस्तक 'संघर्ष नहीं सहयोग"[1] (म्यूचुअल एड) में यूरोप की इस प्रकार की अर्ध-स्वतन्त्र ग्राम्य इकाइयों का विवरण दिया है। इस प्रकार की संस्थाएं वस्तुतः विश्व के हर भाग में थीं। परन्तु यह एक ध्रुव सत्य है कि अन्य देशों में सम्भवतः

१. यह पुस्तक 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित हुई है।

के आगे बढ़ने के साथ-साथ एकतांत्रिक शासन भी पनपता गया और ग्राम्य इकाइयां सत्ताहीन हो गईं। यह श्रेय भारत को ही है कि ग्रामों के इस मौलिक संगठन का शासन-क्रम शताब्दियों तक चलता रहा। महाभारत के काल तक 'सभा' का महत्व रहा और गुप्तकाल में इसका फिर से विकास हुआ। दक्षिण भारत में तो अंगरेजी शासन आने तक राजा के निर्वाचन की पद्धति पर अमल होता रहा। 'मालाबार गजेटीयर' में नामर जाति के संघों का जिक्र करते हुए लिखा गया है—"ये संघ प्रजा की प्राचीन प्रथाओं और सनातन अधिकारों की रक्षा करते थे। यही नहीं, ये राजा के नियुक्त किये हुए मन्त्रियों को अनुचित कार्यों के लिए दण्ड भी देते थे और देश की पार्लमेंट के समान थे।"

जहां अन्य देशों में परिवार का विकास कबीलों तथा एकतान्त्रिक राजाशाही में हुआ, और राजा का दैवी अधिकार समझा जाता था, वहां भारत में परिवार का विकास ग्राम तथा वंश-जाति-भेद से मुक्त लोक-तान्त्रिक पंचायती परम्परा में हुआ। परतन्त्रता के अन्ध युग में इस पद्धति को बड़े आघात पहुंचे। परन्तु महात्मा गान्धी के स्वराज्य आन्दोलन से उसकी सार्थकता को पहचाना गया और इसे पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया।

स्वतन्त्रता के पश्चात संविधान द्वारा इसे मान्यता प्राप्त हुई और तबसे इस पद्धति के विकास में देश प्रयत्नशील है। श्री बलवन्तराय मेहता कमेटी की रिपोर्ट को राष्ट्रीय विकास-मण्डल द्वारा मान्यता प्राप्त होने पर तो आज पंचायती राज सारे विश्व को एक नये और वास्तविक लोकतन्त्र का स्वरूप दिखलाने का दावा कर रहा है।

महात्मा गान्धी के नेतृत्व में भारत का स्वतन्त्रता-आन्दोलन रच-नात्मक, आर्थिक तथा राजनैतिक ध्येयों से परिपूर्ण रहा। लेखक का जो किंचिन्मात्र सम्बन्ध स्वतन्त्रता-पूर्व राजनैतिक आन्दोलन से रहा है, उसमें ही उसको पंचायत-राज अथवा नये अध्यात्मिक लोकतन्त्र के विचारों को विकसित करने की प्रेरणा मिलती रही है। इन्हीं विचारों को उसने अपनी प्रथम पुस्तिका 'मानवता-दिग्दर्शन' में लिपिबद्ध किया और फिर १९४८ में पंचायत-राज पर प्रथम निबन्ध अंगरेज़ी में लिखा। आगे की पंक्तियों में

उसी निबन्ध का संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रागैतिहासिक मानव

आरम्भ से ही मनुष्य सुख और आनन्द की खोज में रहा है। अपने जीवन को अधिकाधिक सुखमय तथा आनन्दमय बनाने के लिए उसने भांति-भांति के प्रयोग किये हैं। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र में भी अधिक सुख, शान्ति और आनन्द का वातावरण बनाने के लिए मनुष्य ने आदिकाल से प्रयास किये हैं। सामाजिक जीवन के उदय का मूल कारण यही था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य को स्वेच्छा से कई बन्धन भी स्वीकार करने पड़े। मनुष्य का सारा आचरण इस बात की पुष्टि करता है। एक हद तक मनुष्य को इस प्रकार लगाये गए बन्धन अधिक लाभप्रद लगे, लेकिन कालान्तर में, जब ये अंकुश बहुत अधिक बढ़ गये तो स्वाभाविक था कि वे उसे अत्यधिक लगने लगे और उसकी अनेक परेशानियों के कारण हो गये।

हमारे मत में जबतक 'व्यक्ति समाज के लिए और समाज व्यक्ति के लिए' का सिद्धान्त पूर्णतः चरितार्थ होता रहा—जबतक व्यक्ति का क्षेत्र परिवार और ग्राम तक सीमित रहा—तबतक मनुष्य को इन परेशानियों का इतना सामना नहीं करना पड़ा। इसका कारण यह है कि तब सामाजिक संगठन इतना विस्तृत तथा जटिल न था कि व्यक्ति व्यक्ति का विचार न कर सके। इस छोटे-से समाज में, जो इने-गिने परिवारों से बने ग्रामों तक सीमित था, व्यक्ति पूरे ग्राम-समाज को अपने सीमित ज्ञान की विचार-परिधि में सुगमतापूर्वक रख सकता था।

लेकिन जीवन के इस प्रकार सामाजिक हो जाने से उसके नियमन की आवश्यकता पड़ी। सामाजिक इकाई धीरे-धीरे बड़ी होती गई, और कुछ समय के बाद उसमें कई-कई गांवों के समूह आ गये। फिर राज्यों की उत्पत्ति हुई और समाज के प्रबन्ध में अधिकाधिक केन्द्रीकरण होता गया। हर देश में सत्ता सम्राट में केन्द्रित होने लगी। देश की सामूहिक सुरक्षा और व्यवस्था बनाये रखने के लिए इस प्रकार के केन्द्रीकरण की आवश्यकता और अधिक बढ़ गई। हमारे देश में भी सम्राटों का उदय हुआ। पर जैसा कि प्राचीन इतिहास से प्रकट है, राज्य और राजा के उदय के

बाद भी भारत में ग्राम-स्वशासन चलता रहा।

पर इस प्रकार स्थापित कोई भी व्यवस्था मनुष्य की सभी समस्याओं का समाधान न कर सकी। मानव-इतिहास में समय-समय पर सामने आनेवाली इन सामाजिक-राजनैतिक व्यवस्थाओं की असफलता का मुख्य कारण यही है कि वे व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्णतः संतुष्टि नहीं कर सकीं। दूसरी तरफ इतिहास इस बात का साक्षी है कि जहां पंचायतों ने कई आक्रमणों और विप्लवों के बावजूद देश की संस्कृति तथा ग्रामों के स्वावलम्बन को अक्षुण्ण रखा, वहां अखिल राष्ट्रीय भावना इस प्रणाली के आधीन न पनप सकी। और तभी विष्णुगुप्त चाणक्य का विचार था कि पंचायतों की सीमा इतनी रहनी चाहिए कि वे अखिल देशीय शक्ति के प्रति उदासीन होकर उसे निर्बल न करें।

गांधीवादी पंचायत-राज

सामाजिक संगठन के इसी आधारभूत विरोधाभास को देखते हुए गान्धीजी ने ग्राम्य संगठनों और पंचायती व्यवस्था पर जोर दिया था। उनके मत में पंचायत-राज ही इन समस्याओं का एकमात्र उत्तर था। लोक-सेवक-संघ की नियमावली की भूमिका में उन्होंने लिखा था—"देश को सब शहरों और कस्बों से ध्यान हटाकर सात लाख गांवों पर ध्यान देना होगा और उनके लिए सामाजिक, नैतिक और आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करनी होगी।" वह आधुनिक ढंग के संसदीय राज के विरोधी थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' में एक जगह लिखा है—

"इंगलैण्ड की इस समय जो हालत है, उसे देखकर तो सचमुच दया आती है। मैं ईश्वर से मनाता हूं कि वैसी हालत भारत की कभी न हो। जिसे आप संसदों की जननी कहते हैं, इंगलैण्ड की वह संसद तो बांझ और वेश्या के समान है। ये दोनों शब्द कड़े हैं, पर उसपर पूरी तरह लागू होते हैं?"[१]

उन्होंने एक अन्य स्थान पर लिखा था कि पंचायतों का आयोजन एक मीनार की तरह होगा। बुनियाद में ग्राम-पंचायतें होंगी और संगठन ऐसा होगा जहां व्यक्ति ग्राम के लिए, ग्राम देश के लिए न्योछावर होने को

[१] 'हिन्द स्वराज्य, पृष्ठ २४, 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित

तैयार रहा करेंगे।

अमरीकी सम्वाददाता श्री ड्रिऊ पियरसन से बातचीत करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था—

"भारत में कुल ७ लाख ग्राम हैं। हर ग्राम उसके वासियों द्वारा शासित होगा, जहां सबको वोट के अधिकार होंगे और इस तरह देश के शासन के सम्बन्ध में ४० करोड़ के स्थान पर ७ लाख वोट रह जायंगे। ग्राम अपने जिला-शासन का निर्वाचन करेंगे और जिले राष्ट्रपति का निर्वाचन करेंगे, जो समस्त देश के शासन का प्रधान तौर पर जिम्मेदार होगा।"

इन उद्धरणों से प्रकट हो जाता है कि महात्माजी की पंचायत-राज-पद्धति संसदीय पद्धति से भिन्न है। पंचायत-पद्धति सच्चा लोकतन्त्र व सच्चा स्वराज प्रदान करनेवाली पद्धति है। इस तरह महात्मा गान्धी ने पंचायती राज का एक ऐसा स्वरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया, जिसमें ग्राम-स्वावलम्बन के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं की पुष्टि का भी संरक्षण हो सकेगा। इसमें तृस्तरीय राज्य का क्रम ग्राम, जिला तथा देशीय स्तर प्रस्तावित किया गया है। परन्तु अभी कोई देश इस पद्धति पर पूर्णत: अमल करने के लिए तैयार नहीं है। भारत का शासनतन्त्र आज भी लगभग वही है, जो अंग्रजों के समय था। इस अवस्था का चित्र खींचते हुए श्री मंजूर अली सोख्ता ने अपनी पुस्तक 'बापू की वसीयत' में लिखा है—

"अंग्रेज गये, लेकिन अंग्रेजियत बाकी है। यूरोप गया, लेकिन यूरोपीय सभ्यता बाकी है। जैसा कि हम कह चुके हैं, बापू पश्चिमी सभ्यता को पश्चिमी राज से ज्यादा जहरीली और खतरनाक समझते थे। पर जब खुद देश की संसदीय सरकार इस सभ्यता को फैलाने का जरिया बन गई हो, तब इससे बचने का उसके सामने कौन-सा जरिया बाकी रह गया है। ...पुरानी सभ्यता में धर्म के चार चरण माने जाते थे। अंग्रेजी राज ने अधर्म के चार चरण कायम किये। ये चार चरण थे—पुलिस राज, अदालत राज, पटवारी राज और अधिकारी राज। लोगों को आशा थी कि अंग्रेज यहां से जाते समय अपने इन चार चरणों को भी अपने साथ लेते

जायंगे, पर वे विरासत में उन्हें कांग्रेस को दे गये हैं और आज कांग्रेस खुद इन चारों की पोषक बनी हुई है।"

सर्वोदय-समाज की सर्वोदय-योजना में भारत की परम्परानुकूल तथा मानव के स्वभावानुरूप पंचायती राज की स्थापना पर जोर दिया गया है। परन्तु जितना ध्यान इस ओर दिया जाना चाहिए था, उतना नहीं दिया गया है। हम औपचारिक लोकराज से इतने प्रभावित हो गये हैं कि उससे निकलना भी कठिन-सा प्रतीत होने लगा। परन्तु इस पृष्ठभूमि में देश के पुर्निर्माण की योजनाओं में ग्रामों और ग्रामों के स्वावलम्बन की ओर कम ध्यान दिया जाना स्वाभाविक होता है।

उपरोक्त गान्धीवादी योजना को कार्यरूप में परिणत करने के लिए कई समस्याओं पर विचार करने की आवश्यकता होगी, यथा—

१. ग्राम क्या है?
२. क्या तहसील-पंचायत की आवश्यकता है?
३. जिला-पंचायत का क्या स्वरूप हो?
४. इनके स्वावलम्बन के क्या उपाय हों?
५. कार्य-विभाजन किस प्रकार हो?
६. जिला-शासन के ऊपर शासन का क्या स्वरूप हो?

इन्हीं प्रश्नों पर इस भूमिका में कुछ विचार रखने का प्रयत्न किया गया है।

ग्राम तथा पंचायत की परिसीमा

पंचायत-राज की इकाई गांव ही होना चाहिए। पर समस्या यह है कि गांव किसे कहें? भारत में पांच व्यक्तियों की जनसंख्या से लेकर ५००० की जनसंख्या तक के गांव हैं। ऐसी दशा में जबतक हम ग्राम की जनसंख्या के आधार पर कोई एक इकाई निश्चित न कर लें तबतक इस संगठन का ढांचा बनाना कठिन ही रहेगा। यदि हम भारत के क्षेत्रफल, जनसंख्या तथा इसके विचित्रकाय ग्रामों पर एक विहंगम दृष्टि डालें तो हम इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि साधारणतया ग्राम की इकाई के लिए एक सहस्र जनसंख्या पर्याप्त होगी। इसके लिए कहीं तो हमें कम जनसंख्यावाले कई ग्रामों के समूह बनाने पड़ेंगे, और कहीं-कहीं पर हमें अधिक जनसंख्यावाले

ग्रामों को कुछ खण्डों में बांटना पड़ेगा और इसमें भौगोलिक परिस्थितियों का भी विचार रखना पड़ेगा। इस प्रकार पांच इकाइयों को मिलकर एक पंचायती क्षेत्र का निर्माण करना उचित होगा। अभी तक तो पंचायत-क्षेत्र के सभी वयस्क मतदान करके एक-एक प्रबन्ध-समिति चुनते हैं। इस समिति के सदस्यों की संख्या हर राज्य में भिन्न है। चुनाव हाथ उठाकर होता है। मतदान की इस पद्धति पर बड़ा मतभेद है। इससे मतदान की स्वतन्त्रता में बाधा पड़ने की सम्भावना रहती है। अधिकांश लोग गुप्त मतदान के पक्ष में हैं।

पंच कैसे हों ?

पंचायतों में जहां यह आवश्यक है कि रचनात्मक प्रवृत्तियोंवाले लोग पंच बनें,वहां यह भी आवश्यक है कि वे क्षेत्र के भिन्न-भिन्न ग्रामों का भली प्रकार प्रतिनिधान कर सकें। अतः यही ठीक होगा कि प्रत्येक ग्राम-क्षेत्र से पांच-पांच पंच चुने जायं और फिर वे अपना प्रधान चुन लें। साधारणतया यह चुनाव सर्वसम्मति से होना चाहिए। इसके अतिरिक्त पंचायती चुनाव दलबन्दी के आधार पर नहीं होना चाहिए। मत प्राप्त करने के लिए पंचायत की सदस्यता के लिए रचनात्मक कार्य एक आवश्यक शर्त होनी चाहिए।

पंचायतों के कर्तव्य तथा अधिकार

इस प्रकार संगठित ग्राम-पंचायत को अपने क्षेत्र में छोटे पैमाने पर शासन के अधिकार देना ठाक होगा।

अब यह देखना है कि पंचायतों के कार्यक्षेत्र में किन-किन बातों को लिया जा सकता है। साधारणतया इस क्षेत्र में निम्नलिखित कार्य रखने चाहिए—

१. शिक्षा (प्रारम्भिक तथा प्रौढ़ साक्षरता)
२. स्वास्थ्य
३. सहकारी व्यापार
४. वन-प्रबन्ध
५. पथ-निर्माण
६. खाद

७. कर-वसूली

८. न्याय

९. विविध

शिक्षा

सामाजिक जीवन में शिक्षा के महत्व को किसी प्रकार कम नहीं किया जा सकता। यह सब मानते हैं कि शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था हमारी आवश्ककताओं तथा परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। खासकर देहातों के लिए यह बात और अधिक लागू होती है। ग्रामों में शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा का प्रबन्ध वहीं के लोगों के हाथ में हो। इसलिए इस स्तर पर शिक्षा पंचायतों के नियन्त्रण में रहनी चाहिए। यह शिक्षा कृषि तथा ग्रामोद्योगों की तरफ रुचि उत्पन्न करनेवाली, आकर्षक, सबके लिए सुलभ और स्वावलम्बन की भावनाएं पैदा करनेवाली होनी चाहिए।

यह पहले कहा जा चुका है कि प्रारम्भिक ग्राम की जनसंख्या लगभग १००० होनी चाहिए। हर प्रारम्भिक ग्राम में एक प्राथमिक पाठशाला होनी चाहिए। पाठशाला में बालक-बालिकाओं को साथ-साथ शिक्षा दी जानी चाहिए। ऐसी हर पाठशाला में छात्रों की संख्या लगभग १०० होगी। इसके लिए पाठशाला में दो अध्यापक होने चाहिए। अध्यापकों में एक पुरुष और एक स्त्री होनी चाहिए। साधारणतया इन पाठशालाओं के अध्यापकों के तबादले नहीं होने चाहिए। यदि तबादला ठीक भी समझा जाय तो वह पंचायत-क्षेत्र के अन्दर ही होना चाहिए। जहांतक सम्भव हो, अध्यापक पंचायत-क्षेत्र के ही होने चाहिए।

पाठशाला के साथ ही एक कृषि-क्षेत्र होना चाहिए। यह लगभग दस एकड़ का होना चाहिए। जहां कृषि-क्षेत्र स्थापित न किये जा सकें (जैसे नागरिक क्षेत्रों में), वहां दूसरे घरेलू उद्योगों की शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। पाठ्यक्रम स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए।

शिक्षा-पण्डित भले ही कुछ भी कहें, परन्तु ग्रामों की आवश्यकता की मांग तो यही है कि प्रारम्भिक स्तर पर रचनात्मक ढंग से अक्षर-ज्ञान गणित, भूगोल, विज्ञान, इतिहास तथा संस्कृत का प्रारम्भिक ज्ञान ही

पर्याप्त होगा। पाठशाला का कृषि-क्षेत्र इस प्रकार केवल कृषि-कार्य को ही प्रोत्साहित नहीं करेगा, अपितु वह छात्रों की रचनात्मक वृत्तियों को भी जाग्रत तथा उन्नत करेगा।

कृषि-क्षेत्र के साथ छोटी-सी गौशाला, एक बगीचा तथा एक पौधों की नरसरी भी होनी चाहिए। अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को महंगाई-भत्ते की जगह पैदावार का कुछ भाग दिया जा सकता है और इस प्रकार नकदी में दिये जानेवाले वेतन को और कम रखा जा सकता है। पैदावार को ग्रामीण सहकारी सभा द्वारा मण्डियों में पहुंचाया जा सकता है। ऐसे कृषि-क्षेत्रों की आय का संक्षिप्त अनुमान इस प्रकार किया जा सकता है—

मद	क्षेत्रफल	आय
अनाज	५ एकड़	३२०० रु०
आलू अथवा अन्य कमाई-वाली पैदावारें	२½ ,,	२६०० ,,
बागीचा	२ ,,	१००० ,,
सब्जी	½ ,,	२०० ,,
		७००० रुपये

पंचायत-क्षेत्र के पांचों विद्यालयों से इस प्रकार होनेवाली आय ३५,००० रुपये के लगभग होगी। ऊपर की तालिका में घास तथा भूसे आदि की गिनती नहीं की गई है, क्योंकि यह बैलों तथा गौशाला के पशुओं को खुराक के रूप में इस्तेमाल कर लिया जायगा।

इन पाठशालाओं की विशेषता यह होगी कि छात्रों को पुस्तकें तथा स्टेशनरी आदि की पंचायतें ही देंगी। पंचायत के प्रधान कार्यालय के स्थान पर दो माध्यमिक (सेकण्डरी) पाठशालाएं होनी चाहिए, एक बालकों के लिए, दूसरी बालिकाओं के लिए। बालकों के विद्यालय के साथ कृषि-क्षेत्र होगा और बालिकाओं के विद्यालय के साथ कातने, बुनने आदि के केन्द्र। इस तरह पंचायत-क्षेत्र में दो माध्यमिक पाठशालाएं और पांच प्राथमिक पाठशालाएं होंगी।

यदि निम्न तालिका के आधार पर एक प्राथमिक पाठशाला का वार्षिक व्यय ४३८० रुपया मान लिया जाय तो पांच पाठशालाओं का

व्यय लगभग २२,००० रुपया होगा, जिसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हो सकता है—

मद	व्यय
२ अध्यापक (वेतन ५० रु०+२५ रु०)	१८०० रु०
२ चपरासी (वेतन ४५ रुपया)	१०८० ,,
पुस्तकें तथा स्टेशनरी	१००० ,,
बैल, औजार तथा घास आदि	५०० ,,
	४३८० रुपये

यह अनुमान वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार है। अनाज के सस्ते होने पर इसमें और कमी आ सकती है। स्पष्ट है कि प्रारम्भिक शिक्षा पर जो व्यय होगा, वह इन कृषि-क्षेत्रों की आय में से ही निकल सकेगा। यह केवल शिक्षा की बात है। पंचायत की आय-व्यय पर विस्तार से आगे विचार किया जायगा। इन पाठशालाओं के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम तथा पाठ्य-पुस्तकें तैयार करनी होंगी।

प्रौढ़ शिक्षा का कार्य भी यही पाठशालाएं करेंगी। पर यह काय इतना जटिल तथा बड़ा है कि निश्चित योजना के बिना इसमें आगे नहीं बढ़ा जा सकता। पंचायती शिक्षा-योजना के शुरू होने के बाद ही इस कार्य की शुरूआत की जा सकती है।

प्रौढ़ शिक्षा के लिए उपयुक्त पुस्तक से अक्षर-ज्ञान के साथ-साथ गणित, भूगोल, इतिहास, विज्ञान, अर्थशास्त्र, नागरिक शास्त्र, कृषि, समाजशास्त्र, सदाचार आदि सभी विषयों की प्रारम्भिक शिक्षा दी जा सके। ऐसी पुस्तकें रोचक तो होनी ही चाहिए, साथ ही वे उपयोगी ज्ञान भी प्रदान करनेवाली होनी चाहिए।

जब बच्चे किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं तब इनमें यौन-भावनाएं जगती हैं। अतः १२ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक सह-शिक्षा उचित नहीं होगी। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद बालक-बालिकाओं के अलग-अलग शिक्षण का प्रबन्ध होना ही उचित होगा। इन पाठशालाओं में छात्रों के भविष्य

का ध्यान रखते हुए उसीके अनुसार उपयुक्त शिक्षा दी जानी चाहिए। इसके अतिरिक्त ये पाठशालाएं कई ग्रामोपयोगी कार्य भी करेंगी। हर बाल-पाठशाला में एक छोटी-सी वर्कशाप होगी, जहां विद्यार्थियों को तो प्रशिक्षण मिलेगा ही, साथ ही उसमें ग्रामवासियों के लिए उपयोगी औजार आदि भी तैयार किये जा सकेंगे। इसी प्रकार विद्यालयों के खेत भी एक प्रकार के ऐसे प्रायोगिक खेत होंगे, जहां उन्नत बीजों और फसलों से सम्बन्धित प्रयोग किये जायंगे।

स्वास्थ्य

देहातों में स्वास्थ्य की समस्या बड़ी कठिन और उलझी हुई है। इस समस्या के कई पहलू हैं। सबसे पहली बात यह है कि देहातों में चिकित्सालय नहीं के बराबर हैं। दूसरी बात चिकित्सा-पद्धति की है। देश में कई चिकित्सा-पद्धतियां प्रचलित हैं, जैसे ऐलोपैथी, होमियोपैथी, आयुर्वेदिक, यूनानी आदि। तीसरी बड़ी बात देहातों में जन-स्वास्थ्य की है।

जहांतक चिकित्सालयों की कमी का प्रश्न है, उसके बारे में अब यह सर्वसम्मत स्पष्ट मत है कि गांवों में चिकित्सालयों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। हर गांव में कम-से-कम एक छोटा औषधालय अवश्य होना चाहिए।

चिकित्सा की विभिन्न पद्धतियों का प्रश्न अधिक टेढ़ा है। इसमें कोशिश इस बात की करनी चाहिए कि विभिन्न पद्धतियों में सामंजस्य स्थापित किया जाय। प्रत्येक चिकित्सक को सभी पद्धतियों के सामान्य-ज्ञान के अतिरिक्त एक पद्धति का विशेष ज्ञान अवश्य होना चाहिए। ग्राम-चिकित्सालय का अध्यक्ष एक वैद्य होना चाहिए, जिसे एलोपैथी का प्रारम्भिक ज्ञान अवश्य हो। पंचायत-केन्द्र में एक एलोपैथिक औषधालय होना चाहिए। केन्द्रीय औषधालयों के चिकित्सकों को आयुर्वेदिक तथा यूनानी पद्धतियों का सामान्य ज्ञान भी अवश्य होना चाहिए।

देहातों में जन-स्वास्थ्य की रक्षा का भी कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है। यह कार्य ग्राम-औषधालयों के सुपुर्द होना चाहिए। औषधालयों के अध्यक्ष गांव में जन-स्वास्थ्योपयोगी जानकारी का प्रसार करेंगे। इसके अतिरिक्त वे पंचायतों के पदाधिकारियों को इस सम्बन्ध मे उपयोगी सलाह भी देंगे

पंचायत-स्तर पर यह सारी व्यवस्था पंचायत के अधीन ही होनी चाहिए।

पंचायती स्वास्थ्यशाला के व्यय का अनुमान इस प्रकार है—

मद		व्यय
एक वैद्य	(८० रु० मासिक)	९६० रु०
एक मिडवाइफ	(७० रु० मासिक)	८४० ,,
एक कम्पाउंडर	(६० रु० मासिक)	७२० ,,
एक चपरासी	(६० रु० मासिक)	४८० ,,
दवाइयां आदि		१००० ,,
		४००० रुपया

सहकारी व्यापार

हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्यापारी का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। व्यापारी पर एक बड़ा सामाजिक उत्तरदायित्व है। वह समाज की बड़ी आवश्यक सेवा करता है। लेकिन यह बात सिद्धान्त के रूप में तो ठीक हो सकती है, पर वास्तव में ऐसी नहीं है। आजकल व्यापारी का एकमात्र उद्देश्य अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाना रह गया है। मुनाफा लेने की प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि वह इसके लिए सामान्यतः निन्दनीय समझे जानेवाले कार्यों में बिना किसी झिझक के लीन हो जाता है। सामान्य व्यापारी आज मुनाफाखोरी, घूंसखोरी तथा चोर-बाजारी आदि का प्रतीक माना जाने लगा है। गांवों में व्यापारी एक और बड़ा काम भी करता है। वह गांव का महाजन भी होता है। अपनी आर्थिक स्थिति का लाभ उठाकर वह निर्धन ग्रामीणों का निःशंक शोषण करता है। देहातियों को जब धन की आवश्यकता पड़ती है तो उनकी आवश्यकता और अज्ञान का लाभ उठाकर व्यापारी उन्हें मनचाहे दरों पर कर्ज देता है। ब्याज इतनी तेजी से बढ़ता है कि अपनी सीमित आय के कारण सामान्य देहाती के लिए छोटे-से-छोटे कर्ज को चुका देना भी असम्भव-सा हो जाता है।

इस समस्या का उपाय सहकारी आन्दोलन है। गांवों में बहूउद्देशीय सहकारी समितियां स्थापित की जानी चाहिए। पर इस योजना के अन्त-

र्गत बनी इस प्रकार की समितियों का उद्देश्य व्यापारी को समाप्त करना नहीं होगा। इनका उद्देश्य होगा व्यापारी, उत्पादक और उपभोक्ता के पारस्परिक सम्बन्धों को सुधारना। इसके लिए हर पंचायत-क्षेत्र में एक बहूद्देशीय सहकारी समिति की स्थापना होनी चाहिए। क्षेत्र के सभी उत्पादक और व्यापारिक परिवार इस समिति के सदस्य होंगे। क्षेत्र का समस्त व्यापार, उपज का मण्डियों में ले जाना, दैनिक आवश्यकता के पदार्थों की क्षेत्र में उपलब्धि, धन का आदान-प्रदान तथा इसका जमा करना और कम व्याज पर कर्ज देना, ये सभी कार्य इन्हीं समितियों के द्वारा किये जाने चाहिए। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यापारी सहकारी सभा के अधीन उसके एजेण्ट के रूप में कार्य करेगा। हर गांव में इस प्रकार का कम-से-कम एक व्यापारी होगा। सभा उसे विक्रय के लिए माल देगी। वह निश्चित तथा निर्धारित मूल्य पर माल की बिक्री करेगा। सहकारी समिति इस प्रकार के व्यापारियों की संख्या बढ़ा सकती है। व्यापारी को एक निश्चित कमीशन दिया जायगा। इस प्रकार भारत में व्यापार की एक नई पद्धति का उदय होगा, जो सारे संसार के लिए आदर्श होगी।

एक पंचायत-क्षेत्र में ऐसी एक ही बहूउद्देशीय सहकारी समिति होनी चाहिए। समिति पर पंचायत का सामान्य नियन्त्रण तथा निरीक्षण रहना चाहिए। लेकिन समिति की कार्य-कुशलता और सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसके कर्मचारी ईमानदार, कुशल तथा योग्य हों। सहकारी समिति के मन्त्री का वेतन उचित होना चाहिए। यदि यही मन्त्री पंचायत का कार्य भी सम्भाल ले, तो उसका आधा वेतन पंचायत देगी।

इस प्रकार की बहूद्देशीय सहकारी समिति के आय-व्यय का एक सामान्य बजट सम्भव नहीं है, क्योंकि भिन्न-भिन्न स्थानों तथा भिन्न-भिन्न दशाओं में समितियों की आय भी भिन्न-भिन्न होगी। परन्तु इस बजट का एक साधारण चित्र अवश्य दिया जा सकता है, जिससे ऐसी सहकारी संस्था की आर्थिक सम्भावनाओं की कल्पना की जा सकती है।

यदि सहकारी संस्था का प्रत्येक अंश (शेयर) १०० रुपये का हो और उसका २० प्रतिशत प्रार्थना-पत्र के साथ लिया जाय, और यदि १००० अंश बिक जायं तो सहकारी संस्था का मूलधन २५,००० रुपया

होगा। इस धन से संस्था के सब काम चल सकते हैं। सम्भावित आय यह हो सकती है—

सहकारी समिति की सम्भावित आय

१. आयात, निर्यात तथा थोक व्यापार से ६। प्रतिशत मुनाफा एक लाख रुपये के सम्भावित कारोबार पर	६०५० रु०
२. आमदनी देनेवाली पैदावार तथा उद्योग-धन्धों की उपज के व्यापार से आय	६००० ,,
३. ऋण पर व्याज	६०० ,,
४. संस्था की अपनी सहकारी औद्योगिक संस्थाओं तथा सहकारी खेतों व बगीचों की उपज ...	१००० ,,
	१३,८५० रुपये

समिति का सम्भावित व्यय

१. मन्त्री	(२०० रु० मासिक वेतन)	२४०० रु०
२. क्लर्क	(८० ,, ,, ,,)	९६० ,,
३. २ चपरासी	(४० रु० प्रति चपरासी मासिक वेतन)	९६० ,,
४. स्टोरकीपर	(६० रु० मासिक वेतन)	७२० ,,
५. विक्रेता	(६० ,, ,, ,,)	७२० ,,
६. स्टेशनरी व फर्नीचर आदि		२००० ,,
७. भागीदारों का लाभ १० प्रतिशत		२५०० ,,
८. रिजर्व फण्ड (महत्तम मात्रा २०,००० रु०)		१००० ,,
९. सहायक कोष		१००० ,,
		१२,२६० रुपये

उपरोक्त बजट से प्रकट है कि सब लाभों तथा कोषों आदि का प्रावधान करने के बाद ९९० रुपये की बचत रह जाती है। यह बचत ग्राम-सुधार के कार्य के लिए पंचायत को दी जा सकती है। यदि एक तहसील में इस प्रकार की लगभग दस सभाएं हों और जिले में साठ सभाएं हों,

तो जिले के केन्द्रीय सहकारी बैंक के पास इन सभाओं की अमानतों के रूप में प्रति वर्ष ६०,००० रुपया आयेगा और सुरक्षित कोष पूरा हो जाने पर कुल रुपया १२ लाख होगा।

ये अन्दाज कम ही रखे गए हैं, ताकि यह अन्दाजा औसतन ठीक रहे। यह अन्दाज काल्पनिक नहीं है। लेखक ने ऐसी सभाएं देखी हैं, जो १०० प्रतिशत मुनाफा बांटकर और लगभग १००० रुपया वार्षिक दान देने के वाद भी ५ वर्ष में ५०,००० रुपया जमा कर सकी हैं। लेखक का विश्वास है कि ऐसी सहकारी सभाओं की औसत आय इससे दुगनी होगी।

वन-प्रबंध

वनों के महत्व और उपयोगिता से हमारे देशवासी प्राचीन काल से परिचित रहे हैं। व्यर्थ पेड़ काटना अथवा उसे नुकसान पहुंचाना आज भी बुरा समझा जाता है। पेड़ लगाना हमारे यहां सदा से एक पवित्र कार्य माना गया है। हमारे यहां प्राचीन काल से सार्वजनिक मार्गों के दोनों ओर छायादार पेड़ लगाने की प्रथा चली आ रही है।

पर क्रमिक तथा वैज्ञानिक रूप से भारत में वन-उद्योग शुरू करने का श्रेय अंग्रेजों को ही जाता है। अंग्रेजी शासन-काल में देश में एक नियमित वन-विभाग का निर्माण किया गया। वनों को पांच श्रेणियों में विभक्त किया गया—

१. सुरक्षित (रिजर्वड)।
२. सीमांकित (डिमार्केटेड)।
३. संरक्षित (प्रोटेक्टेड)।
४. खुले (अनप्रोटेक्टेड)।
५. ग्राम्य या देहाती वन (विलेज-फोरेस्ट्स)।

अन्तिम वर्गीकरण (ग्राम्य अथवा देहाती वन) अपेक्षाकृत नया है। इस प्रकार का वर्गीकरण देश के वनों की रक्षा, उनके विकास और विस्तार में वड़ा सहायक सिद्ध हुआ है।

लेकिन इस प्रकार के वन-प्रबन्ध का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें मनुष्य की सामान्य आवश्यकताओं की अवहेलना-सी की गई है। कई

जगहों पर तो मनुष्य चाहे लकड़ी के लिए तरसता रहे या उसे उनसे कैसी भी हानि क्यों न पहुंचे, पर वनों की रक्षा की जाती है, तो कई जगहों पर वनों की उपयोगिता की ओर से आंख मूंदकर वनों को नष्ट होने दिया जाता है।

पंचायत-राज की सबसे बड़ी बात उसका मानवीय दृष्टिकोण है। इसके हर विभाग का संचालन इस दृष्टि से किया जाता है कि उससे अधिकतम मनुष्यों का हित हो। वनों के प्रबंध में भी इसी मानवीय दृष्टि-कोण को रखना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि जहां आज सामान्य ग्रामीण वनों को सरकारी सम्पत्ति समझता है और उनकी उपेक्षा करता है, वहां पंचायती प्रबन्ध के अन्तर्गत प्रत्येक पेड़ को ग्रामीण अपनी सम्पत्ति समझने लगेगा। यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपनी सम्पत्ति को नष्ट नहीं करता है। वनों पर यह बात पूरी तरह से लागू होती है। वनों के प्रबन्ध की पद्धति को बदलकर देश के करोड़ों देहातियों का उनके प्रति वर्तमान दृष्टिकोण बदला जा सकता है। इसके लिए वनों का वर्गीकरण फिर से करना होगा। अपनी सुविधा के लिए हम वनों का वर्गीकरण इस प्रकार कर सकते हैं—

१. संरक्षित वन।

२. पंचायती वन।

वे वन, जो गांव से काफी दूर और ऐसे स्थानों पर, जहां खेती-बाड़ी करना सुगम न हो, स्थित हैं, संरक्षित वन होंगे। शेष सभी वन पंचायती वन होंगे। पंचायती वनों को निम्नलिखित तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है—

१. इमारती लकड़ी के वन।

२. ईंधन तथा घास के वन।

३. खेती-बाड़ी की रक्षा तथा वृद्धि के लिए उगाये गए वन।

संरक्षित वन सीधे वन-विभाग के नियन्त्रण में रहेंगे। शेष सभी वनों को, जो ग्रामों के निकट स्थित हैं, पंचायती वन करार दिया जा सकता है, और तब उनका प्रबन्ध पंचायतें ही करेंगी। किन्तु इन वनों का प्रबन्ध भी वन-विभाग की मन्त्रणा तथा उसकी योजना के अनुसार ही करना होगा।

पंचायती वनों के कर्मचारी इस प्रकार होंगे—हर पंचायत के विस्तार के अनुसार वनज्ञ (फोरेस्टर) तथा वनरक्षक (फोरेस्ट गार्ड); तहसील के स्तर पर तहसील-पंचायत के अधीन अथवा राज्य शासन के अधीन एक फोरेस्ट रेंजर होगा, जो पंचायतों को उपयोगी सलाह-मशविरा देगा। इस प्रकार का पंचायती प्रबन्ध पूर्णतः वैज्ञानिक होगा, पर इसमें वनों से होनेवाली आय पंचायतों को जायगी, और उनपर होनेवाले व्यय का भार भी उन्हीं-पर पड़ेगा। ऐसे पंचायती वनों को हर ग्रामीण अपना समझेगा और उनकी उचित रक्षा भी करेगा।

वनों की इस सम्पदा का दुरुपयोग नहीं किया जायगा। उनका प्रबन्ध एक निश्चित योजना के अनुसार होगा। हां, यह अवश्य है कि पंचायतें अपने क्षेत्र के निवासियों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखेंगी। पंचायतें वन-उपज के विक्रय तथा उपयोग-सम्बन्धी नियम बनायेंगी। इसकी आय पंचायत-कोष में जायगी। सारे देश के लिए उपयुक्त योजना बनाकर उसके अनुसार कार्य किया जाय तो कुछ ही वर्षों में हर ग्राम अपनी वन-सम्बन्धी आवश्यकताओं के बारे में पूर्णतः आत्म-निर्भर हो जायगा।

पथ-निर्माण

हमारे देहातों की एक बड़ी कमी यह है कि उनमें आवागमन के साधनों का कोई उचित प्रबन्ध नहीं है। अधिकतर गांवों तक पहुंचने के लिए सुविधाजनक सड़कों का अभाव है। पक्की सड़कें आमतौर पर नगरों को ही आपस में मिलाती है—अक्सर देहात इनसे बचे रहते हैं। वर्षा में तो देहाती इलाकों में जाना और भी कठिन हो जाता है। इसलिए पंचायतों का एक बड़ा कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में मार्ग-निर्माण का कार्य होना चाहिए। देश-भर में ऐसी सड़कों का जाल-सा बिछ जाना चाहिए कि वे देश के लाखों गांवों तक पहुंच सकें और उनका देश के जन-जीवन से सजीव सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

मोटे तौर पर इस कार्य को इस तरह से किया जा सकता है कि हर पंचायत-केन्द्र तक पक्की सड़क अवश्य जाय। इस सड़क का निर्माण पंचायतों के सहयोग से राज्य-सरकारों को करना चाहिए। हर ग्राम तक ऐसी सड़क होनी चाहिए कि वह बारहों मास बैलगाड़ियों, घोड़ों तथा

खच्चरों के चलने लायक बनी रहे। छोटे-छोटे गांवों से लेकर पंचायत-केन्द्रों तथा पक्की सड़कों (राजमार्गों) तक सड़क बनाने का कार्य पूर्णतः पंचायतों को दिया जा सकता है। इन सड़कों की मरम्मत का कार्य भी पंचायतों के ही सुपुर्द होना चाहिए।

पर मुख्य समस्या यह है कि पंचायतों की आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं है कि वे सड़कों के निर्माण तथा उनकी मरम्मत के कार्य को पूरा कर सकें। उनके पास इतना धन नहीं है कि वे मजदूरी देकर इस कार्य को करा सकें। इसका एकमात्र हल है श्रमदान तथा श्रम-शुल्क। पंचायती क्षेत्र में रहने-वाला प्रत्येक स्वस्थ वयस्क एक निश्चित मात्रा में अपना श्रम मार्गों के निर्माण में बिना किसी मजदूरी के लगाये। सड़कों के निर्माण में लगनेवाले सामान तथा औजार पंचायत के ही होंगे।

इसके अतिरिक्त पंचायतों द्वारा लगाये गए करों का कुछ भाग भी इस कार्य में लगाया जा सकता है। इस कार्य के लिए सरकार से कुछ अनुदान भी प्राप्त किये जा सकते हैं। पर कर लगाने के सम्बन्ध में यह बात ध्यान में रखनी होगी कि न तो ग्रामवासी अधिक कर दे ही सकते हैं और न इस प्रकार से प्राप्त की गई रकम पर्याप्त ही हो सकती है।

फिर मार्ग-निर्माण के लिए कुछ वैतनिक कर्मचारी भी रखने होंगे। उनके वेतन तथा संख्या का अनुमान निम्न तालिका से लगाया जा सकता है—

मद	व्यय
एक ओवरसियर ६० रु० वेतन + ३० रु० भत्ता	१०८० रु०
एक चपरासी २० रु० वेतन + २० रु० भत्ता	४८० ,,
वैतनिक कारीगर	२५८० ,,
सामान आदि (वार्षिक)	१००० ,,
	५१४० रुपये

इस खर्च का अधिकांश भाग तो पंचायतों के बजट से ही प्राप्त किया जायगा, पर इसके लिए निम्नलिखित अतिरिक्त साधनों का भी उपयोग किया जा सकता है—

१. इस कार्य के लिए मन्दिरों तथा अन्य सार्वजनिक तथा धर्मार्थ संस्थाओं से कुछ वार्षिक सहायता ली जा सकती है। इस स्रोत से लगभग १००० रुपये साल की आय हो सकती है। पर यह आय सभी इलाकों में बराबर नहीं होगी।

२. पंचायत-क्षेत्र में रहनेवालों से इस कार्य के लिए विशेष दान लिये जा सकते हैं।

३. जो लोग श्रमदान न करें, उनसे बदले में नकद रकम ली जाय। यह रकम किये जा सकनेवाले कार्य के अनुपात में होनी चाहिए।

इस कार्य के लिए ली गई सरकारी रकम तथा अन्य प्रकार से प्राप्त रकम से एक विशेष कोष की स्थापना की जा सकती है। यह कोष पंचायत तथा पंचायत ओवरसियर के नियन्त्रण में रहेगा। पंचायत के वार्षिक बजट में ऐसे कार्यों के लिए विशेष प्रावधान रखा जायगा।

इस प्रकार इन साधनों से प्राप्त आय तथा जनता के सक्रिय सहयोग से थोड़े ही काल में ग्राम-ग्राम तक सड़कें पहुंच जायंगी और ग्रामों की उन्नति का एक नया मार्ग खुल जायगा।

खाद्य

दूसरे विश्व-युद्ध के आरम्भ तक हमारा देश अन्न के उत्पादन में न केवल स्वावलम्बी ही था, बल्कि वह लाखों मन अनाज का निर्यात भी करता था। ऐसी दशा में भारत में खाद्य-पदार्थों के उत्पादन और उसके उत्पादकों की समस्याओं की ओर कम लोगों का ध्यान गया था। पर द्वितीय विश्व-युद्ध के आरम्भ होने के बाद यह समस्या पूरी भयंकरता के साथ अचानक हमारे सामने आई। उसके बाद से यह समस्या वैसी ही विकट बनी रही है। देश के विभाजन के बाद यह और अधिक गम्भीर हो गई।

पिछले अनुभव के आधार पर तथा वर्तमान समस्याओं के सामने यह उचित होगा कि हम भविष्य के प्रति सावधान रहें। इसके लिए दो बातों पर ध्यान देना होगा—

१. देश में खाद्य-पदार्थों का उत्पादन बढ़ाया जाय।

२. मूल्य उचित स्तर पर रखा जाय।

पंचायत-राज का ध्येय यह है कि पंचायत-क्षेत्र में पूर्ण आत्म-निर्भरता प्राप्त की जाय। इस दृष्टि से खाद्य पदार्थों के उत्पादन में भी आत्म-निर्भर होना पंचायतराज की पूर्ण सफलता के लिए आवश्यक है। पर इसमें मौलिक धारणा यह है कि पंचायतराज में हर समस्या को, जहांतक सम्भव हो, ग्राम के दृष्टिकोण से ही सुलझाने की कोशिश की जाती है। इसलिए इस प्रश्न को भी इसी दृष्टिकोण से लेना होगा।

इस समस्या को पूर्ण रूप से हल करने के लिए हर पंचायत को अपने क्षेत्र से आवश्यक जानकारी प्राप्त करनी होगी। जानकारी के इन आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए हर पंचायत को इस कार्य के लिए एक उपयुक्त कर्मचारी नियुक्त करना होगा। यह कर्मचारी पंचायत-क्षेत्र की जनसंख्या, व्यक्तियों के व्यवसायों तथा पेशों के अतिरिक्त क्षेत्र की कृषि के भी ब्योरे-वार आंकड़े एकत्र करेगा। इसमें अनाज की कमी-वेशी और कृषि-योग्य भूमि का विवरण भी होगा। इन आंकड़ों से प्राप्त जानकारी के आधार पर पंचायतों को बंजर भूमि को काश्त में लाने के लिए समुचित अधिकार दिय जा सकते हैं।

फिर इसी जानकारी के आधार पर पंचायतें अपने-अपने क्षेत्र में कृषि को उन्नत करने तथा उपज बढ़ाने की योजनाएं तैयार करेंगी। वे कृपकों के लिए खाद तथा अच्छे बीज व औजार उपलब्ध करेंगी तथा उन्हें उचित मन्त्रणा भी देंगी।

किसान से सीधा सम्बन्ध होने के कारण पंचायतें उनकी सभी समस्याओं से परिचित होती हैं और यदि उन्हें पर्याप्त अधिकार दे दिये जाय तो वे उसकी समस्याओं का हल भी निकाल सकती हैं।

बहुद्देश्यीय सहकारी समितियां इस समस्या के हल में बड़ी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। पंचायतें कृषि में सहकारिता को प्रोत्साहन दें। ग्राम की सारी कृषि-भूमि पर कृषि-कार्य इस प्रकार बनाई गई सहकारी समितियों द्वारा किया जाय। सभी कृपक मिलकर कार्य करें। उपज बहुद्देश्यीय सहकारी समिति को बेच दी जाय। गांव की समस्त भूमि की माल-गुजारी तथा अन्य करों का भुगतान इसी रकम से इकट्ठा कर दिया जाय। फिर प्रत्येक व्यक्ति को उसकी भूमि के अनुसार उसका हिस्सा दे दिया

जायगा। इस व्यवस्था का एक दूसरा परिणाम यह होगा कि भूमि का छोटे-छोटे टुकड़ों में बंटना रुक जायगा। इसके अतिरिक्त सारी भूमि, काश्त तथा बिक्री के सामूहिक रूप से किये जाने से जहां एक तरफ खर्च में कमी और उपज में बढ़ोतरी होगी, वहां सारे-के-सारे ग्राम के लिए योजना बनाना भी आसान हो जायगा। इसी आधार पर विभिन्न पंचायत-क्षेत्रों, तहसीलों, जिलों तथा राज्यों के प्रयत्नों में समन्वय भी स्थापित किया जा सकेगा।

कर-वसूली

पंचायत-क्षेत्रों में कर लगाने की समस्या भी बड़ी उलझनपूर्ण है। आजकल ग्रामीणों पर कर का बोझ बहुत अधिक है। वे कई प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष कर देते हैं। साथ ही कर लगाने की पद्धति भी इतनी जटिल है कि करदाता को करों के बदले में प्राप्त सुविधाओं का अनुभव ही नहीं होता। वैसे भी म्यूनिसिपल कर, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर तथा राज्य व केन्द्र के करों का बोझ उन्हींपर पड़ता है। परन्तु जब वे देखते हैं कि उन करों द्वारा प्राप्त धन का सबसे अधिक भाग शहरी जनता पर ही व्यय हो जाता है, तो यह स्वाभाविक है कि उन्हें बुरा लगता है। पंचायत-राज का ध्येय यह है कि ग्रामीण करों की एक ऐसी पद्धति का निर्माण किया जाय, जिसका प्रबन्ध पूर्णतः ग्रामीणों के हाथ में हो और वे अपने हितों की सुरक्षा स्वयं करें। यह कर लगाने की पद्धति केन्द्र तथा राज्य के करों में कोई हस्तक्षेप नहीं करेगी। परन्तु यह पद्धति जिला, तहसील तथा नागरिक स्तर पर दोहरे करों को नहीं रहने देगी। इससे ग्रामीणों के मन में आशा तथा स्वावलम्बन के भाव उत्पन्न होंगे। शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सफाई आदि के नाम पर जो कर लगाये जाते हैं, वे पंचायत-राज की धारणा के अनुसार गलत हैं, क्योंकि ये कर ऐसी सुविधाओं को प्राप्त करवाने के लिए लगाये जाते हैं, जो हर मानव को वैसे ही मिलनी चाहिए। पंचायत-राज की पद्धति के आधीन कर लगाने के समय अधिक जोर इस बात पर होगा कि आराम तथा विलास की वस्तुओं पर अधिक कर लगाये जायं तथा आवश्यकता की वस्तुओं पर कर न लगें।

इस योजना के अधीन स्थानीय स्वशासन का एक ही क्रम होगा, जो

पंचायतों तथा जिला-पंचायतों में विभक्त होगा। सभी पंचायतें एक ही कानून द्वारा नियमित होंगी। इससे कोई कर दोहराया नहीं जा सकेगा। इन आधारभूत सिद्धान्तों को देखते हुए निम्न कर लगाये जाने उचित समझे जा सकते हैं—

ग्राम-पंचायत—१. मालगुजारी पर जो स्वाई (स्थानीय या लोकल रेट) ली जाती है, वह पंचायत को दी जाय। मालगुजारी अर्थात् राजस्व की वसूली का काम भी ग्राम-पंचायत के सुपुर्द किया जाय। नम्बरदारी तथा जेलदारी की प्रथा भी समाप्त की जाय।

२. अनाज को छोड़ पंचायत-क्षेत्र की अन्य उपज पर निर्यात कर।

३. सूची के अनुसार आराम तथा विलास की तमाम वस्तुओं के आयात पर कर।

४. खेल-तमाशों पर कर

५. खुशी के संस्कारों पर शुल्क

नगर-पंचायत—१. आराम तथा विलास की वस्तुओं के आयात पर कर

२. तह-बाजारी कर

३. घरों पर कर

४. गाड़ियों पर कर

५. खेल-तमाशों पर कर

६. संस्कार पर कर

तहसील-पंचायत—इस स्तर पर कोई कर नहीं होना चाहिए और इस पंचायत का कोष सदस्य पंचायतों के शुल्क द्वारा पूरा किया जाना चाहिए।

जिला-पंचायत—१. पेशा-कर।

२. मेला-कर।

३. गाड़ियों तथा बारबरदारी के पशुओं पर कर।

प्रत्येक ग्राम, नगर तथा पुर-पंचायत के अपनी आय का ५ प्रतिशत तहसील पंचायत कोप को देने से उनका काम चल सकता है। तहसील तथा जिला-पंचायत की कर द्वारा आय की चर्चा तत्सम्बन्धी स्थलों में की

जायगी। इन करों द्वारा ग्राम-पंचायत की अनुमानित आय लगभग इस प्रकार हो सकती है—

१. मालगुजारी की स्वाई से हुई आय भिन्न-भिन्न होगी, पर इसे औसतन १००० रुपया माना जा सकता है।

२. इस शीर्षक के अधीन कर-योग्य वस्तुओं की सूची हर पंचायत के लिए भिन्न-भिन्न होगी। यह सूची बड़े सोच-विचार के बाद बनानी पड़ेगी। यह ध्यान रखना पड़ेगा कि इस शीर्षक के अधीन कर लगाने का दो पंचायतों का अधिकार-क्षेत्र एक-दूसरे में न मिल जाय। यह भी देखना होगा कि किसी भी शीर्षक के कर का बोझ करदाता पर बहुत भारी न हो जाय। इस मद से लगभग ३००० रुपये की आय हो सकती है।

३. निर्यात-कर—यह कर निर्यात-योग्य वस्तुओं तथा उनकी मात्रा पर निर्भर होगा। एक सामान्य अनुमान के अनुसार इससे लगभग ९०० रुपये की आय होगी।

४. खेल-तमाशों पर कर से लगभग ५०० रुपये प्रति वर्ष आय का अनुमान किया जा सकता है।

इस प्रकार करों से हुई कुल आय लगभग ६४०० रुपये होगी। यह सभी कर पंचायत के प्रस्तावित कर्मचारी जमा कर सकेंगे और उनकी वसूली में पंचायत कोष पर कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ेगा।

न्याय

जबतक पंचायतों को अपने-अपने क्षेत्र में न्याय-सम्बन्धी अधिकार नहीं दिये जायंगे, तबतक उनकी सत्ता निरर्थक-सी होगी। इस प्रश्न पर विस्तार से विचार आगे किया गया है।

बजट

इस अध्याय में अबतक जिन प्रश्नों पर विचार किया गया है, उनके आधार पर ग्राम-पंचायतों की आय-व्यय का निम्न अनुमान लगाया जा सकता है—

आय

मद	आनुमानिक आय
ग्राम-पंचायत के आधीन प्रारम्भिक पाठ-शालाओं से संलग्न कृषिक्षेत्र (१० एकड़)	
(क) ५ एकड़ में अन्न	३२०० रु०
(ख) २½ एकड़ में धनदाई फसलें (कैश क्रॉप्स)	२६०० ,,
(ग) २ एकड़ में फल	१००० ,,
(घ) ½ एकड़ में सब्जी	२०० ,,
	७००० रुपये
ऐसे ५ क्षेत्रों की आय	३५००० रु०
सहकारी समिति से प्राप्त शुल्क	१२३० ,,
जंगल, घास, इमारती या अन्य लकड़ी की विक्री	२००० ,,
कोर्ट फीस तथा अन्य टिकटों की विक्री कर:	६०० ,,
(क) मालगुजारी पर २५ प्रतिशत स्वाई	१००० ,,
(ख) आराम तथा विलास की वस्तुओं पर आयात-कर	३००० ,,
(ग) निर्यात-कर	९०० ,,
(घ) संस्कारों तथा खेल-तमाशों पर कर	५०० ,,
मन्दिर आदि द्वारा सहायता	१००० ,,
पथ-परिवर्धन कोष	१००० ,,
कुल आय :	४६,२३० रुपये

व्यय

शिक्षा : मद	आनुमानिक व्यय
(क) पाठशालाओं के लिए १० अध्यापक (वेतन ५०+२५ रु० प्रति अध्यापक)	९००० रु०
(ख) इसी प्रकार १० चपरासी (२०+२५ रु०)	५४०० ,,

(ग)	इसी प्रकार पुस्तकें तथा स्टेशनरी (१००० रु० प्रति स्कूल)	५००० रु०
(घ)	कृषि-क्षेत्र के बैल तथा उनकी खुराक	२००० ,,
(ङ)	एक गौरक्षक (२०+२५ रु०)	५४० ,,
		२१,६४० रुपये

स्वास्थ्य :

(क)	एक वैद्य अथवा डाक्टर (५०+३० रु०)	६६० रु०
(ख)	एक कम्पाउण्डर (३५+२५ रु०)	७२० ,,
(ग)	एक वार्ड कुली (२०+२० रु०)	४८० ,,
(घ)	दवाइयां	१००० ,,
(ङ)	दाई (नर्स) (७० रु०)	८४० ,,
		४००० रुपये

पशु-चिकित्सा :

(क)	स्टाक असिस्टैण्ट (३५+२५ रु०)	७२० रु०
(ख)	दवाईयां आदि	५०० ,,
		१२२० रुपये

वन :

(क)	एक फोरेस्टर (४५+३५ रु०)	६६० रु०
(ख)	वन-रक्षक (२५+२० रु०)	५४० ,,
		१५०० रुपये

पथ-निर्माण

(क)	एक ओवरसियर (६०+३० रु०)	१००० रु०
(ख)	एक चपरासी (२०+२० रु०)	४८० ,,
(घ)	मजदूरों का एक जत्था (गैंग)	२४०० ,,
		३६६० रुपये

विविध व्यय :

(क)	मन्त्री (१५०+५० रु०)	२४०० रु०
(ख)	क्लर्क (४०+२० रु०)	७२० ,,
(ग)	आंकड़ा लेखक (४०+२० रु०)	७२० ,,
(घ)	चपरासी (२०+२० रु०)	४८० ,,
(ङ)	पंच (३ रुपया प्रति साप्ताहिक बैठक)	१२४८ ,,
(च)	अन्य आवश्यक व्यय	१००० ,,
		६५६८ रु०
	कुल व्यय का जोड़	३६,१८८ रु०
	कुल आय	४६,२३० रु०
	कुल व्यय	३६,१८८ रु०
	बचत	७,०४२ रु०

इसमें से २००० रुपये तो तहसील पंचायत को जायगा, २००० के लगभग सड़कों आदि के निर्माण-कार्य पर खर्च होगा और शेष से भवन-कोष-संग्रह किया जायगा।

पंचायत-घर

इस प्रकार पंचायत ग्राम के विविध प्रकार के क्रिया-कलापों का एक केन्द्र बन जायगी। धीरे-धीरे उसका कार्य-क्षेत्र व्यापक होता जायगा। हर कार्य के लिए स्थान की आवश्यकता होगी। पंचायत के विभिन्न कार्यालय एक 'पंचायत-घर' में ही रहने चाहिए। यह भवन पंचवर्षीय योजना के अन्दर बनाया जा सकता है। इस पंचायत-घर का नक्शा हर स्थान पर एक-सा ही हो तो अधिक अच्छा होगा। इसमें पंचायत के समस्त कार्यालयों के लिए स्थान रहना चाहिए। इसमें एक बड़ा कमरा (हॉल) भी जरूरी होगा और एक ऐसी जगह भी बनाई जानी चाहिए, जो विश्राम-गृह का काम दे सके। एक ऐसे ही नमूने के पंचायत-घर का नक्शा अगले पृष्ठ पर दिया गया है।

इस नक्शे से पंचायत-घर का तसव्वर बन सकता है। जो ग्राम-पंचायतें इसे पांच वर्ष से कम अवधि में बना सकें, उन्हें ऐसा करने की छूट होनी चाहिए।

यह एक मानी हुई बात है कि किसी आन्दोलन को स्थिरता प्रदान करने के लिए उसके अपने भवन में उसका दफ्तर होना बड़ा सहायक सिद्ध

होता है। अतः इस कार्य की ओर पंचायतों का ध्यान बहुत शीघ्र जाना चाहिए।

पंचायती न्याय

अपराध और झगड़े के मूल के बारे में हमारे यहां पुरानी कहावत है, जिसमें इनके चार मूल कारण बताये गए हैं—जर, जमीन, जोरू और जायदाद। सामाजिक सम्बन्धों में जबसे निजत्व और मेरे-तेरे की भावना का उदय हुआ, तबसे समाज का पुराना शान्तिपूर्ण वातावरण भंग हो गया और बात-बात पर झगड़ों की शुरूआत हो गई। अपराध और झगड़े के साथ-साथ बदले की भावना का भी उदय हुआ। बदले की यह भावना कई अन्य गुरुतर अपराधों का कारण बन जाती है। खासतौर पर उन इलाकों में, जहां शासनतन्त्र अभी तक सुव्यवस्थित या सुदृढ़ नहीं है, यह भावना बहुत प्रबल होती है।

इस तरह यह बात स्पष्ट हो जाती है कि बदले और

भावना को रोकने के लिए व्यवस्था का होना आवश्यक है। व्यवस्था से सामाजिक सम्बन्ध नियंत्रित होते हैं और उसके अभाव में अराजकता उत्पन्न होती है। लेकिन साथ ही यह बात भी सत्य है कि मनुष्य के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में, जब नियंत्रित सामाजिक जीवन और व्यवस्था का उदय भी नहीं हुआ था, इस प्रकार के अपराध लगभग बिल्कुल नहीं होते थे। सम्भवतः इसका कारण था आत्म-नियन्त्रण। पर वास्तव में समाज में ऐसी अवस्था कभी थी भी या नहीं, अथवा कभी आयेगी भी या नहीं, एक ऐसा प्रश्न है, जिसका उत्तर नहीं दिया जा सकता।

लेकिन यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि सामाजिक जीवन के उदय के साथ-ही-साथ व्यवस्था की आवश्यकता का अनुभव किया गया और मनुष्य अपने आचरण को नियंत्रित करने के लिए कुछ नियम बनाने पर मजबूर हुआ। समाज में यदि इस प्रकार का नियमन न हो तो बात-बात पर लोगों को जीवन से हाथ धोना पड़े। व्यवस्था के अन्तर्गत पीड़ित व्यक्ति को सन्तुष्टि देने और बदले की भावना को शान्त करने की जिम्मेदारी समाज अपने ऊपर ले लेता है। इस प्रकार वह व्यक्ति के अपने-आप बदला लेने के अधिकार को अपने हाथ में ले लेता है।

सामान्य मनुष्य में दया, करुणा, सहिष्णुता, परोपकार आदि सद्-भावनाओं के साथ उसमें ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, लोभ, क्रोध आदि दुर्भाव-नाएं भी होती हैं। आवेश में आने पर मनुष्य अपना संतुलन खो बैठता है और अपराध में प्रवृत्त हो जाता है।

अपराध का अध्ययन करनेवालों के अनुसार अपराध और झगड़े के कारण निम्न होते हैं—

१. आवश्यकता
२. मानसिक संतुलन का अभाव
३. कर्त्तव्य और अधिकार की धारणा में भेद
४. मानसिक अथवा शारीरिक विकार
५. बदले की भावना

हर प्रकार का झगड़ा किन्हीं दो व्यक्तियों अथवा व्यक्तियों के समूहों में होता है। इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि हर प्रकार

के अपराध का समाज से सीधा सम्बन्ध होता है। अपराध के बदले में समाज जिस प्रतिकार की व्यवस्था करता है, उसे न्याय कहते हैं। दूसरे शब्दों में न्याय ऐसे सिद्धान्तों का योग है, जिनके आधार पर झगड़ों को सुलझाने की या उनका निर्णय करने की चेष्टा की जाती है। न्याय के सिद्धान्तों के आधार पर निर्णय करनेवाले व्यक्ति को न्यायाधीश, निर्णायक, मध्यस्थ अथवा पंच कहा जाता है।

न्याय का ध्येय

न्याय का ध्येय समाज में व्यवस्था बनाये रखना है। इस व्यवस्था को भंग करने के कारणों की भी हम चर्चा कर चुके हैं। स्वभावतः मानव अपने अधिकार के छीने जाने या अपने साथ अत्याचार होने पर बदला लेना चाहता है। मनुष्य ने अपने सामूहिक अनुभव के आधार पर यह जाना कि व्यक्ति को अपना न्याय स्वयं करने का अधिकार देने से अपराध की एक ऐसी शृंखला वन जाती है, जो लगातार बढ़ती ही जाती है। इससे समाज में न्याय की धारणा उत्पन्न हुई और व्यक्ति को बदले के भावों पर अवलम्बित न्याय करने के अधिकारों से वंचित कर दिया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि न्याय का एक ही ध्येय है और वह है पीड़ित व्यक्ति को संतुष्टि प्रदान करना। यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति के निकटवर्ती सम्बन्धी की हत्या कर दे तो, स्वाभाविक है, इस तरह से आहत व्यक्ति के हृदय में बदले की भावना जागती है। यदि समाज ऐसे अपराधों के लिए दण्ड की व्यवस्था न करे तो प्रतिशोध की इस भावना के फलस्वरूप वह उसकी हत्या कर देगा, और सम्भवतः इसके प्रतिकार स्वरूप इस मारे गये व्यक्ति का कोई सम्बन्धी उसकी। इस प्रकार हत्याओं का एक क्रम शुरू हो जायगा। इससे समाज के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो सकता है। अतः न्याय का एक ध्येय प्रतिकार की व्यवस्था करना है।

ऊपर लिखा चुका है कि अपराध का एक कारण मानसिक सन्तुलन का भंग होना भी है। जहां ऐसे कारण मूल में होते हैं, वहां दण्ड अथवा न्याय यदि प्रतिशोधात्मक प्रतिकार ही रह जाय तो मानव की मौलिक प्रवृत्तियों के विकास में अवरोध पड़ सकता है। ऐसे स्थानों पर न्याय ाक

ध्येय सुधारात्मक होता है। न्याय करते समय इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए। परन्तु कुछ ऐसे भी अपराधी होते हैं, जिनके लिए अपराध करना एक स्वाभाविक बात होती है। उनका सुधार कठिन होता है और ऐसे अपराधी को यदि दण्ड न मिले तो इससे अन्य व्यक्तियों को भी अपराध करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। अतः न्याय का एक और ध्येय यह भी होता है कि भविष्य में अपराध को होने से रोका जाय। न्याय का यह ध्येय निरोधात्मक होता है।

मानव-स्वभाव की यह विशेषता है कि जब मनुष्य कोई बुरा काम, व्यापार या अपराध मरता है या आवेश में आता है, तो बाद में उसे स्वाभाविक पश्चात्ताप होता है। मनुष्य की पश्चात्ताप करने की यह सहज भावना उसके सुधार के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करती है। पुराने अपराधियों की बात तो छोड़ी जा सकती है, पर सामान्य मनुष्य जबतक प्रायश्चित्त न कर ले उसके हृदय में पश्चात्ताप की आग जलती रहती है। मनुष्य-प्रकृति की यह स्वाभाविक विशेषता कई बार उसे सत्य प्रकट करने के लिए प्रोत्साहित करती है। परन्तु यदि सत्य प्रकट करने पर उसे अपनी धारणा से अधिक दण्ड पाने की सम्भावना हो तो वह सत्य प्रकट करने से हिचकिचाता है और अपने अपराध को छिपाने की चेष्टा करना है। अतः न्याय करनेवाले को यह ध्यान रखना चाहिए कि मनुष्य की यह सहज भावना कुण्ठित न होने पाये। एक बार इसका अवरोध होने पर यह स्वाभाविक मानसिक धारणा बदल जाती है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि न्याय की व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए कि उसमें मनुष्य को सत्य छिपाने के लिए कम-से-कम अवसर मिले। न्याय करनेवाले व्यक्ति मनुष्य के स्वभाव से परिचित होने चाहिए और साथ ही उन्हें स्थानीय परिस्थितियों की भी जानकारी होनी चाहिए। यदि न्याय का कानून बहुत उलझनोंवाला हो तो सामान्य व्यक्ति के लिए उसे समझना कठिन हो जाता है और ऐसी स्थिति में कानून मनुष्य का स्वामी बन जाता है और कानूनी शब्दजाल द्वारा सत्य को छिपाना और अपराधी को छुड़ाना एक सम्मानित कला समझी जाने लगती है।

वास्तव में कानून जितना अधिक सुलभ तथा सरल हो उतना ही अच्छा है। न्याय का कार्य विशेषज्ञों का न होकर मनुष्य के स्वभाव को समझनेवाले ईमानदार व्यक्तियों का कार्य होना चाहिए। इसके लिए न्याय की पंचायत-पद्धति को अपनाना अधिक उचित दीखता है। इसका कारण यह है कि न्यायाधीश में अन्य आवश्यक गुणों के अतिरिक्त ईमानदारी तथा पक्षपातहीनता का होना भी जरूरी है। साथ ही, उसकी निर्णय-शक्ति भी अधिक विकसित होनी चाहिए। यह मानी हुई बात है कि शहरों की अपेक्षा ग्रामों में रहनेवालों में ये गुण अधिक होते हैं। गांवों में न्याय-पंचायतें बड़े पुराने काल से चली आ रही हैं और आज भी पंच-निर्णय की निष्पक्षता के बारे में कहानियां सुनी जा सकती हैं। गांवों में लगभग सभी व्यक्ति विवाद के कारणों से परिचित होते हैं। अतः वहां सत्य का छिपाना कठिन होता है। फलस्वरूप न्याय भी सुगमतापूर्वक प्राप्त हो सकता है।

पंचायती न्याय की एक दूसरी विशेषता यह है कि न्याय-पद्धति की सुगमता के कारण पक्षों को किसी भी समय आपसी समझौता करने की छूट रहती है। यही नहीं, खुद इस न्याय-पद्धति का मूल उद्देश्य भी यही होता है कि जैसे भी हो पक्षों में झगड़े को बढ़ने देने की संभावनाओं को कम-से-कम किया जाय। पंचायतें सुगमतापूर्वक इस प्रकार के समझौते —(राजीनामे)—कराने की साधन बन सकती है।

राजीनामा

आमतौर पर सभी सामान्य विवादों में विरोधी पक्षों में मध्यस्थता कराई जा सकती है। मध्यस्थता का कार्य वही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह कर सकता है, जो दोनों पक्षों की बात, स्थानीय रीति-रिवाज तथा झगड़े के मूल से परिचित हो। सामान्य न्याय में दोनों पक्ष अदालत में अपनी-अपनी दलीलें देते हैं और अदालत अपनी समझ के अनुसार मामले का फैसला कर देती है। पर राजीनामे में फैसला दोनों पक्षों की सहमति और रजामन्दी से होता है। इसलिए ऐसे सभी मामलों में, जहां विवाद विचार-भेद अथवा प्रतिशोध की भावना से उठा हो, यह पद्धति बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है; क्योंकि इसका उद्देश्य झगड़े के मूल को दूर कर, मन-मुटाव

को समाप्त कर, सामान्य सम्बन्धों को फिर से कायम करना है। समाज की प्रगति के लिए यह पद्धति आवश्यक है।

राजीनामे के रास्ते में जो सबसे बड़ी रुकावट है, वह है दोनों पक्षों का अहंभाव। दोनों पक्ष इस बात पर अड़े रहते हैं कि उन्हींकी बात ठीक है। अतः समझौते के लिए पहल-कदमी करने में दोनों को झिझक होती है। ऐसी स्थिति में यदि कोई तीसरा व्यक्ति या व्यक्तियों की संस्था उनको निकट लाने की कोशिश करे तो राजीनामे का रास्ता खुल जाता है। ग्रामों तथा नगरों में इस प्रकार की संस्थाएं बनाकर इस कार्य को सुगम किया जा सकता है। देश के अधिकांश विचारक इस मत का समर्थन करते हैं, और विभिन्न राज्यों में पंचायतों को इस प्रकार के समुचित कानूनी अधिकार देने की योजनाएं बनाई भी जा रही हैं। इसके अन्तर्गत दोनों पक्षों के लिए यह जरूरी हो जायगा कि न्याय-पंचायत में मुकद्दमा पेश करने से पूर्व वे अपनी पंचायत में उसकी मध्यस्थता कराने की कोशिश करें।

इसका अनिवार्य परिणाम यह होगा कि अधिकांश मामलों का राजीनामे द्वारा फैसला करना सम्भव हो जायगा। फलस्वरूप मुकद्दमेबाजी से उत्पन्न होनेवाले अनेक दोष जाते रहेंगे।

यह पूछा जा सकता है कि राजीनामा किस-किस प्रकार के विवादों में हो सकता है। स्पष्ट है कि इस प्रश्न का उत्तर सुगमतापूर्वक नहीं दिया जा सकता। हमें यह समझ लेना चाहिए कि सभी प्रकार के अपराधों को इन तीन श्रेणियों में रखा जा सकता है—

१. व्यक्तिगत
२. सामाजिक
३. स्वाभावाधीन

पहली श्रेणी में वे अपराध तथा कृत्य पड़ते हैं, जिनका प्रभाव एक व्यक्ति अथवा सीमित व्यक्ति-समुदाय पर पड़ता है, जैसे साधारण मार-पीट तथा धन व सम्पत्ति के झगड़े। दूसरी श्रेणी में वे कृत्य आते हैं, जिनका सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है, यथा हत्या (कत्ल), बलात्कार, दंगा आदि। तीसरी श्रेणी में उन अपराधों तथा कृत्यों की गिनती है, जो अप-

राधी के स्वभाव का अंग बन चुके हैं।

इससे स्पष्ट है कि केवल प्रथम कोटि में पड़नेवाले अपराधों व कृत्यों को ही राजीनामे के योग्य माना जा सकता है। शेष को नहीं। इनकी लम्बी-चौड़ी सूची देना यहां न ही उचित है न ही सम्भव। पर इस संक्षिप्त उहापोह से इतना अवश्य सिद्ध हो जाता है कि राजीनामे की बड़ी उपयोगिता है।

न्याय-पंचायतों का संगठन

हम जानते हैं कि भारत में पंचायती न्याय आदिकाल से चला आ रहा है। अंग्रेजी शासन की स्थापना तक हमारे देश में यह प्रथा चलती रही। पर अंग्रेजी शासन में पंचायतों के साथ-साथ पंचायती न्याय की प्रथा पर भी कुठाराघात हुआ। पर बाद में अपने शासन के हितों में अंग्रेज शासकों को इस व्यवस्था का पुनरुत्थान करना पड़ा। इस बारे में भी पुस्तक में अन्यत्र विचार किया गया है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् इस क्षेत्र में कुछ अधिक प्रयोग किये गए हैं। लगभग सभी राज्यों में न्याय-पंचायतों की स्थापना की जा चुकी है, जिनका विवरण आगे मिलेगा। खासकर उत्तर प्रदेश में न्याय-पंचायतों के संगठन पर काफी अध्ययन किया गया है। श्री वांचू की अध्यक्षता में नियुक्त न्यायिक सुधार-समिति ने अपनी रिपोर्ट में न्याय-पंचायतों के बारे में भी अपना मत प्रकट किया था। समिति की राय में न्याय-पंचायतें निर्वाचन द्वारा नहीं बननी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार से स्थापित न्याय-पंचायतें दलबन्दी की भावनाओं से सर्वथा मुक्त नहीं हो सकतीं और पक्षपात तथा दलबन्दी के रहते हुए न्याय निष्पक्ष नहीं हो सकता। फिर इस प्रकार से निर्वाचित पंच अपने मतदाताओं की उपेक्षा नहीं कर सकते—इससे भी न्याय की निष्पक्षता जाती रहती है।

पर स्विट्ज़रलैण्ड, सोवियत संघ तथा कई अन्य देशों में न्यायाधीशों को चुना जाता है। कई देशों में इन्हें अनुभव-प्राप्त वकीलों में से सरकार द्वारा छांटकर नियुक्त किया जाता है। लेकिन अधिकांश न्यायशास्त्री इस बात को मानते हैं कि न्यायाधीश का चुनाव नहीं होना चाहिए।

यह तो हुई न्यायाधीशों तथा पंचों की नियुक्ति तथा चुनाव की बात।

दूसरी महत्वपूर्ण बात पंचायतों के क्षेत्राधिकार की है। इसपर काफी मत-भेद है। इस वारे में सामान्य मत तो यही है कि न्याय-पंचायत का क्षेत्राधिकार ग्राम-पंचायत के अधिक्षेत्र जितना ही होना चाहिए। न्याय-पंचायत का क्षेत्राधिकार वड़ा होने से न्याय प्राप्त करना सुलभ तथा सुविधापूर्ण नहीं रहता और उसमें उलझनें आने लगती हैं। जनता भी प्रारम्भिक न्याय के लिए दूर जाना पसन्द नहीं करती। उत्तर प्रदेश में तीन से पांच गांव-सभाएं एक न्याय-पंचायत क्षेत्र में आती हैं।

जहांतक न्याय-पंचायतों का सम्वन्ध है, उसके वारे में यह कहा जा सकता है—

(१) साधारणतया न्याय-पंचायत का क्षेत्र इतना होना चाहिए कि उसके दूरवर्ती ग्रामों के वासी भी केन्द्र में जाकर काम-काज करके सायंकाल तक घर लोट सकें।

(२) न्याय-पंचायत के पंचों की संख्या नो से अधिक नहीं होनी चाहिए।

(३) न्याय-पीठिका के सदस्यों की संख्या तीन होनी चाहिए।

(४) पीठिका का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि वारी-वारी से सवके नाम आ जायं।

(५) वादियों से सम्वन्धित पंच, पंच-पीठिका पर नहीं रहने चाहिए।

(६) विनिहित अधिकारी को पंच बन सकने की योग्यता रखनेवाले व्यक्तियों की एक सूची हर ग्राम-सभा के लिए वनानी चाहिए और इन योग्य व्यक्तियों में से ग्राम-सभा के लिए वारी-वारी से पंच चुनने का अधिकार होना चाहिए।

(७) पंचों का चुनाव सर्वसम्मति से होना चाहिए।

(८) पंचों को ७० वर्ष की आयु तक पदासीन रहने देना चाहिए। त्यागपत्र, अविश्वास प्रस्ताव अथवा विनिहित योग्यता न रहने पर पद-मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

(९) योग्य व्यक्तियों की सूची हर वर्ष संशोधित होती रहनी चाहिए।

(१०) निर्वाचित पंचों को उपयुक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

(११) इन पंचों को बैठक का भत्ता मिलना चाहिए।

(१२) न्याय-पंचायतों के दीवानी, फौजदारी तथा माल-सम्बन्धी अधिकार सीमित होने चाहिए।

पुनरावलोकन (रिव्यू)

न्यायालय के निर्णय पर संशोधनात्मक निरोध रखने के लिए ही अपील की प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ है। भूल का होना स्वाभाविक है। उसके सुधार के लिए कोई-न-कोई वैध क्रम अवश्य रहना चाहिए। इसी आशय से कानून में इस प्रकार के तीन क्रम रखे गये हैं।

(१) पुनरावलोकन

(२) अपील

(३) निगरानी (रिवीज़न)

पुनरावलोकन के अधीन कार्यवाही विशेष परिस्थितियों अथवा विशेष कारणों के अधीन ही हो सकती है। पुनरावलोकन का अधिकार उसी न्यायालय को होता है, जिसने वाद का निर्णय किया हो। इस अधिकार का प्रयोग सामान्यतः उन परिस्थितियों में किया जाता है, जिनमें कोई तथ्य न्यायालय के सम्मुख किन्हीं ऐसे कारणों से न आ सका हो, जिनपर किसी पक्ष का कावू न हो और फलस्वरूप निर्णय ठीक न हो सका हो। न्याय-पंचायतों में ऐसी परिस्थितियों का उत्पन्न होना लगभग असम्भव ही होता है, क्योंकि पंचों का निकट सम्पर्क होने के कारण लगभग सभी तथ्य सम्मुख आ जाते हैं। फिर उनकी कार्यविधि में भी कानूनी पेचीदगियों का अभाव-सा ही रहता है। इसलिए इस प्रकार की भूल की सम्भावना नहीं के बराबर ही रहती है। फिर ऐसा अधिकार देने का परिणाम यह होगा कि पंचायतों के अधिकांश निर्णय अन्तिम अवस्था को पहुंच ही नहीं पायेंगे। अतः पंचायतों को पुनरावलोकन का अधिकार न देना ही ठीक है।

अपील

जहां पुनरावलोकन का अर्थ होता है अपने निर्णय को स्वयं संशोधित करना वहां अपील सुनने का अधिकार सदा निर्णय करनेवाली अदालत से ऊपर की अदालत को होता है, ताकि यदि कहीं किसी कारण कोई भूल हो भी गई हो तो उसका संशोधन हो सके। दीवानी में तो यह अधिकार वादाधीन सम्पत्ति के मूल्य अथवा किसी विशेष कानूनी समस्या पर अव-

लम्बित रहता है, परन्तु फौजदारी में बहुत कम ऐसी परिस्थितियां हैं, जहां प्रथम अपील के अधिकार भी न हों। अपील एक बड़ा महत्वपूर्ण अधिकार है। कानूनी जगत में इसका बड़ा महत्व है, और आज जब पंचायतों को इतनेंपर्याप्त अधिकार दिये जा रहे हैं तो उसके पास अपील का अधिकार न होना खटकता है।

कई राज्यों में अपील के अधिकार न्याय-पंचायत के पूरे-के-पूरे पंच समुदाय को दिये गए हैं। कुछ राज्यों में इसके लिए तहसील न्याय-पंचायतें बनाई गई हैं, और कहीं-कहीं साधारण अदालतों को ही यह अधिकार दिया गया है। साधारण अदालतों को यह अधिकार देने से अपीलों की पैरवी में वकीलों की उपस्थिति को वर्जित नहीं किया जा सकता, क्योंकि ऐसा करना साधारण न्याय-प्रक्रिया के विरुद्ध होगा और यदि वकीलों को पैरवी की अनुमति दे दी जाय, तो लगभग हर वाद में अपील और कानूनी पचड़ों को प्रोत्साहन मिलेगा। इससे मुकद्दमेबाजी बढ़ती है, जिसे रोकने के लिए ही पंचायती न्याय की प्रथा का पुनः प्रचार किया जा रहा है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि अपील के अधिकार साधारण न्यायालयों को देने से मुकद्दमेबाजी बढ़ने की ही सम्भावना रहेगी। जहां यह अधिकार न्याय-पंचायतों के समस्त पंचों के समुदाय को दिये गए हैं, वहां भी कोरम, पंचों का परिवर्तन, बहुमत-न्याय में दोष तथा सर्वसम्मत निर्णय प्राप्त करने में अड़चनें आदि कठिनाइयां रहती हैं।

ऐसी परिस्थिति में इस समस्या का हल यही दिखाई देता है कि अपील का अधिकार अवश्य रहे, पर जिस प्रकार किशोर अपराधियों के अपराधों की सुनवाई के लिए पृथक् न्यायालय होते हैं, इसी तरह न्याय-पंचायतों की अपील को सुनने के लिए पृथक् न्यायाधीश हों। हर जिले में इस प्रकार का एक न्यायाधीश हो, जो दौरा करके इन अपीलों को सुने और उसी स्थान पर निर्णय दे। इस पद पर अच्छी प्रतिष्ठा-सम्पन्न न्यायाधीश होने चाहिएं, रिटायर्ड व्यक्ति भी रखे जा सकते हैं। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति पंचायत अधिनियम के अधीन होगी, अतः उनके समक्ष वकीलों द्वारा पैरवी वर्जित होगी। इस तरह के न्यायाधीशों की नियुक्ति से न्याय-पंचायतों तथा पंचों को पर्याप्त प्रशिक्षण भी मिल सकेगा। इस प्रकार

पंचायती न्याय सुलभ तथा सत्य पर आधारित होने के साथ सुचारू और कानून की मौलिक धारणाओं के अनुकूल भी होता जायगा।

निगरानी

इसमें केवल यही देखा जाता है कि कहीं न्याय-पंचायत ने अपने अधिकारों का उल्लंघन तो नहीं किया है। यह एक वैध प्रश्न है और इसका सम्बन्ध हमारी अन्य अदालतों से भी है। क्योंकि जब यह निर्णय हो जायगा कि न्याय-पंचायत को अमुक वाद सुनने का अधिकार नहीं है तो वह वाद साधारण अदालतों में ही जायगा। अतः निगरानी के अधिकार साधारण न्यायालयों में ही रहने चाहिए। साधारणतया हर राज्य में ऐसी व्यवस्था है। इसमें किसी विशेष परिवर्तन की आवश्यकता नहीं।

नगर-पंचायत

सरल भाषा में नगर का अर्थ है एक बड़ा ग्राम, जिसमें बाजार हो, मण्डी हो और आबादी इतनी घनी हो कि उसमें कोई कृषि-योग्य भूमि न हो। परन्तु यह बड़ी अव्यक्त और अनिश्चित धारणा है। हमें अब अपनी धारणाएं निश्चित करनी पड़ेंगी।

नगर—पंचायत-राज की इस धारणा के अनुसार नगर वह इकट्ठा बसा हुआ क्षेत्र घोषित होना चाहिए, जिसकी जनसंख्या ५००० से कम न हो और २५,००० से अधिक न हो।

पुर—उस इकट्ठे बसे हुए क्षेत्र को कहा जाना चाहिए, जिसकी जनसंख्या २५,००० से अधिक हो।

नगर तथा पुर की स्थानीय स्वशासनिक संस्थाओं का नाम नगर तथा पुर-पंचायत रखना उचित होगा। जब नगर उपरोक्त व्याख्या से आगे बढ़कर पुर की कोटि में प्रवेश करता है, तभी सब सामाजिक रोग उत्पन्न होते हैं। बड़े शहरों में साथ बसनेवाले पड़ोसी के साथ भ्रातृ-भाव नहीं होता। वहां खेती-बाड़ी के काम को नीचा समझा जाता है। मनुष्य एक मशीन बन जाता है। मशीनों, कलों, दूकानों व दफतरों की दुनिया में रचना नहीं होती। वहां मानव-प्रेम से उत्पन्न हृदय का स्पन्दन रुद्ध हो जाता है। तभी तो वहां ऐसे आन्दोलनों का जन्म होता है, जो मानव के मौलिक भावों से पूर्णतया रहित होते हैं। इन शहरों का ग्रामों या छोटे-छोटे नगरों में तोड़ा जा सकना

सम्भव नहीं है। परन्तु मानवीय भावों को जगाये रखने तथा संचलित रखने के लिए पंचायत की इकाई यहां भी कायम करनी होगी। इसके लिए सुझाव यह है कि हर १००० जनसंख्या के पीछे एक सदस्य नगर अथवा पुर पंचायत में जाय।

प्रारम्भिक विद्यालय का निर्माण भी इन्हीं धारणाओं के अनुसार हो, अर्थात् हर १००० जनसंख्या के लिए, जिसे इस स्तर पर मुहल्ला कहा जायगा, एक प्रारम्भिक पाठशाला हो। ऐसे पांच मुहल्लों के लिए एक माध्यमिक या उच्च पाठशाला हो। यदि पुर की जनसंख्या २५,००० से अधिक हो तो पंचायत-सदस्य-संख्या कम-से-कम २५ और अधिक-से-अधिक ५० तक रखनी उचित होगी। यह इस प्रकार किया जा सकेगा कि पंचायत में प्रतिनिधि का चुनाव पहले प्रति मुहल्ला तथा इसी प्रकार बढ़ते-बढ़ते पांच मुहल्लों तक को हो सकता है। यदि पुर की जनसंख्या २५,००० से अधिक हो तो २५ मुहल्लों के लिए एक उप-पंचायत स्थापित की जा सकती है और उप-पंचायत पुर-पंचायत के लिए एक-एक प्रनिनिधि भेज सकती है।

नगरों तथा पुरों के प्रत्येक स्कूल के साथ एक औद्योगिक केन्द्र रखना उचित होगा। प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय के साथ एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र होना चाहिए, जो शिक्षा-विभाग के नीचे हो। प्रत्येक प्रारम्भिक पाठशाला का औद्योगिक केन्द्र प्रारम्भिक प्रशिक्षण दे। माध्यमिक शिक्षालयों की आय का हिसाब-किताब रखा जाय। आय शिक्षा-विभाग के हिसाब में जायगी। अतः इस स्तर पर ग्राम-विद्यालय का कृषिक्षेत्र उद्योग-क्षेत्र में बदल जायगा। इस स्तर पर वन नहीं होंगे। अतः यहां कृषि व वनों द्वारा आय सम्भव न होगी और आय के लिए अधिक मात्रा में कई प्रकार के कर लगाने पड़ेंगे। इससे पर्याप्त आय हो सकेगी। यद्यपि यहां निःशुल्क श्रम पर्याप्त मात्रा में न मिल सकेगा, तो भी इस स्तर की आय इतनी होगी कि नगर-पंचायत मजदूरी देकर भी काम करवा सकेगी।

उच्च शिक्षा देने का भार नगर व पुर-पंचायतों पर रखना उचित होगा। यहां शिक्षणालय व विद्यालय हों, जिनमें ग्रामीणों को भी शिक्षा की सब सुविधाएं प्राप्त हों। माध्यमिक शिक्षा के बाद शिक्षा रिहायशी विश्वविद्यालयों द्वारा दी जाय। छात्र वहीं रहें। माध्यमिक स्कूलों की

अन्तिम परीक्षाएं भी इन्हीं विश्वविद्यालयों के अधीन हों। ऐसे विश्व-विद्यालय पंचायतों द्वारा आयोजित न होकर सरकार के आधीन हों। अतः इनके बारे में यहां अधिक व्योरे के साथ विचार नहीं किया गया है।

नागरिक स्वास्थ्य—नगरों तथा पुरों में स्वास्थ्य सेवाओं को नये ढंग से आयोजित करना होगा। प्रत्येक डाक्टर के जिम्मे एक सीमित क्षेत्र किया जाय और डाक्टर या वैद्य की योग्यता की कसौटी यह हो कि उसने लोगों के स्वास्थ्य को कितना उन्नत किया है। निजी कारोबार तथा फीसों की सुविधा न रखी जाय।

कानूनी पेशा—नगरों में एक बड़ी समस्या कानूनी पेशे की होगी, क्योंकि नगर तथा पुर-पंचायत में भी न्याय-पंचायत रखनी होगी और यहां भी न्याय-पंचायत में वकीलों को नहीं आने दिया जा सकता। फल यह होगा कि बहुत-से वकीलों को काम नहीं होगा और वे बेकार हो जायंगे। ऐसे बेकार वकीलों के लिए काम ढूंढ़ना पड़ेगा। पंचायत तो सबके लिए सुख-समृद्धि में विश्वास रखती है। अतः वकीलों की सेवाओं के समाजीकरण की योजना बनाई जा सकती है। दूसरा एक सुझाव यह है कि क्योंकि न्याय-पंचायतों के न्याय-सम्बन्धी अधिकार सीमित होंगे और इनके अधिकार से बाहर मुकदमों के लिए अदालतों की आवश्यकता रहेगी, इसलिए यह हो सकता है कि परिमित संख्या की पंचायतों के लिए केन्द्रीय अदालत हो और उसमें एक निश्चित संख्या में वकीलों की नियुक्ति की जाय। इनको निश्चित वेतन दिया जाय। इनका कर्तव्य सम्बन्धित न्यायालयों को कानूनी सलाह देना हो। इसके अतिरिक्त अदा-लत उनमें मुकद्दमों की पैरवी का काम बांट सकेगी। इससे वकीलों द्वारा गवाहों का पढ़ाया जाना या झूठे मुकद्दमों का बनाया जाना बन्द हो जायगा और उनके लिए मुकद्दमेबाजी के बढ़ने में कोई आकर्षण नहीं रहेगा।

इस प्रकार वकीलों के रखे जाने से व्यय बढ़ेगा। इसके लिए वकीलों के वेतन आदि पर होनेवाले व्यय को पूरा करने के लिए कानूनी-सहा-यता-शुल्क नामक फीस दावे तथा आवेदन-पत्र आदि के साथ ही वसूल की जा सकती है। उसकी दरों को निश्चित करके उनकी तालिका बना दी जा सकती है। इस प्रकार वह वकील, जिसे आज पंचायतों का शत्रु

समझा जाता है, पंचायतों के सम्वर्धन तथा समृद्धि का साधन वन जायगा और वे पंचायतों को न्याय-सम्वन्धी प्रशिक्षण भी दे सकेंगे।

नागरिक व्यापार—ग्राम-पंचायत के स्तर पर व्यापार के प्रश्न पर संक्षिप्त विचार किया जा चुका है। ग्रामों में प्रस्तावित नये व्यापार का यह ढांचा उस समय तक फलीभूत न होगा जवतक कि उसकी मौलिक धारणाओं को नागरिक जीवन में भी लागू नहीं किया जायगा। इसलिए इस स्तर पर भी पूरा थोक व्यापार सहकारी सभाओं के आधीन होना चाहिए। यहांपर यह कह देना अनुचित न होगा कि वर्तमान सहकारी सभा ऐक्ट ठीक नहीं है। इसलिए एक नया कानून ऐसा होना चाहिए कि वह व्यापारी को अपनी ओर आकर्षित कर सके। इसके ध्येय निम्न होंगे—

१. जहांतक आवश्यकता की वस्तुओं के व्यापार का सम्वन्ध है, वह केवल सहकारी सभाओं के ही द्वारा होगा।

२. मुनाफे की अधिकतम दर नियत कर दी जायगी। इस प्रकार सरकार को भी घाटे की कोई सम्भावना न रहेगी। नगरों में हर पांच मुहल्लों के लिए एक वहुद्देशीय सहकारी सभा बनाई जा सकती है। इस तरह नगरों और पुरों में भी सहकारी सभाओं की उन्नति होगी। थोक व्यापार सहकारी संघों द्वारा किया जाना ही उचित होगा।

सहकारी बैंक तथा सहकारी कारपोरेशनों (निगमों) का प्रसार भी तेजी के साथ किया जा सकेगा। जव थोक व्यापार इस प्रकार आयोजित हो जायगा और परचून व्यापार के मुनाफे के दर भी अपने-आप ठीक होते जायंगे, तो उसे सहकारी संगठन के नियमों के अनुसार संचालित करना कठिन नहीं रहेगा।

नगरों तथा पुरों में भी खाद्यान्न का प्रश्न कोई विशेष कठिनाई उपस्थित नहीं करेगा, क्योंकि पांच मुहल्लों के लिए वनाई गई वहुद्देशीय सहकारी सभा इस काम को भली प्रकार कर सकेगी। नगर अथवा पुर-पंचायत की आय-व्यय का ठीक अनुमान पेश करना सम्भव नहीं है, क्योंकि प्रत्येक नगर तथा पुर की आय के साधन इतने भिन्न होंगे कि नमूने के तौर पर भी अनुमान करना कठिन होगा और हर पंचायत का

अनुमान दूसरी पंचायत से बहुत भिन्न होगा।

इस प्रकार स्थानीय स्वायत्त-शासन की एक ऐसी शैली निर्मित होगी, जिसके नीचे नगर तथा ग्राम एक-दूसरे के निकट आयेंगे। एक-दूसरे पर निर्भरता बढ़ेगी और ग्राम तथा नगर की लड़ाई समाप्त हो जायगी।

तहसील-पंचायत

आजकल की तहसील भी ग्रामों की तरह एक अस्त-व्यस्त संगठन है। इसकी कोई मर्यादा नहीं है। इसको कभी किसी योजना के अनुसार संगठित नहीं किया गया। पंचायत-राज के ध्येयों के अधीन यह आवश्यक है कि हर इकाई को युक्तिसंगत बनाया जाय। कुदरती तौर पर तहसील, ग्राम तथा नगरों का एक ऐसा समुच्चय होता है, जो सुशासन के लिए आवश्यक समझा जाता है। इस योजना के अन्तर्गत १०० पंचायत-क्षेत्रों से मिलकर एक तहसील बनाई जा सकती है। तहसील का केन्द्र-स्थान तहसील के किसी केन्द्रीय नगर अथवा पुर में होगा ही। ऐसी योजना के अधीन हर तहसील का एक निश्चित तथा लगभग बराबर क्षेत्र होगा और यह युक्ति-संगत भी होगा।

तहसील एक ऐसी इकाई है, जो चिरकाल से रही है और जिसे छोड़ा नहीं जा सकता। अतः तहसील स्तर पर तहसील-पंचायत बनानी पड़ेगी। इसमें ग्राम-पंचायतों के प्रतिनिधि तथा तहसील-स्तर के विभिन्न विभागों के अधिकारी रखने उचित होंगे। तहसीलदार, तहसील-ओवर-सीयर, तहसील-डाक्टर, तहसील-वनाधिकारी, तथा सहकारी-संस्थाओं के तहसील इन्स्पेक्टर आदि तहसील-पंचायत के सदस्य हो सकते हैं। तहसीलदार को उसके पद के नाते तहसील-पंचायत का प्रधान बनाया जा सकता है। नगर तथा ग्राम-पंचायतों को तहसील-पंचायत में समान प्रति-निधान प्राप्त होगा। इसका फल यह होगा कि ग्रामों तथा नगरों के मध्य सरकारी सरपरस्ती में सजीव सहयोग उत्पन्न होगा। साथ ही जनता तथा सरकारी कर्मचारियों का वैमनस्य भी सहयोग तथा मित्रता की भावनाओं में बदल जायगा। इस प्रकार जनता तथा शासन के विभिन्न विभागों के सजीव सहयोग द्वारा रचना के एक नवयुग का उदय होगा। समस्त अंग देश के पुनर्निर्माण के कार्य में जुट जायंगे। तहसील-पंचायत ग्रामीण तथा

नागरिक जीवन को निकट लाने की पहली कड़ी होगी। इसी प्रकार व्यापारिक क्षेत्र में भी इस स्तर पर सहकारी-सभाओं का एक संघ होगा। और यह व्यापार-क्षेत्र में ग्रामीण तथा नागरिक जीवन में सहयोग पैदा करेगा और मैत्री तथा सहयोग की सृष्टि का यह प्रयत्न इस तरह और चढ़ेगा।

ग्रामों के विद्यालयों तथा कृषि व उद्योग-क्षेत्रों की उपज को इन सहकारी संघों द्वारा मण्डियों तक पहुंचाया जा सकेगा। इस प्रकार तहसील-पंचायत ग्राम तथा नगर-पंचायतों के आपस में मिलने-जुलने के स्थान तथा ढंग पैदा करेगी। इसीके साथ यह प्रारम्भिक ग्राम व नगर-पंचायतों को समुचित मन्त्रणा तथा निर्देश देती रहेगी और उनके सम्वर्धन तथा उन्नति के लिए प्रयत्न करेगी। तहसील-पंचायत को कोई न्याय-सम्बन्धी अधिकार न होंगे।

तहसील-पंचायत के निम्न कर्त्तव्य हो सकते हैं—

१. पंचायत के कार्यक्रम तथा उनके वैध नियमादि से परिचय कराने के लिए साहित्य प्रकाशित करना

२. प्रारम्भिक पंचायतों के काम की पड़ताल तथा देखभाल

३. प्रारम्भिक पंचायतों को हर मामले में मन्त्रणा देना

४. प्रारम्भिक पंचायत को वनों के प्रबन्ध के लिए कार्यक्रम बनाकर देना

५. एक पंचायत से दूसरी पंचायत तक उपज के ले जाने के ऐसे उपाय सोचना, जिससे कण्ट्रोल की बुराइयों से बचा जा सके

६. प्रारम्भिक पंचायतों के काम का निरीक्षण

७. प्रारम्भिक पंचायतों की योजनाओं की पड़ताल तथा अनुमोदन

८. प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध करना

९. जनता को सामाजिक शिक्षा देने के लिए वर्तमान मेलों को उन्नत करके उनका इस्तेमाल करना

१०. पुस्तकालय खोलना तथा कृषि-सम्बन्धी, सांस्कृतिक और सामाजिक मेले आयोजित करना

११. पंचायत-सम्मेलन बुलाना

१२. पंचों के लिए शिक्षण शिविर खोलना

यह केवल एक सांकेतिक सूची है। इसमें परिस्थितियों के अनुसार अधिकता-न्यूनता की जा सकती है। तहसील-पंचायत, जिला तथा ग्राम-पंचायत को जोड़नेवाली मध्यवर्ती कड़ी होगी। तहसील-पंचायत को एक वैतनिक मन्त्री की आवश्यकता होगी। इसका एक पुस्तकालय तथा अपना कार्यालय भी आवश्यक होगा। इस पंचायत के सदस्य सरकारी कर्मचारियों को कोई भत्ता नहीं मिलेगा और उनको यह कार्य अपने पद के कर्त्तव्यों में ही समझकर करना होगा। परन्तु गैर-सरकारी सदस्यों को प्रति बैठक भत्ता दिया जाना उचित होगा। साधारणतया प्रतिमास एक बैठक होनी चाहिए। इस स्तर पर पंचायत के व्यय बहुत थोड़े होंगे। अतः इस स्तर पर अन्य कर लगाने का सुझाव अनुचित ही होगा। इसके लिए प्रस्ताव यह है—मालगुजारी (भू-राजस्व) की स्वाई (जिसे पिछले पृष्ठों में ग्राम-पंचायतों को देने का प्रस्ताव रखा गया था) हर तहसील की तहसील-पंचायत अपना खर्च निकालकर बाकी ग्राम-पंचायतों को बांट दे। तहसील-पंचायत के व्यय का अनुमान इस प्रकार हो सकता है—

मद		व्यय
मन्त्री	(१५०+५० रु०)	२४०० रु०
दो क्लर्क	(७०+३० रु०)	२४०० ,,
दो चपरासी	(२५+२० ,,	१०८० ,,
पुस्तकालय तथा संग्रहालय रक्षक	(८०+३० ,,)	१३२० ,,
पंचों का भत्ता	(१० रु० प्रति पंच प्रति बैठक)	१२०० ,,
पुस्तकें तथा अन्य आवश्यकताएं		४६०० ,,
		१३,००० रुपये

इस पंचायत को अपना एक छोटा-सा संग्रहालय अजायबघर भी रखना चाहिए। जहांतक विशेष मन्त्रणा का सम्बन्ध है, वह तहसील-स्तर के अधिकारियों से निःशुल्क उपलब्ध होगी।

जिस प्रकार हर ग्राम-पंचायत के साथ एक बहुद्देशीय सहकारी सभा होगी, उसी प्रकार तहसील स्तर पर सहकारी सभाओं का एक संघ बनाना उचित होगा। पंचायत-क्षेत्र की सहकारी सभाएं इस संघ की सदस्य होंगी। प्रत्येक ऐसी सभा इस संघ के २००० रुपये के भाग (शेयर) खरीद सकेगी और फिर ५०० रुपया प्रति वर्ष लेखा परीक्षण-शुल्क-संघ को देगी। यह संघ तहसील-स्तर पर थोक व्यापार करे। अमानतों द्वारा पर्याप्त राशि उपलब्ध करे। पंचायती सहकारी सभा की उपज का निर्यात भी इन्हीं संघों द्वारा ही हो। आय-व्यय के हिसाब का निरीक्षण भी यही संघ करे और ये पंचायती सहकारी सभाओं को मन्त्रणा भी देते रहें। केवल आय-व्यय-निरीक्षण-शुल्क से ही ५००० रुपये की वार्षिक आय हो जायगी और इस आय से संघ-मन्त्री तथा आय-निरीक्षक की नियुक्ति हो सकेगी। शेष व्यय की रकम लाभ से प्राप्त होगी। पंचायती सहकारी सभाओं तथा तहसील सहकारी-संघ को पंचायतों से पूर्ण सहयोग रखना आवश्यक होगा।

जिला-पंचायत

वर्तमान जिलों के मान भी इतने भिन्न हैं कि इनके पीछे कोई निश्चित सिद्धान्त दिखाई नहीं पड़ता। पंचायत-राज की योजना के आधीन जिलों का निर्माण भी एक निश्चित योजना के आधीन होना चाहिए। मोटे तौर पर योजना यह हो सकती है कि दस तहसीलों का एक जिला हो। ज्योंही हम जिले के निर्माण तक पहुंचते हैं, त्योंही शासन की इकाइयों के संयुक्त निर्माण का क्रम स्वयमेव पूरा हो जाता है। इसी क्रम से प्रान्त-निर्माण की पद्धति प्रकट होगी। एक इकाई दूसरी इकाइयों से सम्बन्धित तथा एक-दूसरी पर आधारित होगी। इससे पारस्परिक सहायता तथा सहयोग के भाव जाग्रत होंगे।

जिला-पंचायत प्रारम्भिक ग्राम-पंचायत से लेकर तहसील-पंचायत तक की विभिन्न पंचायतों के क्रम में सबसे ऊपर होगी। जिला-पंचायत अंशतः तो तहसील-पंचायत द्वारा निश्चित प्रतिनिधान के आधार पर और अंशतः नामजदगी द्वारा निर्मित हो। इस प्रकार प्रत्येक तहसील-पंचायत जिला-पंचायत में एक-एक प्रतिनिधि भेजे और जिला-स्तर के सभी

अफसर इसके लिए नामजद किये जायं। डिप्टी कमिश्नर इस पंचायत का प्रधान हो। स्कूलों के जिला-इन्स्पेक्टर, जिला कृषि-अफसर, जिला सहकारी अधिकारी, जिला डाक्टर, जिला-इंजीनियर तथा वन-विभाग के कंसरवेटर इसके मनोनीत सदस्य हों।

जिला-पंचायत के कर्त्तव्य संक्षेप्त: निम्न हो सकते हैं—

शिक्षा—जिला स्कूल इन्स्पेक्टर सरकारी कर्मचारी होते हुए भी पंचायतों के शिक्षा-कार्य में पूरी-पूरी सहायता दें। ये उन्हें मन्त्रणा दें तथा उनके स्कूलों के निरीक्षण का प्रबन्ध करे। ध्येय तो यह है कि इस स्तर पर भी शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने का प्रयत्न किया जाय। उच्च शिक्षणालय सरकार के अधीन हों, परन्तु इनके साथ भी स्थानानुसार कृषि तथा उद्योग-क्षेत्र हों, जिनसे पर्याप्त आय हो सके, ताकि शिक्षा पर किया गया खर्च पूरा हो सके। शिक्षा का सब प्रबन्ध सरकार द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार होना आवश्यक होगा।

स्वास्थ्य—प्रारम्भिक पंचायतों से ऊपर स्वास्थ्य का सब कार्य सरकार के अधीन होना चाहिए। इस विभाग में जिला-पंचायत केवल प्रारम्भिक पंचायतों को सलाह तथा निर्देश दिया करेगी। जिला-डाक्टर जिला-पंचायत को अपने विभागसहित पूर्ण सहायता दे और स्वीकृत योजना के अनुसार कार्य सम्पादन में सलाह तथा सहायता दे। जिला मेडिकल अफसर जिला-पंचायत द्वारा स्वास्थ्य-विभाग के निर्देश जारी करे।

सड़कें—जिला-पंचायत के नीचे केवल वे ही सड़कें होंगी, जो ग्राम-पंचायत केन्द्र से तहसील तथा जिला केन्द्र तक जायंगी। इस सम्बन्ध में विशेष सलाह जिला इंजीनियर को देनी चाहिए। समस्त सड़कों की देख-रेख, मुरम्मत तथा निर्माण जिला-पंचायत द्वारा स्वीकृत योजना के अधीन होना चाहिए।

अन्वेषण केन्द्र—जिला-पंचायत के लिए अन्वेषण-केन्द्र भी जरूरी है। इस केन्द्र का विशेष कार्य उन समस्त उपायों का अन्वेषण करना हो, जिनके प्रयोग में लाने से पंचायत-राज तथा पंचायत-कार्य उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ जन-साधारण के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध हो सके।

अन्वेपण के मुख्य विपय हों कृपि, स्वास्थ्य तथा पंचायत कार्यपद्धति। इसके साथ एक छोटा कृपि तथा उद्योग क्षेत्र भी हो। इसके अतिरिक्त एक जिला-संग्रहालय तथा पुस्तकालय आदि भी इसके साथ होना चाहिए। सम्वन्धित विभागों के जिला अफसर अपने-अपने विभाग-कार्य की देख-रेख आदि के लिए उत्तरदायी हों। यह सव प्रवन्ध जिला-पंचायत के अधीन हो। इसके अतिरिक्त शासन द्वारा दिये गए सव कार्य यह पंचायत करेगी।

व्यापार—पंचायत के साथ सहकारी आन्दोलन भी परिवर्धित होता रहेगा। जवतक पंचायती वहुद्देश्यीय सहकारी सभाओं के लिए जिले में एक केन्द्रीय सहकारी वैंक तथा सहकारी संघ न होगा तवतक वे उन्नति न कर सकेंगी। अतः जिला-केन्द्र में एक केन्द्रीय सहकारी वैंक और एक केन्द्रीय सहकारी संघ होना चाहिए। समस्त सहकारी सभाएं केन्द्रीय वैंक की और तहसील सहकारी संघ जिला-संघ के सदस्य हों। प्रत्येक तहसील का सहकारी संघ इसका भागीदार हो। व्यक्तिगत भागीदार भी हो सकते हैं। मोटेतौर से यह कहा जा सकता है कि यही संघ जिला-स्तर पर थोक बिक्री का काम करेगा और उनकी उपज के लिए मण्डियां ढूंढ़ेगा। वैंक आवश्यकता पड़ने पर प्रारम्भिक सभाओं को ऋण देगा।

सूचना-केन्द्र—जिला-पंचायत का एक सूचना-केन्द्र भी होगा। यह केन्द्र प्रारम्भिक तथा तहसील-पंचायतों के लिए आवश्यक तथा उपयुक्त सूचनाएं उपलब्ध करेगा। इस कार्य को पुस्तकरक्षक ही करेगा।

आय के स्रोत—जिला-पंचायत को आय के लिए कर लगाने पड़ेंगे। इस स्तर पर लगाये जा सकनेवाले कुछ कर ये हो सकते हैं—

१. व्यवसाय-कर।

२. मेला-कर।

३. घोड़ा-गाड़ी तथा वारवरदारी के पशुओं पर कर।

इस आय के साथ-साथ सरकार से भी कुछ सहायता प्राप्त की जा सकती है। इन करों से हुई आय का अनुमान यह है—

मद	आय
व्यवसाय-कर (एक आना प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष)	३१,२५० रु०
मेला-कर (१०० रु० प्रति मेला १०० मेलों का)	१०,००० ,,
घोड़ा-गाड़ी वारबरदारी के अन्य पशु लगभग	१०,००० ,,
	५१,२५० रुपये

अनुमानित व्यय—जिला-पंचायत के कम-से-कम कर्मचारी ये होंगे—एक मन्त्री, एक ओवरसियर, एक अध्यक्ष अन्वेषण-केन्द्र, एक पुस्तकालय तथा संग्रहालयरक्षक, दो क्लर्क तथा पांच चपरासी। इस स्टाफ के वेतन तथा अन्य व्यय का ब्योरा इस प्रकार होगा—

मद	व्यय
मन्त्री २५० रु० प्रति मास	३००० रु०
ओवरसियर १५० रु० प्रति मास	१८०० ,,
अन्वेषण-केन्द्र अध्यक्ष ३०० रु० प्रति मास	३६०० ,,
पुस्तकालय तथा संग्रहालय-रक्षक २०० रु० प्रति मास	२४०० ,,
दो क्लर्क १०० रु० प्रति मास	२४०० ,,
पांच चपरासी ४० रु० प्रति मास	२४०० ,,
स्टेशनरी तथा अन्य आवश्यकताएं	३००० ,,
अन्वेषण-केन्द्र तथा पुस्तकालय	२००० ,,
	२०,६०० रुपये

कार्य-शैली—जिला-पंचायत की साधारणतया तीन मास में एक बैठक उपयुक्त होगी। कोरम निर्धारित होगा। सारा दफ्तरी काम वैतनिक कर्मचारियों द्वारा किया जायगा।

पंचायत का कार्यालय पंचायत के अपने भवन में होना चाहिए। इसका निर्माण एक स्वीकृत नक्शे के अनुसार होना चाहिए। इस पंचायत-

घर का निर्माण भी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत हो सकेगा। इसका नक्शा सारे देश के लिए एक-सा होना चाहिए। इस प्रकार जिला-स्तर तक स्थानीय स्वराज का एक शृंखलाबद्ध तथा अन्योन्याश्रित क्रम स्थापित हो जायगा। सत्ता का मूल परिवार और ग्राम होगा। राजकीय कर्मचारी भी बराबर सहयोग देंगे। ग्राम की उन्नति तथा विकास की धारणा किसी भी स्तर पर भुलाई नहीं जायगी। नगर भी अपनी स्वाभाविक अवस्था में आकर ग्राम और ग्रामीणों के पोषक बन जायंगे। इस प्रकार एक वास्तविक लोकतन्त्र को क्रियान्वित किया जा सकेगा, जहां अधिकार और कर्त्तव्य हर समय जनता के पास ही रहेंगे। साथ ही पूरी-की-पूरी व्यवस्था बड़ी संगठित होगी। केन्द्रीय सत्ता केवल समाज-सेवा के लिए होगी और वह भी उतनी ही मात्रा में जितनी कि मूल संस्थाएं चाहें।

प्रान्त, देश तथा विश्व का शासन

प्रान्त का शासन—प्रान्तीय स्तर पर शासन की दो समस्याएं सामने आती हैं—एक प्रबन्ध की और दूसरी कानून बनाने की। हमारी वर्तमान व्यवस्था के अन्तर्गत कानून बनाने का कार्य निर्वाचित विधानमण्डल करता है और प्रबन्ध का कार्य विधान-मण्डल के प्रति उत्तरदायी मन्त्रि-परिषद् करती है। विधानमण्डल के सदस्यों का निर्वाचन होता है। वर्तमान प्रणाली का मुख्य दोष यह है कि विधानमण्डलों के सदस्य अपने चुनाव के बाद जनता से सम्बन्ध खो बैठते हैं। चुनाव के पहले उनका केवल एक ध्येय होता है, और वह है सदस्यता के लिए वोट पाना। पांच वर्ष के बाद जब अगला चुनाव होता है तो फिर यही क्रम दुहरा दिया जाता है। इससे लोकतन्त्र की भावना का विकास नहीं हो पाता है।

पंचायत-राज की धारणा के अन्तर्गत हमें विधानमण्डलों और उनके चुनाव के मौजूदा स्वरूप को बदलना होगा। गांधीजी के मत के अनुसार तो वर्तमान विचार के राज्य अथवा प्रान्त न होकर जिला का सीधा सम्बन्ध केन्द्र से होना चाहिए। उनके क्रम में तीन स्तर हैं—ग्राम, जिला और देश।

यदि सुविधा के लिए यह आवश्यक समझा जाय तो प्रान्तीय सलाह-

कार परिषद् के लिए जिला द्वारा प्रतिनिधि भेजे जा सकते हैं। यह सलाहकार-परिषद् केवल अध्यक्ष चुनेंगे और जिलों को सलाह देंगे तथा देश के केन्द्रीय संसद को कानून बनाने के प्रस्ताव भेज सकेंगे। इस स्तर पर मन्त्रिमण्डल तथा विधान-सभाएं नहीं होंगी।

सलाहकार-मण्डल के अधिवेशन नियत समय पर हुआ करेंगे। अपनी तहसील अथवा ग्राम-पंचायत का विश्वास खो देनेवाले व्यक्ति को सलाहकार-मण्डल की सदस्यता छोड़नी पड़ेगी। इस प्रकार से निर्मित सलाहकार-मंडल का प्रत्येक सदस्य अपने प्रान्त, जिले, तहसील तथा गांव की परिस्थितियों से परिचित होगा और सलाह द्वारा देश तथा जिलों में सम्पर्क कायम रखेगा।

ग्रामों के संगठन पर आधारित शासन का यह स्वरूप शासन के भार को कम करेगा, करों के बोझ को हल्का करेगा, उसे स्थानीय साधनों के भीतर सीमित रखेगा और उसे वास्तविक अर्थों में लोकतान्त्रिक बनायेगा।

देश का शासन—देश का प्रबन्ध करने के लिए निर्वाचित विधान-मण्डल (संसद) का चुनाव इस प्रकार होना चाहिए कि हर ग्राम-पंचायत का एक वोट माना जाय। हर उम्मीदवार कम-से-कम दो पंचायतों द्वारा नामजद किया जाय। चुनाव के लिए प्रचार नहीं किया जा सके। उम्मीदवारों के सम्बन्ध में राज्य पूरा विवरण हर पंचायत के पास भेजे। उन सब व्यक्तियों पर हर पंचायत विचार करके उपयुक्त व्यक्तियों के पक्ष में मत दे। इस प्रकार पंचायतों द्वारा सदस्यों का चुनाव होने से हर संसद-सदस्य का पंचायतों के साथ सजीव सम्बन्ध बन जायगा। पंचायतों को अधिकार होगा कि वे किसी भी अनुपयुक्त सदस्य को किसी भी समय उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पास कर वापस बुला लें और उसके स्थान पर नया सदस्य चुन लें। प्रधानमन्त्री का चुनाव संसद के सदस्य करें। वह अपनी मन्त्रि-परिषद् बनाये, जो संसद के प्रति उत्तरदायी होगी। पर राष्ट्रपति का चुनाव पंचायतें करें।

देश का शासन प्रधान मन्त्री और उसकी मन्त्रिपरिषद् के सदस्य मन्त्री चलायंगे। संसद का मुख्य काम कानून बनाना और शासन पर नियन्त्रण रखना होगा। विशेष परिस्थितियों में राष्ट्रपति संसद तथा मंत्रियों के

कार्य कर सकेगा। यदि संसद के दोनों सदन—लोकसभा तथा राज्य सभा दोनों रखे जाते हों तो एक अप्रत्यक्ष मतदान द्वारा तथा दूसरी पंचायतों के प्रतिनिधान से निर्मित हो सकती है।

पूरे देश के शासन की चर्चा करते समय न्याय की व्यवस्था पर भी ध्यान देना होगा। ग्रामीण स्तर पर न्याय की चर्चा हम पहले कर चुके हैं, पर उससे ऊपर के स्तर का विचार अभी तक नहीं किया गया था।

न्यायालय ही कानून के शासन के संरक्षक होते हैं और न्यायालयों को कई बार शासन के विरुद्ध भी फैसले देने पड़ते हैं। इसलिए न्याय-विभाग की स्वतन्त्रता पर कोई आंच नहीं आनी चाहिए। विभिन्न देशों में इसके लिए विभिन्न प्रणालियां प्रचलित हैं। इसके लिए सुझाव यह है कि देश के सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा मन्त्रि-परिषद् के परामर्श पर होनी चाहिए। मुख्य न्यायाधिपति की पद-विमुक्ति केवल संसद के प्रस्ताव पर ही हो सके। मुख्य न्यायाधिपति की मन्त्रणा से राष्ट्रपति सर्वोच्च न्यायालय के अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति करे और प्रान्तीय न्यायालय जिलों तथा अन्य न्यायालयों की स्थापना करेंगे। इस तरह से अपने प्रबन्ध में पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जाने से न्याय-तन्त्र की स्वतन्त्रता भी निश्चित हो जायगी।

विश्व-शासन—मनुष्य में समस्त विश्व को एक ही शासन में लाने की भावना आदिकाल से विद्यमान है। प्राचीन भारत के चक्रवर्ती सम्राट, सिकन्दर और चंगेज जैसे महान् विजेता, और हिटलर जैसे दुस्सहासी आक्रान्ता—सभीने किसी-न-किसी प्रकार इसे साकार करने की चेष्टा की थी।

बीसवीं सदी में ऐसी व्यवस्था के निर्माण की दिशा में पहला कदम प्रथम विश्व-युद्ध के बाद उठाया गया था। राष्ट्र-संघ (लीग ऑव नेशन्स) की स्थापना इसी उद्देश्य से की गई थी कि वह संसार में शान्ति और व्यवस्था कायम रख सके। पर संगठन की आधारभूत कमजोरियों और इसके पास ठोस शक्तियों का अभाव होने के कारण यह संस्था सफल न हो सकी।

द्वितीय विश्व-युद्ध के पश्चात् बनाया गया संयुक्त राष्ट्र-संघ (यू.

एन. ओ.) इन बातों में पिछले राष्ट्र-संघ से अधिक अच्छा है, और विश्व के गुटों में बंटे होने और अविश्वास और भय के वातावरण के बावजूद इसने अपने अभिकरणों तथा अन्य संस्थाओं के द्वारा मानव-जाति की बड़ी सेवा की है।

इस प्रकार विश्व-व्यवस्था तथा विश्व-शान्ति को बनाये रखने के उद्देश्य से निर्मित ये सभी संस्थाएं मनुष्य की उसी पुरानी आंतरिक भावना के कारण ही हैं, जिसके अन्तर्गत आदिकाल से कई व्यक्तियों ने संसार को एक व्यवस्था में लाने के प्रयास किये थे।

पर इन संस्थाओं की आधारभूत कमजोरी यह है कि सदा से इनपर बलशाली राष्ट्रों की प्रभुता जमी रही है। इन महान् राष्ट्रों की परस्पर विरोधी भावनाओं के रहते विश्व-शान्ति और विश्व-व्यवस्था की कल्पना नहीं की जा सकती। जबतक विभिन्न राष्ट्रों के पास अपने-अपने सैन्य तथा अस्त्र बल रहेंगे, ऐसी व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकेगी। अतः जबतक अखिल विश्व के स्तर पर किसी ऐसी संस्था का निर्माण नहीं होता, जो सभी राष्ट्रों की प्रतिनिधि हो, तबतक इस उद्देश्य से स्थापित की गई कोई भी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था सफल नहीं हो सकेगी। पंचायती योजना के अनुसार निर्मित विश्व-संघ को संसार का प्रत्येक राष्ट्र कुछ अधिकार प्रदान करेगा। ये अधिकतर बहुत-कुछ उन्हीं अधिकारों जैसे होंगे जैसे कि इकाइयों में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए और उनके पारस्परिक सम्बन्धों को अच्छा रखने के लिए संघीय शासन के देशों में उनके केन्द्र को प्राप्त होते हैं। संघीय शासन में सेना केवल केन्द्र का विषय होता है। विश्व-संघ के सदस्य अपने-अपने देश के अन्दर अपनी-अपनी सुरक्षा के लिए तो सेना रख सकेंगे, परन्तु दूसरे देश में प्रविष्ट होनेवाली सेना इसी संस्था के अधीन रहना चाहिए। इन शक्तियों से सम्पन्न संस्था ही प्रभावशाली हो सकती है। यह संस्था बाकायदा निर्वाचित होनी चाहिए। हर देश की संसद अपनी जनसंख्या के आधार पर अपने प्रतिनिधि विश्व-शासनमण्डल में भेजे। वह मण्डल अपनी एक संचालक परिषद् नियुक्त करे। इससे एक पूर्ण रूपेण प्रतिनिधि विश्व-संस्था का निर्माण सम्भव हो सकेगा। ऐसा विश्व-शासनकाल वस्तुतः ग्रामों का प्रतिनिधि होगा। जब

तक ऐसी प्रतिनिधि और प्रभावशाली संस्था नहीं बनती, तबतक विश्व-कल्याण के सपने पूरे होने सम्भव नहीं। जब एक ऐसा तन्त्र निर्मित हो जायगा तब शनैः शनैः अहिंसात्मक विचाराधारा नीचे से विकसित होती तथा पनपती हुई ऊपर को बढ़ेगी। अधिक-से अधिक अधिकार ग्रामों को मिलते जायंगे और एक शासन-निरपेक्ष समाज की धारणा से क्रियान्वित होनेवाले लक्ष्य तक पहुंचना सम्भव हो सकेगा। शासन-निरपेक्ष समाज की रचना शासन-विहीन समाज की धारणा से इस बात में भिन्न है कि शासन-निरपेक्ष समाज में शासन केवल इसलिए शेष रहता है कि कोई व्यक्ति, दल अथवा राष्ट्र शक्ति हथियाने का प्रयत्न न कर सके।

स्पष्ट है कि इनमें से कई प्रस्ताव ऐसे हैं, जो सामान्य पाठक को आज अद्भुत तथा अव्यावहारिक लग सकते हैं। परन्तु हर नई विचारधारा आरम्भ में ऐसी ही लगती है। पंचायत-राज की इस धारणा के पीछे सदियों का अनुभव है। यह व्यवस्था आज की उथल-पुथल की दुनिया के सामने प्रगति, शान्ति और सुख का एक व्यावहारिक नक्शा प्रस्तुत करती है।

आज पंचायत-राज हमारे देश का जयघोष है। इस दिशा में नए-नए प्रयोग हो रहे हैं। हर राज्य इसे सफल बनाने की चेष्टा में है। श्री जयप्रकाश नारायण के निबन्ध ने तो विश्व-भर का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। इस पुस्तक के अगले अध्यायों में इस दिशा में जो हुआ है तथा जो होनेवाला है, उस पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया गया है।

पंचायत-राज एक ऐसी कल्पना है, जो विश्व के सामने लोकतन्त्र का एक नया वास्तविक दृष्टिकोण रखने जा रही है। इसका पूर्ण व्यक्त रूप अभी विकसित होने को है। अतः हर देशवासी का कर्त्तव्य है कि वह इसपर सोचे, विचार करे और उन विचारों को जनता के समक्ष रखे ताकि इसके विकास कार्य में शासन तथा नेताओं को सहायता मिले।

: २ :

भारत की पंचायत-परम्परा

इतिहासकार आदिमकाल को ही पुराणों का 'सतयुग' कहते हैं। महाभारत में सतयुग के बारे में कहा गया है कि सतयुग में सब लोग ब्राह्मण थे। कोई वर्ण-भेद नहीं था। हरेक व्यक्ति अपने धर्म-कर्त्तव्य का पालन करता था। अपराध नहीं होते थे। राजा की परिपाटी से लोग उस समय अपरिचित थे। दण्ड देने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती थी और न ही कोई दण्ड देनेवाला होता था। कालान्तर में समाज में विकार उत्पन्न हो जाने के कारण ही वर्णों की उत्पत्ति हुई। इसी तरह से यह भी वर्णन आता है कि विवाह की कोई ऐसी वैध प्रणाली नहीं होती थी, जैसी कि आज हमारे यहां प्रचलित है। राजा की संस्था के प्रादुर्भाव का कारण बताते हुए महाभारत में लिखा है कि एक ऋषि ने दूसरे ऋषि की पत्नी से बलात्कार किया। उस अपराध को सत्यकेतु ने सामाजिक अपराध ठहराया और ऐसे सामाजिक अपराधियों को दण्ड देने के लिए राजा की संस्था का निर्माण किया गया।

राजा का जन्म

राजा की संस्था की स्थापना करते हुए कहा गया है कि किसी व्यक्ति के व्यवस्थापक न होने के कारण आर्यावर्त में दुराचार और अव्यवस्था फैल गई और सामाजिक नियमों की अवहेलना तथा उपेक्षा की जाने लगी। परिणामस्वरूप आर्य जाति की रक्त-शुद्धता नष्ट हो गई और कई अनार्य आर्य जाति में मिश्रित हो गये। इस वर्णसंकरता से प्रचलित मान्यताओं तथा धारणाओं को व्याघात पहुंचने लगा। इन सब कारणों से एक ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी, जो समाज में फिर से व्यवस्था स्थापित कर सकें और फल-

स्वरूप राजा का जन्म हुआ। परन्तु आर्य राज्य-शासन-प्रणाली में राजा के राज्य करने का नैसर्गिक अधिकार कभी नहीं माना गया। राजा को आर्य-नियमों के अनुसार दिये गए अधिकारों के अतिरिक्त अन्य कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता था। यदि राजा भी आर्य-नियमों की अवहेलना या निरादर करता था, कोई अनधिकार चेष्टा करता था तो मन्त्रिमण्डल अथवा वृहत् राज्य-सभा द्वारा उसपर जुर्माना किया जा सकता था। उस काल में राजा से तात्पर्य एक ऐसे नेता से था, जो अपनी प्रजा का रंजन करने में, उसका पालन-पोषण तथा रक्षा करने में समर्थ हो। राजा शब्द की परिभाषा करते हुए यह लिखा गया है कि—य: प्रजा: रंजयति स एव राजा नेतर:।"

विश:, समिति और सभा

प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि उस काल में जनता की समितियों के द्वारा ही शासन-कार्य चला करता था। यह समिति वस्तुत: उस क्षेत्र के निवासियों के द्वारा निर्वाचित सभा होती थी। वेदों में इस समिति को 'विश:' कहा गया है। इस समिति का एक कार्य राजा का चुनाव भी हुआ करता था। यह समिति एक राजा के स्थान पर दूसरे राजा का चुनाव भी कर सकती थी। इस प्रकार वैधानिक दृष्टिकोण से इस समिति को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। राजा का यह कर्त्तव्य था कि वह समिति की बैठकों में उपस्थित रहे। यदि राजा समिति की बैठक में उपस्थित नहीं होता था तो उसको जनरंजक नहीं माना जाता था। उस क्षेत्र में रहने-वाले सभी व्यक्ति इस सभा के सदस्य होते थे और ये सदस्य किसी एक सदस्य को निर्वाचन द्वारा चुनकर उसको उस समिति में अपने प्रतिनिधि के रूप में भेजा करते थे। हर गांव में एक नेता होता था, जिसको 'ग्रामणी' कहा जाता था। समिति एक स्थानीय संस्था थी। बाद में इसीको 'परिषद्' कहा जाने लगा।

समिति के अतिरिक्त 'सभा' नामक एक और संस्था थी। सभा में स्वतन्त्रतापूर्वक विवाद चलते थे और जो निश्चय सभा या समिति में हो जाता, उसका पालन सबके लिए अनिवार्य समझा जाता था। परन्तु यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि समिति तथा सभा का परस्पर

सम्बन्ध किस प्रकार से आयोजित किया जाता था। सभा के प्रधान को सभापति कहा जाता था। इसमें सन्देह नहीं कि सभा एक उच्चकोटि की संस्था थी और निर्णयात्मक कार्य किया करती थी।

इन बातों से पता लगता है कि प्राचीन भारत में शासन-प्रबन्ध करने के लिए निर्वाचित संस्थाएं हुआ करती थीं। यही नहीं, धार्मिक कार्य के लिए भी संस्थाएं थीं, जोकि 'विदथ' के नाम से पुकारी जाती थीं। देश-रक्षा के लिए जो लोकप्रिय संस्था थी, उसे उस समय 'सेना' कहा जाता था।

समय के साथ-साथ लोकतान्त्रिक पद्धति पर आधारित इन संस्थाओं का विकास होता गया। शिक्षा, अर्थ, व्यापार और न्याय आदि कार्यों के लिए अनेक स्वशासित संस्थाए विकसित होती गई। ये संस्थाएं धीरे-धीरे ग्राम-क्षेत्रों के अन्दर शासन के सारे प्रबन्ध-कार्य को करने लगीं और समाज का एक आवश्यक अंग बन गई।

इन संस्थाओं को सम्पत्ति प्राप्त करने, रहन करवाने तथा रहन रखने के पूर्ण अधिकार होते थे। ये संस्थाएं भारी अपराधों को छोड़कर ग्राम-क्षेत्र में न्याय का कार्य भी करती थीं। इसके अलावा भूमि प्राप्त करना, अनाज संग्रह करना तथा जनता के सेवा के कार्य भी इन्हींके द्वारा किये जाते थे। इनको श्रम प्राप्त करने का अधिकार भी था और जलाशयों, उद्यानों, सिंचाई के साधनों, नहरों तथा पथों की देखभाल का प्रबन्ध भी इनके ही अधीन हुआ करता था। अकाल तथा अन्न-संकट के समय इनको जनता की सहायता करने तथा खजाने से ऋण लेने का अधिकार था और कई बार तो ये अपनी सम्पत्ति बेचकर भी जनता की सहायता करती थीं। ये संस्थाएं अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में सदैव सतर्क रहा करती थीं और ग्रामीणों को डाकुओं तथा शत्रुओं से भी बचाती थीं।

इन ग्राम-सभाओं के निर्णय को न माननेवालों को ग्राम-द्रोही कहा जाता था। उस क्षेत्र के समस्त करों को सरकार को देने की जिम्मेदारी भी इन्हीं संस्थाओं पर हुआ करती थी। इनके हिसाब की देखभाल तथा पड़ताल शासन के कर्मचारी किया करते थे और इनके सदस्यों को अपने कर्त्तव्य की अवहेलना पर दण्ड दिया जाता था।

ग्राम-सभा को, जिसे 'महासभा' कहा जाता था, गांव के प्रवन्ध के पूर्ण अधिकार थे। कहीं-कहीं इन सभाओं के पास अपने भवन भी होते थे और वाकी स्थानों पर इसकी वैठकें मन्दिरों में हुआ करती थीं। हरेक कार्य के लिए छोटी-छोटी समितियां वनाई जाती थीं। समिति के प्रधान को 'महापुरुप' कहा जाता था। यह समितियां जलाशयों, उद्यानों, न्याय, धन-धान्य, मन्दिरों तथा कृपि आदि का प्रवन्ध किया करती थीं।

ग्राम-सभा के चुनाव के लिए ग्राम को दस क्षेत्रों में वांटा जाता था। हरेक चुनाव-क्षेत्र के निवासी एकत्र होकर इस समिति में रखे जाने योग्य व्यक्तियों की सूची तैयार कर लेते थे। साधारणतः ३५ से ७० साल की आयुवालों को ही इस कार्य के योग्य समझा जाता था। इसके साथ शिक्षा तथा सम्पत्ति-सम्वन्धी योग्यता भी देखी जाती थी। उन व्यक्तियों को, जो कभी पिछली समिति में नियुक्त हो चुके हों और जिन्होंने हिसाव आदि में कुछ गड़वड़ की हो, या जिन्होंने पांच वड़े पापों में से कोई पाप किया हो, उन्हें इन समितियों में रखे जाने योग्य नहीं समझा जाता था। ऐसे प्रस्तावित व्यक्तियों में से समितियों के लिए चुनाव होता था। और अनुभव तथा शिक्षा के अनुसार उन्हें समितियों का कार्य सौंपा जाता था।

राजा प्रजा का सेवक

प्राचीन भारत में राजा का शासन करने का दैवी अधिकार नहीं माना जाता था। उसे प्रजा का सेवक ही माना जाता था। राजा को केवल वही अधिकार प्राप्त थे, जो कि कानून के द्वारा प्रजा की ओर से दिये जाते थे। राजा पर जुर्माना किया जा सकता था और मन्त्रिमण्डल या स्वयं जनता की स्वतन्त्र सभा वुरे राजा को पदच्युत भी कर सकती थी। इसके अतिरिक्त राज्य-कर्त्तव्यों की अवहेलना करने अथवा कानून के विरुद्ध आचरण करने पर भी उसको हटाया जा सकता था। वास्तव में राजा का स्थान ग्रामणी (ग्राम-सभाधिपति) से अधिक नहीं था। कोई भी राजा मन्त्रिमण्डल के विना कार्य नहीं कर सकता था। रामायण में भी आठ मन्त्रियों के एक मन्त्रिमण्डल का जिक्र आता है। मन्त्रिमण्डल में एक मुख्यमन्त्री भी होता था, जिसको प्रधान कहा जाता था। इस

प्रकार यह कहना अत्युक्ति न होगा कि आर्य भारत में जिस लोकतान्त्रिक शासन-पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ, उसकी मौलिक संस्था भारत के ग्रामों में ही उत्पन्न हुई।

भारत की प्राचीन शासन-पद्धति के सम्बन्ध में यूरोपीय विद्वानों ने बड़े परिश्रम के साथ खोज की है। इनमें से श्री ई० बी० हैवेल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हैवेल के अनुसार, "आर्य प्रजातान्त्रिक पद्धति से अपना शासन-कार्य चल ते थे। प्रजातन्त्र की आधार-शिला ग्राम थे। प्रदेश की रक्षा और जीवनोपयोगी वस्तुओं की उपलब्धि सुगमता से हो सके, इसके लिए एक या कई ग्रामों को मिलाकर एक संघ बना दिया जाता था। सारा प्रदेश राजा के अधीन होता था। राजा का पद दो प्रकार से प्राप्त होता था—(१) निर्वाचन से, (२) वंशानुक्रम से। परन्तु किसी भी सूरत में राजा को आर्य-परम्परा पर बने नियमों के विरुद्ध नहीं जाने दिया जाता था।

"जनता के प्रतिनिधियों की एक वृहत् सभा हर साल अपनी एक बैठक करती थी, जिसमें ग्राम-परिषद् के लिए पांच सदस्य चुने जाते थे, जो पृथक्-पृथक् रूप से समाज के पांच आवश्यक तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते थे, ताकि ग्राम का शासन पूर्णतया आर्य-पद्धति के अनुसार चलाया जा सके। सदस्य निर्वाचन से चुने जाते थे। परन्तु कई बार, राजा के समान, कई परिवारों को वंशगत सदस्यता का अधिकार भी दे दिया जाता था। लेकिन जब भी कोई अपने कर्त्तव्य से विमुख होता था तो उसका यह अधिकार छीन लिया जाता था। वंशानुगत सदस्यता का अधिकार होने से कई बार वृहत् सभा केवल परामर्शदात्री मात्र ही रह जाती थी, परंतु फिर भी जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए सभा की राय अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती थी। यहांतक कि मौर्यकाल में राज्यशासन का भार राजा में केन्द्रित हो जाने पर भी इन सभाओं की राय को बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता था।"

ऊपर के इस संक्षिप्त वृत्तान्त से यह भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भारत में शासन विकेन्द्रित था और वह ग्राम-पंचायतों के हाथ में था। अतः यदि यह कहा जाय कि यह सत्ता बाद में राजाओं का

केन्द्रीय शासन को मिली, तो कोई अत्युक्ति न होगी। अन्य देशों में भी मानव बहुत-कुछ इसी तरह से असभ्यता से सभ्यता की ओर बढ़ता गया। आरम्भ में परिवार पर परिवार के वृद्ध व्यक्ति का नियन्त्रण था और परिवार-सम्बन्धी सभी कार्यों का वह सर्व-सर्वा माना जाता था। इस प्रथा के चिह्न अभी तक मिलते हैं। लेकिन शुद्ध, स्पष्ट तथा पद्धति के रूप में पंचायत-राज के आरम्भ का श्रेय भारतवर्ष को ही है। भारत में इन संस्थाओं का संगठन एक वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन तथा अनुसंधान का फल था। ये ग्राम-सभाएं क्षेत्रों में संगठित थीं और क्षेत्र मण्डलों में ग्रंथित और समस्त देश इसी प्रकार से एक सूत्र में बंधा हुआ था।

प्राचीन भारत में पंचायतें

हम देख चुके हैं कि भारत में ग्रामराज की प्रथा का किस प्रकार उदय और विकास हुआ। ग्रामराज्य का यह संगठन और ग्रामों की यह स्वतन्त्रता समय के साथ-साथ और अधिक पनपती और विकसित होती गई। रामायण में इनका वर्णन जनपदों के नाम से आता है। महाभारत काल में भी इन संस्थाओं को पूरी स्वायत्तता प्राप्त थी। वैदिककालीन तथा उत्तर वैदिककालीन इतिहास के अवलोकन से यह बात स्पष्ट हो गई है कि प्राचीन भारत का प्रत्येक ग्राम एक छोटा-सा स्वायत्त राज्य था। इस प्रकार के कई छोटे-छोटे गांवों के छोटे-छोटे प्रादेशिक संघ मिलकर बड़े संघ बन जाते थे। संघ पूर्णतः स्वावलम्बी थे तथा एक-दूसरे से बड़ी अच्छी तरह जुड़े हुए तथा सम्बन्धित थे। वास्तव में उनका संगठन इतना मजबूत था कि उसने एक सुदृढ़ दुर्ग की भांति विदेशी आक्रमणों से हमारे देश की संस्कृति की रक्षा की। आक्रमणकारियों के रेले-के-रेले हमारे देश पर आते रहे, कई विदेशी जातियां यहीं बस भी गईं, पर हमारे ग्राम-संगठन, हमारी संस्कृति और हमारी परम्परा पर उनका कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा। देश के क्रमिक इतिहास के अभाव के कारण इनके विकास का क्रमबद्ध वृत्तान्त नहीं मिल पाता, परन्तु बौद्ध-काल के संघों की कार्य-पद्धति का जो दर्शन मिलता है, उसपर ग्रामराज की प्रथाओं की स्पष्ट छाप है। इन संघों की कार्य-पद्धति का वर्णन करते हुए हैवेल लिखता है—

"इन संघों की बैठकों में सदस्य पदानुसार निश्चित जगहों पर बैठते थे। इन स्थानों का निर्धारण आसन प्रज्ञापक किया करता था। प्रधान इस घोषणा से कार्यारम्भ करता—'आदरणीय संघ मुझे श्रवण करे और यदि संघ को समयोचित प्रतीत हो तो कार्य भी करे—संघ के आगे यह प्रस्ताव है।' प्रस्ताव पढ़े जाने के पश्चात प्रस्तावक उसका आशय समझाता था। जिन्हें प्रस्ताव से विरोध होता था, वे बहस करते और अपनी बात रखते थे। फिर प्रधान पूछता था कि क्या प्रस्ताव स्वीकार है। तीन बार ऐसा करने पर यदि कोई विरोध न होता तो प्रस्ताव स्वीकृत समझा जाता था, अन्यथा मत लिये जाते। निर्णय बहुमत से होता था। परन्तु यह आधुनिक समय का बहुमतवाद नहीं था। बौद्ध संघ तथा आर्यों की सभा पर अलिखित परन्तु परम्परागत नियमों और प्रथाओं का बड़ा प्रभाव था। जब धर्म के विषय पर कोई विवाद होता तो धर्मसंघ के बृहत् अधिवेशन का निर्णय मान्य होता था। बृहत् अधिवेशन का बुलाया जाना बहुत महत्वपूर्ण घटना होती थी। वैशाली तथा राजगृह के ऐसे अधिवेशनों का वर्णन बौद्ध ग्रंथों में मिलता है। संघ की साधारण बैठकों में मत-निर्णायक अथवा मध्यस्थ निर्णायक भी चुन लिया जाता था, जिसका निर्वाचन उसके न्याय, ज्ञान तथा सदाचार के गुणों पर निर्भर होता था। यह हरेक निर्णय पर दिये मतों की भली प्रकार जांच करता था और ऐसे निर्णयों को अवैध घोषित करता, जो धर्म-विरुद्ध होते। इस प्रकार भारत की शासन-पद्धति मध्यस्थ-निर्णय तथा बहुमत का मध्यवर्ती मार्ग था।"

बौद्ध-संघों के शासन की प्रणाली वस्तुतः भारत की ग्राम-पंचायतों तथा ग्राम-संघों से ही ली गई थी। भारत पर सिकन्दर महान् तथा अन्य यूनानी आक्रमणकारियों द्वारा निर्मित यूनानी स्मारकों से भी इस बात का पूर्णरूपेण समर्थन होता है कि ग्रामों के पंचायती संगठन पूर्णतया पुष्ट थे और ग्रामों की इकाइयों को पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

मौर्यकाल में भी ग्राम-इकाइयों को स्वायत्तता प्राप्त रही, तथापि हैवेल के कथनानुसार चाणक्य (कौटिल्य) इन स्वतन्त्रता तथा पृथक् छोटी-छोटी इकाइयों को देश की राजनैतिक सत्ता के ह्रास का कारण मानता था। यह ठीक है कि उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अर्थशास्त्र' में

इनका कोई विशेष वर्णन नहीं किया है, परन्तु चन्द्रगुप्त के दरबार में रहनेवाले यूनानी राजदूत मैगस्थनीज के वृत्तान्त से उसके बारे में काफी सामग्री मिलती है। मैगस्थनीज़ के वृत्तान्त से उस समय के नगर-प्रशासन तथा ग्राम-प्रशासन पर खासा प्रकाश पड़ता है। नगरों का प्रशासन भी पंचायती प्रणाली से ही होता था, और तत्कालीन पाटलिपुत्र का प्रशासन उसकी सफलता का सूचक है।

मैगस्थनीज के अनुसार नगर-प्रशासन भी ग्राम-प्रशासन की भांति ही होता था। नगर का शासन एक निर्वाचित संस्था के हाथ में होता था, जिसमें ३० सदस्य होते थे। सदस्य छः समितियों में विभक्त होते थे। प्रत्येक समिति अलग-अलग विषयों का प्रबन्ध करती थी। कुछ विषय अवश्य ऐसे थे, जो सीधे राजकीय नियंत्रण में होते थे। पहली समिति उद्योगों का प्रबन्ध करती थी। दूसरी यात्रियों और विदेशियों की देख-रेख करती थी तथा उनके आवास, भोजन, औपचारिक सहायता आदि का प्रबन्ध करती थी। यह समिति उनके रहन-सहन का भी ध्यान रखती थी और वापसी के समय आवश्यकता पड़ने पर उनकी सहायता भी करती थी। विदेशी यात्री की मृत्यु होजाने पर यह समिति उसकी सम्पत्ति को उसके घर तक पहुंचाने तथा अन्तिम क्रिया आदि का भी प्रबन्ध करती थी। तीसरी समिति जन्म-मरण के आंकड़े रखती थी। चौथी का कार्य व्यापार की देख-भाल तथा निरीक्षण था। इस समिति के सदस्य नाप-तोल के बाटों की भी देखभाल करते थे और इस बात का ध्यान रखते थे कि उत्पादन खुले बाजार में बिके। पांचवीं समिति वस्तुओं के निर्माण का प्रबन्ध, निरीक्षण तथा देखभाल करती थी। यह समिति इस बात पर भी ध्यान रखती थी कि नई तथा पुरानी वस्तुएं अलग-अलग बेची जायं। छठी समिति वस्तुओं के विक्रय मूल्य का दशांश शुल्क की तरह एकत्रित करती थी।

इसी प्रकार कृषि तथा पशु-वंशोन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। न्याय का क्रम इस प्रकार था कि प्राथमिक न्याय के अधिकार पंचायतों को होते थे। उसके बाद न्यायाधीशों के पास वाद जाते थे। हर न्यायालय में तीन न्यायाधीश होते थे। अपील छः न्यायाधीश सुनते थे।

आदर्श ग्राम-संगठन के बारे में चाणक्य ने अपने 'अर्थशास्त्र' में लिखा है कि ग्राम में सौ से लेकर पांच-सौ तक कृषि-व्यवसाय में रत परिवार होने चाहिए। ग्राम की जमीन एक-दो कोस तक होनी चाहिए। जमीन का बंटवारा पहाड़ों तथा वनों के अनुपात से ही होना चाहिए। पर आठसौ ग्रामों के संगठन के लिए एक स्थानीय दुर्ग निर्मित होना चाहिए, चारसौ ग्रामों के लिए एक द्रोणमुख। सौ ग्रामों के लिए एक खारवाटिक तथा दस ग्रामों के लिए एक संग्रहन। कृषि-भूमि कर पर कृषक को केवल उसके जीवन-काल के लिए ही दी जानी चाहिए और जो भूमि कृषि-योग्य नहीं हो और किसान उसको कृषि-योग्य बनाये तो वह भूमि उससे छीनी नहीं जानी चाहिए। यदि कोई अपनी भूमि ठीक तौर पर काश्त नहीं करता या उसे बंजर छोड़े रखता है तो वह उससे छीन-कर काश्त के लिए अन्य कृषकों को दे दी जानी चाहिए।

वास्तव में चाणक्य की धारणा का यह आदर्श ग्राम-संगठन गुप्त साम्राज्य में ही अधिक फलीभूत हुआ। चीनी यात्री फाह्यान तत्कालीन ग्राम्य संगठन से बहुत प्रभावित हुआ था। अपने वृत्तान्त में वह लिखता है—"ग्रामों का संगठन आर्थिक तथा रक्षात्मक स्वावलम्बन के विचारों पर आधारित होता है। यह ग्राम-राज्य का ही प्रत्यक्ष फल है। वे लोग स्वेच्छा से बन्धुता के नियमों का पालन करते हैं और बड़े शान्तिप्रिय तथा उन्नतिशील हैं।"

ग्रामों में न्याय भी ग्राम-पंचायतों के द्वारा ही हुआ करता था। ग्राम-न्याय-पंचायतें छोटे-छोटे मुकद्दमों के फैसले किया करती थी। इनके ऊपर अन्य न्यायालय हुआ करते थे, जिनमें देश के उच्चकोटि के न्याया-धीश बैठते और अपनी कचहरी जिलों तथा मण्डलों के मुख्य स्थानों पर किया करते थे। गोप (ग्रामपति) अपने ग्राम के वासियों का रजिस्टर रखता था, जिसमें गांव की भूमि, आय, पशुधन तथा दातव्य कर और वहां के जन्म, मृत्यु आदि के आंकड़े होते थे।

भारत के प्राचीन पंचायती जीवन के बारे में आधुनिक साम्यवादी विचारधारा के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स ने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'पूंजी' (कैपीटल) में लिखा है, "पुरातनकाल से चले आनेवाले ये नन्हे-नन्हे

भारतीय ग्राम-समुदाय धार्मिक ढंग की सांझी मिलकियत तथा किसान और मजदूर के श्रम-विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित हैं। ये ग्राम-समुदाय अपने-आपमें परिपूर्ण तथा आत्म-निर्भर हैं। इनके उत्पादन-क्षेत्र का विस्तार सैकड़ों से लेकर हजारों एकड़ों तक पहुंचता है। अधिकतर उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है, जो ग्रामवासियों की आवश्यकता की पूर्ति करती हों। केवल उत्पादन के लिए ही उत्पादन नहीं किया जाता। इससे श्रम-विभाजन में जो बुराई हैं, इससे ये संस्थाएं बची हुई हैं। परन्तु कहीं-कहीं भारतीय समाज में भी यह रोग प्रविष्ट हो रहा है। भारत के विभिन्न विभागों में, आवश्यकता के अनुसार विभिन्न प्रकार के ग्राम-समुदाय पाये जाते हैं। भूमि संयुक्त रूप में काश्त की जाती है और उपज प्रत्येक परिवार में बांट दी जाती है। इसके अतिरिक्त लोग सहायक धन्धे के रूप में कताई-बुनाई का कार्य भी करते रहते हैं। एशिया के समाज में जो सुदृढ़ता, संगठन तथा स्थायित्व पाया जाता है, उसका मुख्य श्रेय इन स्वावलम्बी ग्राम-समुदायों की उत्पादन-प्रणाली को ही है। वहां के राज्य टूटते रहे हैं, शाही खानदान बनते-बिगड़ते और मिटते रहते हैं, परन्तु वहां के ग्राम के समाज-समुदाय पर इन तूफानों, आंधियों, क्रान्तियों तथा परिवर्तनों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वे अपनी उसी सनातन गति से चलते रहते हैं।"

उस समय का सामाजिक जीवन भी बड़ा मनोरंजक तथा आकर्षक था। ग्राम के जीवन में वहां के मन्दिर का बड़ा महत्त्वपूर्ण भाग होता था। सभी मेले तथा उत्सव मन्दिर के आस-पास ही होते थे। ये मेले साल-के-साल लगते थे और इनमें विभिन्न जातियों के लोग परस्पर निकट सम्पर्क में आते तथा विचारों का आदान-प्रदान करते थे। ये मेले उस समय यूरोप के देशों में होनेवाली प्रदर्शनियों का ही प्रतिरूप थे। गांव के जीवन में पर्यटक, गायक तथा नाटक और रामलीला-मण्डलियां मनोरंजन तथा आकर्षण उत्पन्न करती थीं। इनके अतिरिक्त भाट तथा मांगकर खानेवाले गायक गा-बजाकर गांव में एक नवजीवन पैदा कर देते थे। ये भोले-भाले ग्रामीणों के जीवन को सुन्दर तथा सौम्य बना देते थे। रामायण तथा महाभारत की कथा को गा-बजाकर सुनानेवाले कथावाचक एक नया ही समां बांधते थे। रामायण तथा महाभारत के पात्रों ने भारत के ग्रामीणों के हृदय तथा

मस्तिष्क को बनाने व संजोने में बड़ा भारी योग दिया है। ग्रामीण सरलता, सहृदयता तथा अतिथि-सत्कार का जो एक आदर्श रूप हम भारत के ग्रामों में पाते हैं, इसका बहुत सारा श्रेय इन्हीं पात्रों को है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है ग्राम्य जीवन की सबसे महत्वपूर्ण वस्तु वहां की पंचायत या ग्राम-सभा हुआ करती थी। पंचायत का साधारण अर्थ तो है पांच पंचों की सभा, परन्तु गणित का यह प्रतिबन्ध उन प्राचीन पंचायतों पर लागू नहीं होता था, जिनमें अक्सर पांच से अधिक पंच भी होते थे। पंचायत ग्राम पर पूरी तरह शासन करती थी। ऐसा कहा जाता है कि यह पंचायत-प्रणाली भारत में आर्यों के आक्रमण से पूर्व भी प्रचलित थी। हिन्दू धर्म-शास्त्र पंचायतों के उद्धरणों से भरे पड़े हैं। महर्षि वाल्मीकि की रामायण में जनपदों का वर्णन आता है, जो पचायतों का ही नाम है। हम देख चुके हैं कि सिकन्दर महान् के आक्रमण के समय भी पंचायतें भारत में अपना कार्य कर रही थीं। प्रसिद्ध यूनानी विद्वान मैगस्थनीज़ ने भी भारत में पंचायतों का उल्लेख किया है। उस समय पचायतें बड़े महत्व के कार्य करती थीं और पंचायतें ग्राम्य-जीवन का ही नहीं अपितु समस्त भारतीय जीवन का आवश्यक अंग बन चुकी थीं। बांधों का बांधना, सड़कें बनाना, विश्रामगृह व तालाब बनाना, स्कूलों तथा मन्दिरों का निर्माण करना, अच्छे बीजों का संग्रह तथा ग्रामीणों मे वितरण और ग्रामीणों को आर्थिक सहायता देने के लिए धन-निधियों की स्थापना आदि सभी कार्य पंचायतों द्वारा किये जाते थे।

केन्द्रीय सरकार समय-समय पर इन पंचायतो की धन से सहायता करती रहती थी। वह उनके कार्यक्षेत्र को और अधिकार देकर विस्तृत करती थी। पंचायत खुद विभिन्न समितियों मे विभाजित होकर काम किया करती थी। इन समितियों में स्त्रियां भी होती थी। इन समितियो का सदस्य बनने के लिए यह आवश्यक था कि सदस्य निज-निर्मित मकान में रहता हो, उसके पास भूमि हो, जिसका वह कर देता हो और उसकी आयु ३५ तथा ७० के बीच में ही हो। यदि वह शास्त्रवेत्ता हो तो भूमि तथा सम्पत्ति-सम्बन्धी शर्त हटा दी जाती थी। इसके अतिरिक्त सदस्य के लिए यह भी जरूरी था कि वह समिति के कार्यक्रम तथा उसकी प्रक्रिया से भली-

भांति परिचित हो और पिछले तीन वर्षों में किसी समिति का सदस्य न रह चुका हो। पहले समिति के हिसाब-किताब में गड़बड़ी करनेवाले तथा किसी संगीन अपराध में सजा भुगतनेवाले व्यक्तियों को समिति में नहीं लिया जाता था। पंचायतों का निर्णय रस्मी ढंग से हाथ खड़े करके बहुमत के प्रदर्शनमात्र से ही नहीं होता था, अपितु पारस्परिक विचार-विमर्श, तालमेल तथा सूझ-बूझ के पश्चात् सर्वसम्मति से होता था। इस कारण उस समय की सभाएं दलबन्दी के रोग से मुक्त थीं। सर हर्बर्ट रिज़ले ने इस प्रथा का वर्णन करते हुए लिखा है, "लोग एक प्रश्न को लेकर बुद्धिमत्ता से उसपर सोचते, विचार-विनिमय करते और उससे सम्बन्धित बातों पर सर्वांगरूपेण टीका-टिप्पणी करने के उपरान्त वे किसी एक निश्चयात्मक निर्णय पर पहुंचते थे। वहां बहुमत का कोई प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता था, क्योंकि वे सब एकमत होते थे। वहां अल्पमत भी नहीं था, क्योंकि उन सबकी शंकाओं का पूर्णरूपेण समाधान कर दिया जाता था और उनको एकमत बना लिया जाता था।"

पंचायतें दण्डस्वरूप किसीको कारावास में नहीं डाल सकती थीं और न ही गांव में जेलें होती थीं। पंचायतों का सबसे कड़ा दण्ड सारे ग्राम से तिरस्कृत किया जाना समझा जाता था। और जो व्यक्ति पंचायतों के निर्णय को नहीं मानता था, उसको ग्रामद्रोही समझा जाता था। समाज से उसका सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया जाता था और उसके साथ कोई भी व्यक्ति रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं रखता था। उसको एक प्रकार से अछूत माना जाता था। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम देखने में आते हैं, जबकि ऐसा करने की आवश्यकता पड़ी हो। साधारणतः लोग सामाजिक कर्तव्यों के प्रति बड़े जागरूक होते थे और उनमें अनुशासन के प्रति मान तथा प्रतिष्ठा थी।

पंचायतों का चुनाव प्रायः वयस्क-मतदान के सिद्धान्त के अनुसार ही होता था, परन्तु कहीं-कहीं सदस्य मनोनीत भी किये जाते थे।

प्रत्येक गांव को चुनाव के लिए ३० विभागों में बांट लिया जाता था और प्रत्येक विभाग के लोग अपने-अपने वोट डालते थे। इन पर्चियों को बण्डल के रूप में बना लिया जाता था और जब दो व्यक्तियों के मत बराबर

होते तो एक तीन साल के बच्चे से उनमें से पर्चियां निकलवाई जाती थीं। उन पर्चियों में जिन-जिनके नाम हों, उनको ही, ग्राम-पुरोहित पंचायत का सदस्य घोषित कर देता था।

पंचायत ग्राम की आधारशिला होती थी। इसके द्वारा ही ग्राम का विधान बनता तथा उसकी उन्नति होती थी। ग्राम्यजीवन का कोई भी अंग पंचायत के कार्यक्रम से अछूता नहीं रहता था। ग्राम की सफाई तथा जनहित-सम्बन्धी कार्यों की ओर पंचायत मुख्यतः ध्यान देती थी। उस समय की पंचायतें खेती की उपज बढ़ाने के लिए सिंचाई के साधनों का विस्तार करने का खास प्रयत्न करती थीं। हाल में ही एक लेख मिला है, जिससे पता चला है कि दक्षिण में, अहिरल ग्राम के सभासद चेयेरू नामक नदी के तट पर स्थित परशुरामेश्वर मन्दिर मे एकत्रित हुए और उन्होंने निश्चय किया कि मन्दिर को नदी की बाढ़ के उत्पात से बचाने के लिए पंचायत द्वारा यहांपर एक बांध बनवाया जाय। इसी प्रकार मैसूर के एक ग्राम में स्थानीय सभा द्वारा तालाब की ठीक रक्षा तथा देखभाल के लिए एक व्यक्ति के नियुक्त किये जाने के बारे में वर्णन भी मिलता है। चिंगल-पट जिले के उत्तर में भल्लर स्थान से प्राप्त दशवीं शताब्दि के दो शिला-लेखों में ग्राम-सभाओं के संविधान तथा सभासदों के चुनने का सविस्तर वर्णन है।

जनहित के कार्यों में धनिक व्यक्ति तथा जन-सेवा मे रुचि रखनेवाले सभी लोग योग दिया करते थे। दान दिये गए धन का भी पंचायत ही प्रबन्ध किया करती थी। निर्धन श्रमदान देकर पंचायतों के काम मे सह-योग देते थे।

प्राचीन भारत का ग्राम्य-जीवन सरल, सहज और सम्पन्न था। अपने में परिपूर्ण होने के कारण वह लोगों की आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं की भली-भांति पूर्ति करता था। प्रसिद्ध पर्यटक टैवर्नियर ने अपनी १७वीं सदी की भारत-यात्रा में लिखा है—"प्रत्येक ग्राम में मैदा, मक्खन, दूध, साग-सब्जियां, खांड तथा मिठाईयां प्रचुर मात्रा में मिल जाती हैं, जो ग्रामों की सुख और समृद्धि की परिचायक हैं।" वह आगे लिखता है—"ग्रामों की एकता तथा सहयोग की भावना प्रशंसनीय है। प्रत्येक ग्राम

अपने में एक छोटा-सा संसार है। बाहर की घटनाओं का ग्राम्य-जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ग्राम-निवासी अपने बल और भगवान् पर विश्वास रखते हुए अपने कामों में जुटे रहते हैं। भारत के ग्राम एक बड़े परिवार के समान हैं, जिनका हरेक सदस्य अपने कर्तव्यों से भली प्रकार परिचित है।"

ग्रामों के इन संगठनों की सफलता का रहस्य केवल यह था कि ग्रामीण अपने अधिकारों की अपेक्षा कर्तव्यों की अधिक चिन्ता करते थे। इस तरह भारत के ग्रामों के संगठनों की परम्परा भारत में उत्पन्न हुई, पनपी और इसने दीर्घकाल तक सफलता से देश के ग्रामीणों को समृद्ध, सुसम्पन्न तथा आत्मनिर्भर रखा। पंचायतों के कारण ही काफी समय तक विदेशी देश पर अपना आर्थिक प्रभुत्व जमाने में असमर्थ रहे।

मध्यकालीन भारत में पंचायतें

यूं तो भारत पर समय-समय पर अनेक विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण होते रहे, पर सिंध पर मुहम्मद-बिन-कासिम के आक्रमण के साथ भारत के इतिहास में एक नये युग का सूत्रपात होता है, जिसे मध्य-काल कहा जाता है। मुहम्मद-बिन-कासिम भारत पर आक्रमण करने-वाला पहला मुस्लिम सेनानी था। इसके बाद भारत पर दूसरे कई मुस्लिम विजेताओं के आक्रमण हुए।

भारत के मुस्लिम विजेताओं को दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक श्रेणी में महमूद गजनवी, तैमूर, नादिरशाह आदि आक्रमणकारी आते हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य लूटमार था और जो अपने आक्रमण और लूटने के चिह्न छोड़ वापिस चले गये। इन्होंने न तो इस देश में रुकने की ही कोशिश की और न अपने प्रतिनिधि आदि छोड़कर अपना शासनतन्त्र यहां चलाने की चेष्टा ही की। दूसरी श्रेणी के आक्रमणकारियों में कुतुबुद्दीन ऐबक और बाबर जैसे विजेता आते हैं, जिन्होंने इस देश पर विजय प्राप्त करने के बाद यहीं पर अपने साम्राज्य बनाये और खुद भी यहीं बस गये। दिल्ली का गौरवशाली मुगल साम्राज्य इन्हीं विजेताओं द्वारा स्थापित किया गया था।

यह स्वाभाविक ही था कि पहली श्रेणी के मुस्लिम आक्रमणकारी,

जिनका एकमात्र उद्देश्य इस देश के धन को ले जाना था, यहां की सामाजिक व राजनैतिक स्थिति पर कोई खास प्रभाव न डाल सके। पर हमें देखना यह है कि दूसरी श्रेणी के मुस्लिम विजेताओं ने, जिन्होंने भारत को अपना घर बना लिया था, इस देश की सामाजिक-राजनैतिक अवस्था पर क्या असर डाला।

यह ठीक है कि भारत के मुस्लिम विजेताओं का धर्म यहां की जनता के धर्म से भिन्न था और उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक परम्परा भी दूसरी थी, पर भारत में उनके बस जाने के बाद यह भेद बहुत महत्वपूर्ण नहीं रहे। कालान्तर में कई भारतीयों ने, विशेषकर निम्न-जाति के व्यक्तियों ने, अपने शासकों का धर्म अपना लिया। हिन्दुओं और मुसलमानों के सामाजिक समागम से और उनकी संस्कृतियों के मिलने से साहित्य, कला और संगीत, तीनों में नई धाराएं आईं। जहांतक देश की राजनैतिक व्यवस्था का प्रश्न है, मुस्लिम शासकों ने उसके मूल को बदलने की कोई चेष्टा नहीं की। पंचायती संगठन को कोई खास ठेस नहीं पहुची। अवसर शासकों ने पंचायतों के क्षेत्र तथा अधिकार आदि में कोई वृद्धि नहीं की और न ही उन्हें कम करने की चेष्टा की। बल्कि सत्य तो यह है कि शासन ने अपने हितों में पंचायतों का काफी उपयोग किया। अतः देश की पंचायत-प्रणाली पहले की तरह ही चलती रही और ग्रामो का संगठन भी पहले जैसा ही रहा है। इतिहासकार हैवेल लिखता है कि मुस्लिम सुल्तानों ने भारत की परम्परागत ग्राम-संस्थाओं का उपयोग करना ही उचित समझा।

मुग़लकाल में भी देश की पंचायती व्यवस्था पहले की तरह ही चलती रही। शासकों ने पंचायतों की महत्ता को स्वीकार किया और पंचायतो को आर्थिक सहायता भी दी। इस काल में पंचायतों की स्वायत्त सत्ता भी बढ़ी। १६५१ में दिल्ली के पास एक गांव में श्री बादूलसिंह नामक सज्जन से एक पाण्डुलिपि प्राप्त हुई है, जिसमें सम्राट् अकबर के समय की पंचायती व्यवस्था का एक निश्चित तथा क्रमिक विवरण है। इस पाण्डुलिपि से पता चलता है कि उस काल में भी पंचायतें पूर्ववत् काम कर रही थी। ग्राम-सम्बन्धी सारा कार्य पंचायतें ही करती थीं और शासन उनके महत्व

को पूर्णत: स्वीकार करता था।

यह बात ठीक हो सकती है कि भारत के मुस्लिम शासकों ने पंचायतों को इस्लाम के प्रचार और करों की वसूली में भी उपयोगी समझा हो और उनका उपयोग किया भी हो। 'आइने अकबरी' में दी गई हिदायतों से यह बात सिद्ध होती है कि मुस्लिमकाल में भी शासन द्वारा देश की पंचायती परम्परा का यथासम्भव संरक्षण किया गया था।

सन् १८१२ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भारतीय ग्रामों के अध्ययन के लिए नियुक्त की गई गुप्त समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है—"इस देश में आदिकाल से सादे ढंग का स्थानीय शासन प्रचलित है। लोगों ने एक राजा के आने या दूसरे के चले जाने को कभी अनुभव नहीं किया। राज्य बने और टूटे, पर ग्रामवासियों ने अपने इस स्वायत्त शासन में कोई अवरोध नहीं पाया। ग्राम उसी प्राचीन रूप से सुदृढ़ तथा संगठित रहे। उनके अधिकार सुरक्षित रहे और सदियों की तब्दीलियां उनको कोई हानि नहीं पहुंचा सकीं।" सर चार्ल्स ट्रेवलियन ने भी इस कथन का समर्थन किया है।

भारत में पंचायतों का वर्णन करते हुए सर चार्ल्स मैटकाफ ने लिखा है—"एक राजपरिवार के बाद दूसरे राजपरिवार का पतन हुआ, एक विप्लव के बाद दूसरा विप्लव आया, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख तथा अंग्रेज एक के बाद एक इस देश के शासक बने, परन्तु ग्राम्य संस्थाओं में कोई अन्तर नहीं आया। आपत्ति के समय में वे अपने-आपको शस्त्रों से सुसज्जित करते, गांव की किलाबन्दी कर लेते, अपनी धनसम्पत्ति को गढ़ के अन्दर कर लेते और आक्रमणकारियों की सेनाएं चुपचाप वहां से गुजर जातीं। भारतीय ग्रामों की यह इकाइयां ही वास्तव में उन्हें उन परिवर्तनों तथा क्रान्तियों से बचा सकी हैं, जो कि समय-समय पर यहां आते रहे हैं। इस देश के सुख, शान्ति, समृद्धि और स्वतन्त्रता का अधिकतर श्रेय इन्हीं पंचायतों को है।"

पंचायतों के इस संगठन के सम्बन्ध में 'इम्पीरियल गज़ेटियर' में यह कहा गया है—"भारतीय 'आदर्श ग्राम' बस्ती के मध्य में स्थित घरों का एक झुरमुट होता है। इसके साथ ही एक खुली जगह होती है, जिसमें

पशुओं का बाड़ा या अनाज को सुरक्षित रखने के छप्पर होते हैं। आस-पास चारों ओर खेत-ही-खेत होते हैं या जंगल,जो गांववालों के लिए बाड़ी, पशुओं के चारे, ईंधन तथा इमारती लकड़ी आदि जीवनोपयोगी वस्तुओं के काम आते हैं। खेतों की मेढ़, सिंचाई के लिए पानी की नहरों व कूहलें तथा पानी के बहाव को रोकनेवाले छोटे-छोटे बांध हदबन्दी का काम देते हैं। इनसे गांव की भूमि कई खण्डों तथा उपखण्डों में बट जाती है। इस प्रकार के स्वच्छ, सुन्दर, स्वतन्त्र, मुग्ध तथा सरल वातावरण में गांव के निवासी जन्म से मृत्यु तक रहते हैं और गाव का यह भोला वातावरण उनके जीवन का एक अंग बन जाता है। सारे गांव के लोग अपने-आपको एक बड़े कुटुम्ब का सदस्य समझते है और एक संयुक्त परिवार की भांति जीवनयापन करते है। उनमें धनी-निर्धन, ऊंच-नीच तथा छोटे-बड़े की अस्वस्थकारी भावना लेश मात्र भी नही है"....."गांव में सुख, शान्ति तथा व्यवस्था बनाये रखने के लिए एक आयोजित संगठन होता था। परन्तु इसका कार्य-भार सम्भालनेवाले सदस्य प्रायः सब ग्रामो मे एक जैसे ही होते थे—मुखिया, कायस्थ, चौकीदार, हदबधक, तालाबों तथा नहरो का अधीक्षक, पुजारी, ज्योतिषी, लुहार, सुनार, कुम्हार, ठठेरा, तरखान, धोबी, नाई, ग्वाला, वैद्य, कवि, गायक तथा नर्तकी। मुखिया ग्राम के सभी कार्यो की अध्यक्षता करता था। अन्य कर्तव्यों के अतिरिक्त ग्राम में कर आदि एकत्रित करना भी उसका काम था। कायस्थ ग्राम की उपज का हिसाब-किताब रखता था तथा इससे सम्बन्धित जरूरी कागज-पत्रों को सम्भालकर रखता था। चौकीदार अपराधों तथा अपराधियों की सूचना प्राप्त करता था। यात्रियों की सुरक्षा का भार तथा खेतीबाड़ी की रख-वाली का काम भी उसीके सुपुर्द था। हदबधक हदबदी को सुरक्षित रखता था और हदबंदी के झगड़ों में गवाही देता था। नहरो तथा तालाबों का अधीक्षक खेतीबाड़ी के लिए पानी के बटवारे का काम करता था। पुजारी धर्मस्थानों पर धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न करता था और ज्योतिषी कटाई-बुआई के शुभ मुहूर्त बताता था। लोहार तथा बढ़ई खेतीबाड़ी के औजार तथा इमारती सामान बनाते थे। मुखिया, कायस्थ और चौकी-दार ग्राम के महत्वशाली तथा आवश्यक अंग थे और वे जनता के सही

रूप में सेवक समझे जाते थे।

मुखिया की बड़ी हैसियत थी और यह पद उसी व्यक्ति को दिया जाता था, जो कि सारे गांव की मान-प्रतिष्ठा का पात्र हो। मुखिया को कोई वेतन नहीं मिलता था। मुखिया ग्रामीणों में से ही चुना जाता था और जनता का विश्वास खत्म हो जाने पर उसे हटा दिया जाता था। इसका चुनाव बहुमत से न होकर सर्वसम्मति से होता था। मुखिया का कार्यक्षेत्र बड़ा विशाल तथा विस्तृत था। छोटे-मोटे मामलों को वह स्वयं अपनी स्वेच्छा से निपटा देता था, परन्तु महत्व के प्रश्न पंचायतों को भेज दिये जाते थे। गांव के इन सब कर्मचारियों को वेतन अनाज के रूप में ही दिया जाता था।"

जातिगत पंचायतें

प्राचीन इतिहास में जातियों की पंचायतों का वर्णन नहीं मिलता है। जहांतक धर्म का सम्बन्ध है,वह वर्ण-सम्बन्धी प्रश्नों पर निर्णय दिया करते थे, जो धर्म-शास्त्र अर्थात् प्रचलित स्मृति के अनुसार हुआ करते थे। यही धर्म-सभाएं प्रायश्चित्त निर्धारित किया करती थीं। इन संस्थाओं के सदस्य बड़े विद्वान् तथा सच्चरित्र व्यक्ति हुआ करते थे। हर बड़े प्रसिद्ध मन्दिर के साथ ऐसी धर्म-सभाएं हुआ करती थीं। सर्वोपरि व्यवस्था काशी की समझी जाती थी। श्री ज्ञानदेव की जीवनी में पण्डित वोपदेव की अध्यक्षता में हुई सभा द्वारा दिये गए व्यवस्था-पत्र का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त वर्णों अथवा जातियों की अपनी पृथक् पंचायतों का उल्लेख नहीं मिलता। वस्तुतः विदेशी आक्रमणों से पूर्व भारत में चारों वर्णों का धार्मिक मामलों में नियमन विद्वत् परिषद् करती थी क्योंकि विभिन्न वर्णों में विभाजित होता हुआ भी समाज एक ही समझा जाता था। व्यवहारिक मामलों का निर्णय अथवा प्रबन्ध साधारण पंचायतें करती थीं। विदेशी आक्रमणों के पश्चात् जब धर्म का अनुशासन घटा, विद्वत् परिषद् तथा धर्म-सभाओं का प्रभुत्व समाप्त हुआ तो हर वर्ण तथा जाति ने अपने-अपने धार्मिक तथा रिवाजी मामलों की पंचायतें बना लीं। खत्री, महाजन, धीवर, धोबी, नाई,नायर आदि जातियों में ऐसी जातिगत पंचायतों का चलन आज तक चला आता है। यह पंचायतें विवाह-

सम्बन्धी विवाद, सम्पत्ति का बंटवारा तथा विशेष रिवाजों आदि में बैठकर निपटा लेती हैं। देश के हर भाग में ऐसी पंचायतों का चलन रहा है और रूढ़िगत रूप में अबतक चला आता है। स्वतन्त्रता-पूर्व की अस्पृश्य-जातियों में इनका चलन और अधिक सुदृढ़ तथा प्रभाव-सम्पन्न रहा है। इनके निर्णय मान्य होते थे। और जो न माने उसका जाति-बहिष्कार कर दिया जाता था। जब कभी उच्च जाति का व्यक्ति किसी इस प्रकार की अस्पृश्य जाति का सदस्य बनता तो भी अस्पृश्य जाति की पंचायत बैठती थी और यदि सारी पचायत स्वीकार करती, तो ही वह शामिल किया जाता था। आजकल भी यह पंचायतें आमतौर पर ग्राम तथा एक-दो ग्रामों तक विस्तृत होती हैं। परन्तु मामला गम्भीर होने पर जाति के दूर-दूर के मान्य व वृद्ध व्यक्ति भी बुलाये जाते हैं। इन पंचायतों में आमतौर पर सब वयस्क बैठते हैं। पंचायत निर्वाचन करने का इसलिए प्रश्न ही पैदा नहीं होता। निर्णय में यह पंचायतें कभी मतदान का सहारा नहीं लेतीं, क्योंकि कभी भी बहुमत द्वारा निर्णय नही होते। परन्तु इनका वाद-विवाद तबतक चलता रहता है जबतक वे सब सर्वसम्मत नही हो जाते। दिन-रात लगातार यह विचार-विमर्श चलता रहता है। जाति के वृद्ध, जिनको पंच कहते हैं और जो इस विचार-विमर्श में भाग लेते हैं, के खान-पान का प्रबन्ध इन दिनों जाति के लोग करते हैं। इनको बिरादरी की पंचायतें भी कहते है। इनके अधिकार केवल बिरादरी के रिवाजी मामलों तक ही सीमित होते हैं, यथा विवाह के रिवाज, दहेज के नियम, सम्बन्ध-विच्छेद आदि-आदि।

कबायली-पंचायतें

जो जन-समूह अभी तक पितृ-प्रधान अथवा मातृ-प्रधान कबीलों की दशा में ही है, उनमें पंचायतों का रिवाज आम है और उनकी पंचायतें काफी शक्तिशाली होती है। लगभग सभी आदिम जातियों में ऐसी पंचायतें पाई जाती है। पाकिस्तान के सीमान्त प्रदेश के पठानों के जिरगों से तो सभी परिचित होंगे। भारत-विभाजन से पूर्व इसी सीमान्त प्रदेश के जिरगों का पर्याप्त अध्ययन हुआ और वहां हर वाद को पहले जिरगों द्वारा ही सुना जाता रहा। कतल के वादों में भी जिरगों के [illegible]

ली जाती थी। हर कबीले का अपना जिरगा होता है और सारा कबीला जिरगे की आज्ञा का पालन करता है।

मध्य-प्रदेशीय मुण्डा जाति में इस प्रकार की पंचायतें हैं, जिनका विवरण एनसाईक्लोपीडीया मुण्डारिका में मिलता है। नागा प्रदेश की पंचायतों की शक्ति आज भी मान्य है। धीरे-धीरे इन पंचायतों को कानून की नई-से-नई धारणाओं के अनुरूप बनाया जा रहा है। परन्तु यह ध्यान रखा जाता है कि यह प्रयत्न ऐसा न हो कि जिससे वह आदिम जातियों में अचानक बेचैनी पैदा करे। ऐसी पंचायतों को विभिन्न विशेष अध्यादेशों के अधीन मान्यता प्रदान करने के साथ अपीलों के प्रावधान रखे गए हैं, जिनसे धीरे-धीरे इन पंचायतों में कानूनों की अनुरूपता विकसित हो रही है।

: ३ :

ब्रिटिश शासनकाल में पंचायतें

प्रारम्भिक

मुग़ल शासनकाल में यूरोप के कई देशों के व्यापारी भारत आये और तत्कालीन मुग़ल-सम्राटों की आज्ञा से उन्होंने भारत में जगह-जगह पर अपनी व्यापारिक कोठियां स्थापित कर लीं। भारत का वैभव उस समय अपनी चरम सीमा पर था। देश के अनेक पदार्थों का निर्यात होता था, जिनमें कपड़े और नील का स्थान सबसे ऊंचा था। तत्कालीन यूरोपीय ललनाएं भारत के कपड़े के लिए लालायित रहती थी। देश वैसे भी धन-धान्य से परिपूर्ण था, जनता समृद्ध और खुशहाल थी और कला-कौशल तथा दस्तकारी खूब विकसित थी।

मुग़ल राजवंश के पतन के साथ देश में अव्यवस्था छा गई। इस उथल-पुथल का इन विदेशी व्यापारियों ने पूरा-पूरा फायदा उठाया और अपने-अपने देश का प्रभुत्व स्थापित करने के लिए देश के मामलों में खुलकर हस्तक्षेप किया। धीरे-धीरे और विदेशी कम्पनियों ने मैदान छोड़ दिया और कम्पनियों में खुली होड़ शुरू हो गई। ये कम्पनियां थी—अंग्रेजों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी और फ्रान्स की व्यापारिक कम्पनी। अगले सौ सालों में फ्रांसीसी कम्पनी भी लगभग समाप्त हो गई और देश का अधिकांश भाग अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रभुत्व में आ गया।

मुग़ल शासनकाल में देश की पंचायती व्यवस्था बरकरार रही। देश में अंग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित होने के समय भी काफी हद तक यही बात थी। किन्तु भारतीय ग्रामों का स्वावलम्बी, आत्मनिर्भर तथा स्व-यत्त शासन अंग्रेजी कम्पनी की योजनाओं में बाधक था। उस समय इंगलैंड में औद्योगिक क्रान्ति हो चुकी थी और मैनचेस्टर लंकाशायर

तथा लीड्स आदि नगरों में कपड़े, लोहे और ऊन के बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हो चुके थे। ऊंची-से-ऊंची रुकावटों के बावजूद भारतीय माल इंगलैण्ड के बाजारों में बिकता था। इसको रोकने का, और अंग्रेजी कपड़े का भारत में रास्ता खोलने का एकमात्र उपाय था भारत में वस्त्र-उद्योग को ठप्प करना। पर भारत में तो इंगलैण्ड की तरह बड़े-बड़े कारखाने थे नहीं। यहां का तो सारा वस्त्र-उद्योग यहां के ग्रामों में सीमित था। ग्रामों के सारे उद्योग-धन्धे वहां की पंचायतों के नियन्त्रण में आते थे। इसलिए इसका एकमात्र उपाय था पंचायती क्षेत्र में और इस तरह से भारत के सारे ग्रामराज में, हस्तक्षेप करना। यह हस्तक्षेप कई तरह से किया गया। सबसे पहली शुरुआत नई भूमि-व्यवस्था द्वारा की गई। देश के अनेक भागों में जमींदारी-प्रथा की शुरुआत की गई। यह व्यवस्था भारत के लिए एकदम नई थी और इसने पंचायतों के कार्य-क्षेत्र में बहुत कमी कर दी। इसके बाद पंचायतों के क्षेत्र और अधिकारों में प्रशासन-तन्त्र द्वारा रोक लगाई गई। पंचों को शासनिक कार्य में हस्तक्षेप करने से मना कर दिया। शासनिक कार्यों का क्षेत्र इतना विस्तृत हो गया कि उसमें पंचायतों का हर काम आ जाता था। तनिक-सी बात पर भी शासनिक कार्य में बाधा डालने के अपराध पर पंचों को दण्ड दे दिया जाता था। इन कड़े दण्डों से पंचायतों पर आतंक छा गया। धीरे-धीरे अधिकांश ग्राम-पंचायतें निष्क्रिय हो गईं। पंचायतों की समाप्ति के साथ-साथ सदियों से चली आनेवाली ग्रामीण-संगठन की व्यवस्था भी भंग हो गई। इसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि गांवों की समृद्धि निर्धनता में बदल गई, स्वावलम्बी ग्राम परावलम्बी हो गये। ग्राम्य न्याय के अभाव में सरकारी कचहरियों और मुकद्दमेबाजी का चक्कर शुरू हो गया, और सारा पुराना ढांचा ढह गया। कुछ ही वर्षों के अंग्रेजी शासन के बाद भारत का किसान घोर निर्धनता और दारिद्र्य का प्रतीक माना जाने लगा। आरनोल्ड लुप्टन ने इस दीनता का वर्णन इन मार्मिक शब्दों में किया है—"किसान का महल उसकी मिट्टी की झोंपड़ी है, जिसकी छत टूटी-फूटी लकड़ियों और ताड़ के पत्तों से बनी होती है। खाट, अगर हुई तो, मुड़ी-तुड़ी लकड़ियों की बनी होगी। उस-

पर पड़ा बिस्तर—अगर हुआ तो—जमीन से कोई छः इंच ऊंचा होता है। घर में न दरवाजा होता है और न कोई खिड़की। चूल्हा घर के बाहर होता है। अवकाश के समय आराम करने का उसका 'सोफा' मिट्टी का चबूतरा होता है, जो सोने की कोठरी के बाहर होता है। उसके पास एक ही कपड़ा होता है, जो उसकी जांघों पर लिपटा होता है, और क्योंकि इसे धोते समय पहनने के लिए उसके पास कोई दूसरा कपड़ा नहीं होता, इसलिए यह कपड़ा कभी नहीं धुलता। वह न तम्बाखू पीता है, और न शराब। वह अखबार भी नहीं पढ़ता। किसी मनोरंजन में वह भाग नहीं लेता। उसका धर्म उसे नम्रता और सन्तोष की सीख देता है और वह संतोष से तबतक जीता है कि जबतक भूख उसे चिरनिद्रा में सुला नहीं देती।"

इस ग्रामीण निर्धनता तथा अज्ञान का एकमात्र कारण था इस ग्राम-राज्य की समाप्ति और वह भी बेदर्दी के साथ। इससे ग्रामीणों की आत्म-विश्वास तथा स्वावलम्बन की भावनाएं नष्ट हो गईं। इस विचार की पुष्टि करते हुए इतिहासकार श्रीरमेशचन्द्र दत्त ने एक स्थान पर लिखा है, "भारत में ब्रिटिश राज्य का सबसे अफसोसनाक फल यह हुआ कि उसने उस ग्राम-राज्य की प्रथा को तहस-नहस कर दिया, जो विश्व के सब देशों से सर्वप्रथम भारत में विकसित हुई और सबसे अधिक काल तक पनपी।"

ब्रिटिश शासन में पंचायतों का पुनरुत्थान

हम कह चुके हैं कि अंगरेजी शासन का मुख्य उद्देश्य था भारत का शोषण; और इसी ध्येय से उन्होंने पंचायतों की समाप्ति भी की। ग्राम-पंचायतों के सर्वनाश के पश्चात् ग्राम में और कोई ऐसा तन्त्र नहीं रहा, जिसके द्वारा शासन और ग्रामों का पारस्परिक सम्बन्ध सुदृढ़ होता। ग्रामीणों को शासन के प्रति कोई विश्वास कैसे हो सकता था, जबकि शासन का ध्यान उनकी तरफ तभी तभी जाता था कि जब वहां कोई भीषण घटना हो जाती। सन् १८०० से १८२५ तक पांच अकाल पड़े और १८२५-५० तक दो और अकाल पड़े। १८५० से १८७५ तक छः अकाल और १८७५ से १९०० तक अठारह अकाल पड़े। जब कभी अकाल पड़ता तो लाखों कृषकों तथा कृषि के लिए उपयोगी पशु और मनुष्य भूखे मर जाते। सड़कें उनके शवों से पट जातीं। माताएं बच्चों की मृत्यु की

गोद में छोड़ जातीं। अकाल के पश्चात् वर्षों तक आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। बीमारी और मौत सिर पर मंडराती थी। इन लगातार आनेवाले संकटों से त्रस्त लोग कभी-कभी विद्रोह भी कर देते। सरकार द्वारा समय-समय पर नियुक्त अकाल जांच-समितियों तथा कृषि-जांच-समितियों ने इस समस्या पर विचार करके पहला सुझाव यह दिया कि कृषकों को ऋण से मुक्त करने तथा उत्पादक ऋण प्राप्त करने के लिए सहकारी संस्थाओं का संगठन किया जाय। यहांपर यह बताना भी आवश्यक है कि प्राचीन काल की पंचायतें वस्तुतः आर्थिक तथा सामाजिक स्वराज की ग्राम-संस्थाएं थीं और पंचायतों के पतन से ही सहयोग तथा सहकारिता की भावनाओं का भी लोप हो गया था। सन् १९०० में पहला सहकारी अधिनियम बना, परन्तु इसके बनने से भी ग्राम-स्वावलम्बन की भावनाओं का पोषण न हो सका।

शाही विकेन्द्रीकरण आयोग १९०९ की रिपोर्ट

अंगरेज शासकों ने यह अनुभव कर लिया था कि जबतक ग्रामीणों का सहयोग शासन को प्राप्त नहीं होगा तबतक ग्रामीणों के कष्टों का निवारण सम्भव नहीं और विद्रोह की भावनाओं का दबाना भी कठिन होगा। परन्तु साथ ही उनको यह भी चिन्ता थी कि यदि ग्रामीण मजबूत हो गये तो उनकी आर्थिक शोषण की नीति का सफल होना सम्भव नहीं। अतः वह ग्रामीणों का सहयोग एक सीमित मात्रा तक चाहते थे, जिससे कि उनकी अपनी नीति सफल रहे और थोड़ी-सी सुधाररूपी शराब पिलाकर विद्रोह की अग्नि को भी शान्त तथा नियन्त्रित रखा जाय। इसी ध्येय से सन् १९०९ में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग का निर्माण हुआ और उक्त आयोग ने अपनी रिपोर्ट दी। वास्तव में यह रिपोर्ट स्थानिक स्वराज के पुनर्स्थापन का श्रीगणेश करती है। इस रिपोर्ट के तीसरे अध्याय में ग्राम-पंचायत-सम्बन्धी सुझाव हैं।

आयोग के सुझाव

इस आयोग की रिपोर्ट के तीसरे अध्याय में दिये गए सुझावों का संक्षेप इस प्रकार है—

भारत में एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक फैले हुए गांव ही सर-

कार की सबसे छोटी इकाई हैं और इसी इकाई को आधार मानकर आगे तहसील, तालुके और जिले बनाये गए हैं।

भारतीय गांव पास-पास सटे झोंपड़ों का एक झुण्ड होता है, जिसमे साथ ही एक जोहड़ तथा पशुओं को बांधने का एक स्थान होता है। गांव के चारों ओर फैले हुए उसके खेत होते है। इस भूमि में या तो खेती होती है या कुछ भाग गांव के पशुओ को चरने के लिए छोड़ दिया जाता है। गांव के लोग ऐसे सरल वातावरण में अपना जीवन व्यतीत करते है। इस छोटे-से समाज में निज-निर्मित विधि-विधानों से बंधे हुए कुछ सरकारी कर्मचारी, कुछ कारीगर और कुछ व्यापारी, सब भाईचारे का जीवन गुजारते हैं। यहां हमें यह भी नही भूलना चाहिए कि कुछ स्थानों पर, जैसे असम, पश्चिमी बंगाल, तथा मद्रास के पूर्वी घाट में ऐसे ग्राम नही हैं। वहांपर लोग अलग-सा घरेलू जीवन व्यतीत करते है।

उपर्युक्त गांवों को हम मुख्यतः दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम रैयतवारी ग्राम, जो उत्तर भारत को छोड़कर अन्यतर मिलेंगे। ऐसे ग्रामों में काश्तकार से सीधे कर वसूल किया जाता है। गांववालों का संयुक्त उत्तरदायित्व नहीं होता। हां, कुछ जमीन गांव के पशुओ के चरने के लिए शामलात में छोड़ी जा सकती है, परन्तु बंजर भूमि माल-अधिकारी से आज्ञा लिये बिना और कर चुकाये बिना काश्त मे नहीं लाई जा सकती। ग्राम का शासकीय प्रबन्ध वंशानुक्रम से चौधरी मे निहित होता है। कहीं-कही उसे पटेल, मुखिया या रेड्डी भी कहा जाता है। गांव से कर एकत्रित करना तथा वहां शान्ति व्यवस्था बनाये रखना उसीका कर्तव्य होता है। यह मुखिया पुराने समय के कुनबे या गिरोह के उस वृद्ध पुरुष का आज भी प्रतिनिधित्व करता है, जिसने कभी गांव बसाया होगा। दूसरी तरह के गांव है तालुकेदारी या जमींदारी गांव। ये गांव संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश), पंजाब तथा सीमाप्रान्त में पाये जाते हैं। यहां लगान इकट्ठा ही जमा किया जाता है। यहां जमींदार सब किसानों से लगान जमा करके सरकार को देता है। सारे-का-सारा गांव जमींदार की मिलकीयत माना जाता है और वही काश्तकारों, कारीगरों और व्यापारियों को जमीन देता है। बंजर भूमि सारे गांव की सांझी होती है, और जब जरूरत हो तो काश्त के

लिए सांझीदारों में बांटी जा सकती है। ग्राम का प्रवन्ध या तो चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा चलाया जाता है या फिर ग्राम के कुलीन व्यक्तियों पर इस कार्य का भार होता है। वाद में अधिकारियों से मेल-जोल के लिए एक या दो आदमी, जो प्रायः नम्वरदार कहलाते हैं, लिये जाते हैं। परन्तु इनको जनता के आदमी न समझकर सरकारी व्यक्ति ही समझा जाता है। सर हैनरी मैन ने जिन ग्रामों का वर्णन किया है, वे वे ही गांव हैं, जिनमें स्थानीय जमींदार सर्वेसर्वा होता है और गांव की शेप जनसंख्या मुजारों या मजदूरों की गिनी जाती है।

भारतीय ग्रामों को पहले काफी हद तक स्थानीय स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वादशाह, राजा या सूवेदार को जबतक गांव से कर मिलता रहता, वे ग्राम के स्थानीय शासन में हस्तक्षेप नहीं करते थे। ग्राम से कर एकत्रित करने की जिम्मेदारी जागीरदार की होती थी और उसीका सम्वन्ध राजा या सूबेदार से रहता था। ग्राम की व्यवस्था का भार उसीपर होता था। अव दीवानी और फौजदारी अदालतों की स्थापना व पुलिस तथा माल अधिकारियों की नियुक्ति, आवागमन के साधनों में उन्नति तथा वैयक्तिक भावना की जागृति के कारण ग्रामों की वह सदियों से चली आनेवाली स्वतन्त्रता समाप्त हो गई है। परन्तु—फिर भी शासन की इकाई आज भी ग्राम ही है। अव गांव के सभी सेवकों—नम्वरदार, मुन्शी तथा चौकीदार आदि को तनख्वाह सरकार से मिलती है, परन्तु फिर भी, कुछ मात्रा में एकता की भावना उनमें आज भी विद्यमान है।

मद्रास में, जहां ग्राम-अधिकारी अधिकतर वंशानुक्रम से होता है, उसे कर उगाहने, व्यवस्था तथा शान्ति वनाये रखने के अतिरिक्त दीवानी तथा फौजदारी अधिकार भी प्राप्त हैं।

बम्बई में केवल मुखिया ही होता है। उसे वहां पटेल कहा जाता है और उसके पास अपने छोटे-से गांव में माल और पुलिस के अधिकार भी होते हैं। वड़े ग्रामों में माल तथा पुलिस-पटेल अलग-अलग भी होते हैं। पुलिस-पटेल को फौजदारी के मामूली अधिकार प्राप्त होते हैं और दीवानी छोटे अधिकार मुंसिफ द्वारा प्रयोग में लाये जाते हैं। दक्षिण में ग्राम-अधिकारी वंशानुक्रम से चले आते हैं और सिन्ध में जहां-कहीं ऐसी संस्थाएं मिलती

हैं, वहां यह देखा गया है कि इन संस्थाओं के मुखिया सामन्त या जमीं-दार है ।

बंगाल में शासकीय कार्य की दृष्टि से कोई मुखिया नहीं है । आसाम में ग्राम के परिवारों के समूह की एक सभा होती है, जो मुखिया को चुनती है । परन्तु इसमें डिप्टी कमिश्नर की मंजूरी भी जरूरी है । ऐसे मुखिया सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त कर लेते हैं और फिर उनको जन्म-मृत्यु के आंकड़े रखने तथा पुलिस को सहायता देने का काम सौंपा जाता है । ये लोग लगान एकत्रित नहीं कर सकते । हां, निजी तौर पर छोटे-मोटे झगड़ों में बीच-बचाव करते हैं ।

संयुक्त प्रान्त में एक प्रकार से गांव का मुखिया कोई नहीं है और नम्बर-दार कर एकत्रित करनेवालों का सहायक मात्र होता है । ऐसी ही स्थिति पंजाब में भी है । हां, कुछ ही समय पहले संयुक्त प्रान्त के गांवों में मुन्सिफ नियुक्त किये गए हैं, जो छोटे-मोटे दीवानी झगड़ों का निर्णय करते हैं ।

ब्रह्मा में (जो उस समय भारत का ही अंग था) गांव का मुखिया गांववालों द्वारा चुना जाता है, पर डिप्टी कमिश्नर की अन्तिम स्वीकृति आवश्यक है । मुखिया का पद प्रायः एक ही परिवार में चलता रहता है । यह मुखिया गांव का मुन्शी भी होता है । वह कर उगाहता है तथा छोटे-छोटे दीवानी तथा फौजदारी मुकद्दमों का निर्णय भी करता है । गांव के बूढ़े भी ग्राम-प्रबन्ध में हाथ बटाते हैं, परन्तु कानून की तरफ से इनको मान्यता प्रदान नहीं की गई है । गांव में यदि कोई अपराध हो जाय तो उसकी जिम्मेदारी सारे गांव पर मुश्तरका तौर पर डाली जाती है ।

मध्यभारत में भूमिपतियों के चुने हुए मुखिया होते हैं, जिन्हें मुकद्दम कहा जाता है । बरार में दक्षिण की ही तरह वंशानुगत पटेलों की ही प्रणाली अपनाई जाती है, पर इन पटेलों को फौजदारी अधिकार प्राप्त नहीं है ।

बिलोचिस्तान और सीमाप्रान्त (यह प्रदेश तब भारत में ही थे) में यह संस्था ग्रामों पर आधारित न होकर गिरोहों तथा कुनबों पर आधा-रित है और लोगों का सरकार से सम्बन्ध जिरगों के द्वारा बना हुआ है ।

सरकार ने कई ग्रामों में इस कार्य के लिए कई संस्थाओं का निर्माण भी किया है । इनमें से कुछ ये हैं—

१. मद्रास में स्थानीय फण्ड यूनियन का निर्माण किया गया है, जो सड़कों, सफाई तथा प्रकाश आदि का प्रबन्ध करती है। इस कार्य के लिए उनको गृह-कर (House Tax) लगाने के अधिकार हैं। उनके कार्य की देखरेख मनोनीत कमेटियां करती हैं, जिन्हें पंचायत भी कहते हैं। इनका सभापति भी मनोनीत होता है। प्रत्येक ग्राम का मुखिया इस यूनियन का पदेन सदस्य होता है। मद्रास प्रान्त में इस प्रकार की कोई ४०० यूनियनें हैं। बंगाल में भी इस तरह की यूनियनें हैं।

२. संयुक्त प्रान्त, बम्बई और मध्यभारत में सफाई तथा ऐसे छोटे-छोटे कार्यों के लिए विशेष फण्ड एकत्रित किये जाते है और इन संस्थाओं को दिये जाते हैं। परन्तु ऐसा बड़े महत्व के ग्रामों में ही होता है। इन स्थानीय समितियों की सहायता से ही शासन-कार्य चलाया जाता है। आमतौर पर ये समितियां मनोनीत होती हैं, परन्तु मध्यभारत में इनमें से कुछ निर्वाचित लोग भी होते हैं।

३. बगाल में चौकीदार तथा ग्राम-पुलिस के लिए ग्रामों के समूह बनाये गए हैं। इनपर होनेवाले खर्च के लिए वहां एक स्थानीय कर लगाया जाता है। यह कर लगाने का कार्य छोटी पंचायतों के हाथ में है, जिसकी नियुक्ति जिला मैजिस्ट्रेटों द्वारा होती है। वहांपर कुछ ऐसी मनोवृत्ति भी पाई जाती है कि पुलिस भी इन्हीं संस्थाओं के अधिकार में हो, ताकि पुलिस का जनहित के लिए पूरी तरह से प्रयोग किया जा सके।

कुछ स्थानीय लोगों का ऐसा विश्वास है कि ब्रिटिश शासन के कारण ये प्राचीन संस्थाए इतनी छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं कि अब उनके उस पुराने रूप को स्थिर करना अति कठिन है। हां,इस बारे में अवश्य ही यह विचारधारा सबमें पाई जाती है कि ग्राम-प्रबन्ध में वहां के स्थानीय लोगों की राय का उपयोग अवश्य किया जाना चाहिए और इसके लिए ग्राम-समितियों की स्थापना होनी चाहिए, जिन्हें उनके नाम पंचायत के नाम से पुकारना चाहिए।

यह प्राचीन ग्राम-शासन-प्रणाली चाहे कितनी उत्तम तथा सुविधाजनक रही हो, पर हम उस प्राचीन प्रणाली को आज फिर लागू करने की सलाह नहीं दे सकते। लेकिन हमारा यह विश्वास है कि शासन का विके-

न्द्रीकरण करने के लिए और लोगों को स्थानीय शासन-प्रबन्ध की ओर आकर्षित करने के लिए जरूरी है कि स्थानीय पंचायतों का निर्माण किया जाय।

हमारा मत है कि जनता जिस शासकीय ढांचे में सहयोग देगी, उसका आधार सुदृढ़ होगा। अतः हमें इस विषय में तहसील आदि नई शासकीय इकाइयों की जगह पुरातन शासकीय इकाई—ग्राम की ओर ही देखना चाहिए।

भारत के प्रत्येक सूबे, जिले और यहांतक कि तहसील में भी एक गांव की मानसिक स्थिति तथा सामाजिक स्तर दूसरे से नहीं मिलता। एक गांव यदि कुछ उन्नत विचार रखता है तो दूसरा अभी उसी पुरानी लकीर-का-फकीर बना हुआ है, जिसके कारण हम सामूहिक योजना का कोई भी कार्य नहीं कर सकते, और जहां ऐसी संस्थाओं की स्थापना के लिए आवश्यक सामग्री मिल भी जाय वहां भी जातीय झगड़ों के कारण इस बात की सम्भावना में कमी आ जाती है।

अतः जहां हम पंचायतों के विकास-कार्य को अति आवश्यक समझते है वहां हमारा यह विचार भी है कि यह विकास-कार्य सोच-समझकर और धीरे-धीरे किया जाना चाहिए। इस विषय में हमें सब जगह एक-सा रुख अपनाना उचित न होगा। हमारा विचार है कि जिन गांवों में परस्पर लड़ाई-झगड़े न हों, लोग विचारशील हों, उनमें एकता तथा मैत्री हो उनमें हमें पंचायतों को कुछ थोड़े तथा सीमित अधिकार दे देने चाहिए। ये अधिकार बाद में बढ़ाये जा सकते हैं और फिर इस प्रणाली को अन्य गांवों में लागू करना भी आसान हो जायगा।

इस तरह की नीति को, जो कि कई सालों के कठिन परिश्रम के बाद लागू होगी, अपनाने में बड़ी सावधानी और विवेक की जरूरत है। हमें ग्रामों की अलग-अलग स्थिति का भी विचार रखना होगा। इस बारे में काफी लोगों की राय है कि हमें इस दिशा में विशेष जानकारों की देख-रेख में ही कार्य करना चाहिए।

हम इस बात से सहमत नहीं हैं कि ग्राम-पंचायतों के संगठन का कार्य प्रान्त के रजिस्ट्रार आफ कोआपरेटिव सोसाइटीज को सौंपा जाय,

क्योंकि हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस संस्था का संगठन जिला-अधिकारियों की देखरेख में हो। ग्राम-सम्बन्धी-कार्य की देखरेख तहसीलदारों तथा सब-डिविजनल अफसरों का मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। परन्तु शुरू-शुरू में यह आवश्यक है कि कलेक्टर को ही सहायता दी जाय, जो सारे जिले में पंचायतों का संगठन तथा उनका विकास करे।

कुछ व्यक्तियों का यह विचार है कि कई ग्रामों को इकट्ठा करके उनकी एक पंचायत बना देनी चाहिए, ताकि पंचायतों में अच्छे आदमियों को चुनने में सुविधा रहे और पंचायत को स्थानीय झगड़ों से भी बचाया जा सके। हम यह तो समझते हैं कि इस तरह की कुछ छूट उनको अवश्य मिलनी चाहिए, परन्तु सब जगह इसी मार्ग को अपनाना उचित न होगा और इससे इन संस्थाओं में कुछ बनावट-सी आ जायगी। हम चाहते हैं कि स्थानीय भावनाओं का ग्राम के हित के लिए ही उपयाग किया जाय। अतः ग्राम को ही शासकीय इकाई बनाना अधिक उचित होगा। हां, विशेष अवस्था में किसी स्थान पर एक से अधिक ग्रामों को भी इकट्ठा किया जा सकता है, जबकि गांव बहुत ही छोटे हों या जहां परस्पर के भेद को मिटाना हो।

पंचायत एक छोटी-सी संस्था होनी चाहिए। और उसके सदस्यों की संख्या स्थानीय स्थिति पर छोड़ देनी चाहिए। हमारा विचार है कि उनकी संख्या कम-से-कम पांच ठीक रहेगी। अगर गांव में मुखिया हो तो हम समझते हैं कि उसको ही पंचायत का पदेन सभापति बनाना चाहिए, क्योंकि उसका वहां पहले से ही असर-रसूख होगा।

कुछ व्यक्तियों ने यह विचार भी प्रकट किये हैं कि पंचायत-सदस्य बाहर से मनोनीत किये जायं। परन्तु हम इस बात के हक में नहीं हैं। ऐसा करने से जो हमारा यह उद्देश्य है कि ग्राम का संयुक्त रूप में हित किया जाय, जाता रहता है। दूसरे, ऐसा करने में पंचायतों पर पूरी तरह से सरकारी अफसरों का हाथ हो जायगा, क्योंकि वही पंचायतों के सदस्यों को मनोनीत करेंगे। हम उन व्यक्तियों के साथ सहमत हैं, जो यह कहते हैं कि सदस्यों का चुनाव होना चाहिए। परन्तु इस चुनाव के लिए हम ऐसी कोई प्रणाली निर्धारित नहीं करते, जिससे कि गांववाले सर्वथा

अपरिचित हों। हमारे विचार में तो गांव के लोगों द्वारा ग्राम चुनाव ही ठीक है, जो तहसीलदार या सब-डिविजनल आफिसर के सामने एक मीटिंग में होना चाहिए, या जहां पंचायतों के स्पेशल अफसर हों, वहां उसके सामने होना चाहिएं। इस सभा में ग्रामवासियों से यह पूछा जाय कि वे किसको अपना प्रतिनिधि चुनना चाहते है। इस प्रकार बहुत सारे स्थानों में अच्छा चुनाव हो सकता है। परन्तु यदि उनमें कलह या मतभेद हो तो वहांपर निर्वाचन-अफसर को स्वयं यह देखना चाहिए कि प्रत्येक जाति तथा वर्ग के प्रतिनिधि उसमें लिये जायं।

जिस ग्राम में कोई भी मुखिया न हो, वहां सभापति का चुनाव भी इसी प्रकार होना चाहिए।

पंचायतों के सदस्यों की पदावधि का निर्णय स्थानीय सरकार को करना चाहिए। इस निर्णय में उसे स्थान की अवस्था को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। हमारे विचार में अन्तिम निर्णय ग्रामीणों का ही होना चाहिए। सब-डिविजनल अफसर को इस बात का पूरा अधिकार होना चाहिए कि यदि वह किसी सदस्य को अनुपयुक्त समझे तो उसको सदस्यता से हटा दे। इस प्रकार रिक्त होनेवाले स्थानों को सुविधा के अनुसार इसी रीति से भरना चाहिए।

पंचायतों के हाथ में कई अधिकार तथा कर्त्तव्य दिये जाने का सुझाव है। लेकिन जो लोग इनको अधिक अधिकार भी देना चाहते हैं, उनका भी यही सुझाव है कि ये अधिकार तथा कर्त्तव्य उनको क्रमशः तथा अनुभव प्राप्त करने के बाद दिये जाने चाहिए। हमारा भी यही विचार है। इसमें उस स्थान की विशेषताओं का विचार भी रखा जाना चाहिए और यह भी देखना चाहिए कि उस पंचायत ने अपने जिम्मे छोड़े गये पिछले कामों को किस प्रकार पूरा किया है। इस दिशा में हम निम्नलिखित सुझाव देते हैं—

ग्राम-पंचायत के पास अपने गांव के छोटे-छोटे दीवानी तथा फौज-दारी मुकदमों को सुनने के अधिकार होने चाहिए। हमें पंजाब तथा [illegible] की रियासतों से पता चला था कि पटियाला तथा फरीदकोट ने छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी मुकद्मों के सुनने का अधिकार ग्राम-पंचायतों को

दिये गए हैं और इसका परिणाम अच्छा ही रहा है।

कई लोगों का कहना है कि पंचायतों को इस तरह के अधिकार देने से अन्याय, लड़ाई-झगड़ा तथा भ्रष्टाचार आदि बढ़ने का खतरा है। उनका यह भी कहना है कि क्योंकि लोग कचहरियों के आदी हो चुके हैं, इसीलिए इस तरह के साधारण पंचायती निर्णय को शायद ही कोई महत्व प्रदान किया जाय। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के अधिकार ग्राम के मुखिया को पहले ही प्राप्त हैं। लेकिन हमारा ख्याल है कि इस तरह के मामले पंचायतों द्वारा और अच्छी तरह से निपटाये जा सकते हैं। इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि छोटे-छोटे मुकद्दमों के लिए लोगों को दूर-दूर का सफर करने से बचाया जाय और फिजूल की मुकद्दमेबाजी को रोका जाय। निस्संदेह ग्राम-पंचों से कई बार गलती भी हो जाती है, लेकिन ऐसा तो अदालतों में भी हो जाता है। झूठी गवाही तथा पैसे का प्रभाव गांव अदालतों में कम होगा, क्योंकि वहां के लोग वास्तविकता को आसानी से जान सकते हैं।

न्याय-पंचायत की प्रक्रिया बड़ी सरल और सहज होनी चाहिए। हम उन लोगों से सहमत हैं, जो यह कहते हैं कि वादी तथा प्रतिवादी दोनों को व्यक्तिगत रूप से न कि वकील के जरिये पंचायत के सामने हाजिर होना चाहिए और एक बार मुकद्दमे का निर्णय हो जाने पर अपील का अधिकार नहीं होना चाहिए। हां, जहां अदालतों को ऐसा प्रतीत हो कि अन्याय हुआ है, वहां उन मुकद्दमों पर अदालत पुनः विचार कर सकती है। परन्तु इससे अधिक कोई प्रतिबंध पंचायतों पर नहीं होना चाहिए। पंचायतों को व्यर्थ की घुण्डियों में फंसाने से वे भली प्रकार नहीं पनप सकेंगी। हम यह चाहते हैं कि समता के आधार पर गांव की अपनी एक अदालत हो, जो कि वर्तमान अदालतों की बुराइयों से बची हुई हो।

इस सिलसिले में हमारा दूसरा सुझाव यह है कि ग्राम-पंचायतों को कुएं, तालाब, गांव की सफाई तथा सड़कों के निर्माण और सराय इत्यादि के निर्माण तथा उनकी मुरम्मत के लिए रुपया खर्च करने के अधिकार दिये जायं।

भारत के हालात से जो लोग परिचित हैं, वे सब इस बात को मानते

है कि गांव पर डाला गया सफाई का भार असफल रहा है। हम यह ज्यादा उचित समझते हैं कि ग्राम-पंचायतों को प्रोत्साहन दिया जाय कि वे जिस प्रकार से उचित समझें, अपने गांव की सफाई रखने के लिए स्वयं प्रबन्ध करें।

दूसरा कार्य, जो कि पंचायतों को दिया जाना चाहिए, वह शिक्षा में दिलचस्पी लेने, गांव में स्कूलों के बनाने और उनकी मरम्मत का ख्याल रखने का काम है। ब्रह्मा और असम में इस तरह किया जा रहा है और हम समझते हैं कि इसे और जगह भी अपनाया जाना चाहिए। इससे पी. डब्ल्यू. डी. का बहुत सारा काम हल्का हो सकता है।

पर भी अधिकार होना चाहिए। लगान की वसूली, खेती के लिए कर्ज, सिंचाई के लिए पानी की बंटाई, शराब के ठेकों के लिए स्थान निश्चित करना, अकाल में लोगों को सहायता देना, किसी बीमारी के फूट पड़ने पर उसकी रोक-थाम के उपाय सोचना, इत्यादि कार्यों में पंचायतों का हाथ होना चाहिए।

गांव के कांजीहौस तथा मण्डी, जिनका गांव से सीधा सम्बन्ध होता है, आसानी से ही इस संस्था को दिये जा सकते हैं। जहांतक लगान और खेती के कर्ज का सम्बन्ध है, या खेती को पानी बांटने की बात है, यह काम गांव की परिषद् के सुपुर्द किया जा सकता है। अच्छी तरह से काम करने-वाली पंचायत अकाल या बीमारियों के रोकने में बड़ी सहायता दे सकती है।

पंचायतों के जिम्मे जो काम किये जायं, उनमें उनकी सफलता या असफलता का निश्चय किसी एक कार्य के सफल या असफल होने से नहीं करना चाहिए और असफलता की अवस्था में भी उनके साथ नरमी का बर्ताव किया जाना चाहिए। हां, यदि पंचायत पूरी तरह से यह प्रकट कर दे कि वह कार्य करने के योग्य नहीं है, तो उस कार्य को उससे छीना जा सकता है और इस कार्य को सब-डिविजनल अफसर या पंचायत अफसर खुद कर सकता है।

पंचायतों के सफल तथा लोकप्रिय होने के लिए आवश्यक है कि वे स्थानीय कर न लगायें और न ही ऋण हासिल करें।

पंचायतों की आय के निम्न साधन होने चाहिए —

१. लोकल रेट (स्थानीय कर) का कुछ भाग

२. जिला बोर्डों तथा कलेक्टरों द्वारा अनुदान

३. ग्रामीण कांजीहौस तथा मेलों व मण्डियों से प्राप्त आय।

४. मुकद्दमों की फीस।

आय-व्यय के सम्बन्ध में सरल नियम होने चाहिए और कड़ा आडिट (जांच) नहीं होना चाहिए।

आय का साल के भीतर खर्च करना आवश्यक नहीं होना चाहिए। उपयुक्त काम में खर्च किये जाने तक जमा रहना उचित होगा।

सरकार के निचले स्तर के कर्मचारियों को पंचायत के कामों में हस्तक्षेप के अधिकार नहीं होने चाहिए, क्योंकि ये स्थानीय अधिकार व नियंत्रण में रुकावट डालते है।

कई साक्षियों का कहना है कि पंचायतों को जिला तथा तालुका बोर्डों के अधीन किया जाय, पर हम इस योजना से सहमत नहीं हैं। इन संस्थाओं के पास काफी काम है और यह पंचायतों से निपट नहीं सकेंगी। पचायतों का निरीक्षण व पर्यवेक्षण सरकारी कर्मचारियो के अधीन रहना चाहिए। उक्त बोर्ड पंचायतों को अनुदान दे सकते है।

ग्राम-स्तर के कर्मचारियों का वेतन कम होने के कारण उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार की शिकायतें आती हैं। सरकार को इस तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए। ग्राम-अधिकारियों के सम्बन्ध मे शिकायतो को सुनने तथा उन्हें निपटाने के अधिकार सब-डिविजनल अफसर को होने चाहिए और उसकी कोई अपील नहीं होनी चाहिए।

आयोग की रिपोर्ट की सभी मुख्य बाते ऊपर आ चुकी हैं। इसके प्रस्तावों के फलस्वरूप अलग-अलग प्रातों में अलग-अलग अधिनियम बने और ऐसी मनोनीत पंचायतों का निर्माण हुआ, जिनमे कई स्थानों पर नम्बरदार ही प्रधान था। इनका विशेष कार्य छोटे-छोटे विवादों का निर्णय करना ही था। इससे सत्ता-प्राप्ति की लालसा से उत्पन्न होनेवाले दुर्गुण पनपने लगे और रचनात्मक वृत्तियों का ह्रास हुआ। इन पंचायतों से ग्रामों के उत्थान, स्वावलम्बन तथा विकास के कार्यों को न तो प्रोत्साहन मिला और न ही इस ओर ध्यान दिलाने की चेष्टा ही की गई। इस काल की ये पंचायतें वस्तुतः नौकरशाही की एजेन्सियां बनकर रह गई और पंचायती राज की मौलिक भावना विकसित न हो पाई। न ही यह पंचायतें जन-समुदाय की प्रतिनिधि बन सकी।

पर इस रिपोर्ट से, और उसके स्वीकार कर लिये जाने से, एक बात अवश्य हुई कि लम्बे समय तक निष्क्रिय रहने के बाद भारतीय ग्राम-पंचायतें एक बार फिर उठीं। यह बात दूसरी है कि उनका कार्यक्षेत्र बिल्कुल सीमित था। इस तरह इस रिपोर्ट के स्वीकार किये जाने को हम भारत में पंचायतों के पुनरुत्थान का प्रारम्भ मान सकते हैं।

ब्रिटिश शासन में पंचायतों का विकास

सन् १९०९ में शाही विकेन्द्रीकरण आयोग के स्थापित होने से पहले, सन् १८०० से लेकर सन् १९०० तक, ब्रिटिश शासन के सौ वर्षों में देश में ३१ बड़े दुष्काल पड़े, जिसमें लाखों व्यक्तियों की जानें गईं। अकाल के कारणों की जांच करने के लिए सरकार ने समय-समय पर कई आयोगों की नियुक्ति की।

आखिर, जैसा कि हम पिछले पृष्ठों में देख चुके हैं, १९०९ के शाही विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट के बाद इस दिशा में ठोस कदम उठाये गए और देश में पंचायतों की पुनर्स्थापना हुई।

सन् १९१९ में माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के कारण गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट पास होने के बाद पंचायतों की ओर कुछ और ध्यान दिया गया। अब ग्राम-सुधार के कार्यों को भी अपनाया जाने लगा। पर ग्राम-सुधार का कार्य पंचायतों के सुपुर्द नहीं किया गया। वह जिला अधिकारियों के अधीन था। इस काल में कुछ गैर-सरकारी व्यक्ति और संस्थाएं भी ग्राम-सुधार के क्षेत्र में उल्लेखनीय काम करने लगीं थीं। कांग्रेस, रामकृष्ण मिशन, आर्य समाज, युवक ईसाई संघ (वाई० एम० सी० ए०) आदि संस्थाएं और महात्मा गांधी जैसे नेता विशेष रूप से सक्रिय थे। अतः यह कहना अत्युक्ति न होगा कि इस दिशा में सरकार की ओर से उठाये गए कदम, खास तौर पर गांधीजी के और आमतौर पर अन्य संस्थाओं के काम की ओर से जनता का ध्यान हटाने के लिए ही शुरू किये गए थे।

१९१९ के गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट के लागू होने का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि पंचायतों का विषय केन्द्रीय सरकार का न रहकर प्रान्तीय सरकारों का विषय बन गया। इसके बाद कई राज्यों में इससे सम्बन्धित कानून बन गये। मद्रास व बम्बई में इस दिशा में सबसे पहले कदम उठाये गए। इसके बाद उत्तर प्रदेश में पंचायत-सम्बन्धी कानून बना। धीरे-धीरे ब्रिटिश भारत के सभी प्रान्तों में पंचायत-सम्बन्धी कानून बन गये और पंचायतों की स्थापना हो गई।

१९१९—२० के आस-पास ग्रामीण जनता की दशा सुधारने की दो प्रमुख योजनाएं सामने आईं। एक योजना श्री मानवेन्द्रनाथ राय की

'जनता-योजना' थी और दूसरी महात्मा गांधी की 'ग्रामोद्योग-योजना' थी। दोनों योजनाओं का उद्देश्य एक ही था—ग्रामीण जनता की हालत सुधारना। पर दोनों का तरीका अलग-अलग था। गांधीजी की मौलिकता यह थी कि वह जनता की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक भावनाओं को भी विकसित करना चाहते थे। इस योजना में पंचायतों को विशेष स्थान दिया गया था। अन्य सामान्य कार्यों के साथ-साथ ये कार्य भी पंचायतों के सुपुर्द किये जाने का प्रस्ताव रखा गया—कर-वसूली, शान्ति-स्थापन, न्याय, प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य तथा चिकित्सा, प्रसूति-सहायता, मातृमंगल तथा शिशु-कल्याण, भवनों तथा पक्के कुओं का प्रबन्ध, कृषि-विकास, ग्राम्य व्यापार का नियमन तथा सहकारिता आदि।

ग्रामोद्धार के इन आरम्भिक प्रयोगों में गुड़गांवा के तत्कालीन डिप्टी कमिश्नर श्री एफ० एल० ब्रेन के 'गुड़गांवा प्रयोग' का भी अपना स्थान है। इस प्रयोग का विशद् वर्णन तो यहां करना सम्भव नहीं है, पर यह बात अवश्य है कि इससे यह परिणाम निकला कि "ग्रामोत्थान के कार्य में ग्राम-पंचायतों का बनाना एक सहायक कार्य ही नहीं है, बल्कि एक आवश्यक कार्य है।"

जिस समय ब्रिटिश भारत में उक्त कानून के अन्तर्गत पंचायतों की स्थापना हो रही थी और उनसे सम्बन्धित कानून बन रहे थे, उस समय कुछ देशी राज्यों में भी ऐसे ही कदम उठाये जा रहे थे। मैसूर और बड़ौदा राज्य के शासकों का तो दावा था कि उनका पंचायती संगठन ब्रिटिश भारत के पंचायती संगठन से कहीं उन्नत है।

मद्रास प्रान्त में सन् १६२० में पंचायत कानून बना। इसमें स्थानीय संस्थाओं और पंचायतों के अधिकार बताये गए थे। 'ग्राम्य न्यायालय एक्ट' (विलेज कोर्ट्स एक्ट) के अन्तर्गत पंचायतों को न्याय-सम्बन्धी अधिकार भी दिये गए थे। बम्बई के पंचायत एक्ट के अन्तर्गत हर दो हजार की जनसंख्यावाले गांव के लिए एक पृथक् ग्राम-पंचायत का निर्माण होता था। पंचायतें चुनाव द्वारा ही बनती थीं। ग्राम-पंचायत के सदस्यों में से ही न्याय-पंचायत का निर्माण होता था। बंगाल में सन् १६१६ में स्थानीय स्वशासन एक्ट बना। उत्तर प्रदेश में १६२० में पंचायत एक्ट बना। इस एक्ट के अनुसार स्थापित ग्राम-पंचायतों को न्याय-पंचायतों के अधिकार भी प्राप्त थे। लेकिन पंचायतें विकास-कार्य में सहायता नहीं दे सकती थीं। यह कार्य जिला-अधिकारियों के ही अधीन रहा। पंजाब में सन् १६३६ में बना एक्ट उत्तर प्रदेश के एक्ट की तरह ही था। इसके अतिरिक्त इस एक्ट से प्रान्तीय सरकार को पंचायतों में नामजदगी का अधिकार भी दे दिया गया था। मध्य प्रदेश में इस सम्बन्ध में अन्तिम कानून १६४६ में पास हुआ था। इस कानून द्वारा वहां की आदिम जातियों के लिए अलग पंचायतों की व्यवस्था की गई। न्याय-पंचायत वैसे तो अलग थी। पर उसका निर्माण ग्राम-पंचायत के सदस्यों से ही होता था।

सन् १६३५ में जनता की स्वशासन की मांग के फलस्वरूप १६३५ का गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट सामने आया। इस एक्ट के अन्तर्गत प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डलों और अर्धलोकप्रिय विधान-सभाओं की स्थापना हुई। पंचायतों का काम लोकप्रिय मन्त्रियों को दिया गया। अधिकतर प्रान्तों में इस सम्बन्ध में बड़े उत्साह से काम शुरू किया गया। किन्तु इस प्रकार बने मन्त्रिमण्डल बहुत दिन तक न चल सके। १६३६ में शुरू होनेवाले विश्व-युद्ध में भारत के भाग लेने के प्रश्न पर भारत-सरकार और कांग्रेस में मतभेद के कारण अधिकतर प्रान्तों में लोकप्रिय शासन समाप्त हो गया। पंचायतों का थोड़ा-बहुत काम तो चलता रहा, पर महायुद्ध के कारण उनकी ओर अधिक ध्यान न दिया जा सका और यह संगठन शिथिल हो गये। महायुद्ध के पश्चात् देश में फिर चुनाव हुए

और प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डलों का निर्माण फिर से हुआ। फिर दो ही वर्ष में देश स्वतन्त्र भी हो गया। युद्ध के बाद का विकास स्वतन्त्र भारत में पंचायतों के विकास से अलग नही किया जा सकता, और इस-लिए हम उसका अध्ययन अगले अध्याय मे ही करेंगे।

उपर्युक्त वर्णन से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि उस समय पंचायतों के पास बहुत ही सीमित अधिकार थे और उनके संगठन को काफी कमजोर रखा जाता था। पंचायतों के विकास और शक्ति प्राप्त करने के मार्ग में भी ब्रिटिश सरकार की तरफ से कई रुकावटें डाली गई थी। इन रुकावटों और सीमित कार्यक्षेत्र के कारण पचायतो के कार्य मे पग-पग पर रुकावटें आती थी और उनके अधिकार और सत्ता नाम के ही रह जाते थे।

वित्तीय साधनों की समस्या

आर्थिक स्वावलम्बन किसी भी स्थानीय संस्था के सफल कार्य-संचालन की एक बड़ी गारण्टी है। यह एक मानी हुई बात है कि भारत की स्थानीय संस्थाएं, विशेषकर पचायते, इस क्षेत्र मे अंगरेजी राज के आने से आज तक कभी स्वावलम्बी नही रही। सन् १९३५ मे स्थानीय स्वशासन के पूना-सम्मेलन में अध्यक्ष-पद से भाषण करते हुए स्वर्गीय सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा था—"कहा जाता है कि स्थानीय स्वशासनिक संस्थाओं का कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया है और उनकी शक्तियां भी बढ़ गई है। यह बात ठीक है। पर इन बातों से उस समय तक क्या लाभ कि जबतक उनकी माली हालत और आय के साधनो की ओर ध्यान न दिया जाय! इन साधनों के बिना अधिकारों का विस्तार करना मरी हुई घोड़ी को चाबुक से सजाने के बराबर है।"

समय-समय पर नियुक्त जांच-समितियों और कमीशनों की रिपोर्टों, गवर्नर जनरलों की शासन-रिपोर्टों और प्रस्तावों में भी किसी-न-किसी रूप में इस बात को माना गया है। सन् १८७० की लार्ड मेयो की शासन-रिपोर्ट मे इस विषय मे कहा गया है—"स्थानीय हितों को ध्यान मे रखने के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई तथा स्थानीय जनता के हित-सम्बन्धी अन्य कार्यों में खर्च होनेवाले धन की उचित देखभाल का प्रबन्ध होना

जरूरी है। इसको कार्यरूप में परिणत करके ही स्थानीय स्वशासन को मजबूत किया जा सकता है।···इससे नगरपालिकाएं भी मजबूत होंगी।"

सन् १८९२ में दिये गए लार्ड रिपन के एक शासन-आदेश द्वारा प्रान्तीय सरकारों को इस बात की जांच करने का आदेश दिया गया कि गैर-सरकारी सदस्यों या निर्वाचित सदस्यों से निर्मित स्थानीय संस्थाओं को कौन-कौन-से वित्तीय साधन सौंपे जा सकते हैं? उनसे यह भी पूछा गया था कि सारे देश में स्थानीय संस्थाओं की कर-व्यवस्थाओं में समता लाने के लिए क्या कदम उठाये जा सकते हैं? साथ में यह निर्देश दिया गया था कि ये साधन ऐसे हों कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बदला तथा बढ़ाया जा सके।

इसके आदेश के फलस्वरूप १८८३-८५ में प्रान्तों में सम्बन्धित कानून बनाये गए। उस समय देहाती बोर्डों (रूरल बोर्ड) के काम नगरपालिकाओं जैसे ही थे, जैसे कि स्वास्थ्य, यातायात, शिक्षा तथा अकाल सहायता आदि। स्थानीय संस्थाओं की आय के मुख्य साधन थे—कर, फीस, चुंगी, कांजीहौस-फीस, शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी अनुदान, चिकित्सा-सम्बन्धी सरकारी अनुदान आदि। १८८९ से १८९५-९६ तक के सात वर्षों में स्थानीय संस्थाओं की कुल आय २,६७,६८२ रुपये थी और इसमें से १,४१,०५,०२८ रुपये सड़कों से (चुंगी) प्राप्त हुए थे।

पिछले अध्याय में हम १९०७ में नियुक्त हुए शाही विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट का उल्लेख कर चुके हैं। इस रिपोर्ट में इस बात को स्वीकार किया गया है कि स्थानीय संस्थाओं के वित्तीय साधन अपर्याप्त हैं। भारत-सरकार के तत्कालीन गृह-सचिव सर हरबर्ट रिज़ले के शब्द हैं—"मैं समझता हूं कि यह मान लिया जाना चाहिए कि जिला बोर्डों तथा नगरपालिकाओं की आय के साधन उनका आधुनिक ढंग से काम चलाने के लिए अपर्याप्त हैं। नगरपालिकाओं में यह कमी जल-योजनाओं और नालियों के सम्बन्ध में विशेष रूप से सामने आती है। इन चीज़ों की, और विशेषकर जल-योजनाओं की उपयोगिता अब सब जगह समझी जा रही है।"

आयोग ने अपने सुझावों में कहा है—"पंचायतों को सफल बनाने

के लिए नये करों की सिफारिश करना ठीक न होगा। इन्हें जिला बोर्डों द्वारा लगाये गए करों का एक भाग मिलना चाहिए और स्थानीय महत्त्व के कार्यों के लिए उन्हें अनुदान दिये जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त कांजीहौस से होनेवाली आय पंचायतों को ही दी जानी चाहिए।"

विकेन्द्रीकरण आयोग की रिपोर्ट पर भारत सरकार ने कई निश्चय किये। १९१५ की शासन-रिपोर्ट मे पंचायतो के बारे मे कहा गया है कि "पंचायतों को निश्चित कर लगाने की अनुमति दी जानी चाहिए, लेकिन इसपर प्रान्तीय सरकार का नियन्त्रण रहना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कर-वसूली मे पचायते इतनी लीन न हो जाय कि उसके पीछे वे अन्य कार्यों मे शिथिल हो जाय।"

माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड सुधारो मे भी पचायतो की वित्तीय स्वतन्त्रता के महत्व को स्वीकार किया गया है। सुधारो की रिपोर्ट मे कहा गया है, "पचायतों की उन्नति की सम्भावनाए उनको दिये गए अधिकारो और उनके कर्त्तव्यों पर निर्भर होती है। जहा पचायते सफल हो, वहा उन्हे छोटे-छोटे मामलों मे दीवानी और फौजदारी अधिकार दे दिये जाने चाहिए, साथ-ही-साथ स्वास्थ्य और शिक्षा के विषय भी उन्हींको दे दिये जाने चाहिए। उन्हें स्थानीय कर स्वयं लगाने के अधिकार का दिया जाना भी ठीक है।" १९१८ की शासन-रिपोर्ट मे इस बात को माना गया है कि पंचायतों को स्थानीय स्वशासन का एक साधन मात्र न समझकर ग्रामों के सामूहिक विकास का साधन समझना चाहिए, जिनका आधार ग्रामवासियो के वंशगत सम्बन्ध और उनकी सामान्य आवश्यकताएं हैं। इस बारे मे निम्नलिखित सुझाव दिये गए थे—

१. ग्राम-कर्मचारी पचायतो से सम्बन्धित होने चाहिए। पचायत सदस्य चुनाव द्वारा लिये जाने चाहिए।

२. पचायतो के कार्य ग्राम-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा छोटे-छोटे दीवानी व फौजदारी मुकदमे होने चाहिए।

३. जहां-जहां सम्भव हो, पचायतो को मालगुजारी पर लगाई जानेवाली स्थाई कर का कुछ भाग मिलना चाहिए। पचायतो को अतिरिक्त कर लगाने का भी अधिकार होना चाहिए। इन करों की रकम वहीं खर्च की

पर खर्च की जानी चाहिए कि जिनके लिए वे वसूल किये जायं।

साईमन कमीशन की रिपोर्ट और १६३५ के गवर्नमेंट आफ इण्डिया एक्ट का पंचायतों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इस सारे विवरण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अंग्रेजी शासनकाल में शासकों ने भी इस बात को माना था कि जबतक पंचायतों की आर्थिक दशा सन्तोषजनक न होगी तबतक ये कुछ काम न कर सकेंगी। यह बात ब्रिटिश शासनकाल में जितनी ठीक थी आज भी उतनी ही ठीक है। लेकिन ब्रिटिश शासकों की यह सारी सिफारिशें कागजी ही रहीं, क्योंकि उनमे से बहुत कम को वास्तविक रूप से अमल में लाया गया, और पंचायतों की दशा पहले जैसी ही रही और उचित धन तथा अधिकारों के अभाव में पंचायतें न मुकद्दमेबाजी को कम कर सकीं, न किसानों के कार्य के भार को हलका कर सकीं, न उन्हें स्वशासन की शिक्षा दे सकीं और न देश के देहातों की हालत में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन ही ला सकीं।

: ४ :

स्वतन्त्र भारत में पंचायतें

१५ अगस्त १९४७ को भारत ने एक नये युग मे प्रवेश किया। इस दिन अपनी गुलामी के बन्धन तोड़ हमारा देश संसार के स्वाधीन देशों की मण्डली मे शामिल हो गया।

स्वतन्त्रता के पूर्व हमारे अधिकतर नेता और देशवासी किसी भी बुराई का दोष विदेशी सत्ता के माथे बड़ी आसानी के साथ मढ़ देते थे— "गरीबी? यह दो सौ साल के अंग्रेजी राज का अभिशाप है। स्वाधीन भारत में कोई गरीब नही होगा।" "बेकारी और भिखमंगी? शासकों के अलावा इसकी जिम्मेदारी और किसपर रखी जा सकती है? स्वतन्त्र भारत का कोई नागरिक बेकार नही घूमेगा और कोई किसीके आगे भिक्षा के लिए हाथ नही फैलायेगा।" इसी तरह से हम अकाल, बीमारी, महा-मारी, साम्प्रदायिक दंगे, औद्योगिक विवाद, मजदूरों की हड़ताल और यहांतक कि चोरी और डकैती तक की जिम्मेदारी विदेशी शासकों पर डाल दिया करते थे। दुर्भाग्य की इस पृष्ठभूमि मे हमारे [illegible] देश-वासियों के लिए यह मान लेना स्वाभाविक था कि भारत के स्वतन्त्र होते ही यह सारी दुर्दशा एकदम, और [illegible] एकदम नहीं, तो कम-से-कम [illegible] मे अवश्य दूर हो जायगी और हमारे सपनों का [illegible] स्थापित होकर हमारे सामने आ जायगा। हमारी यह [illegible] पूरी हो सकी है? सब जानते है कि [illegible] हमारे देश ने [illegible] प्रगति की है, [illegible] दूर ही है।

सबसे बड़ी शिकायत हमारे [illegible] यह है कि हमारा शासन-तन्त्र [illegible] पहले [illegible] ही रहा है। [illegible]

चार पहले से किसी भी तरह आज कम नहीं है, बल्कि कई लोगों के मतानुसार तो पहले से अधिक गुना हो गया है। अफसरशाही आज भी पहले की तरह ही चलती है। निरीह जनता आज भी पुलिस से उसी तरह घबराती है कि जिस तरह वह १९४७ के पहले घबराती थी। इन सब बातों का क्या कारण है ? क्या इन्हें किसी तरह से दूर नहीं किया जा सकता ? यह प्रश्न हमारे शासन के सम्मुख रहे और हमारे नेता इनके समाधान के प्रयत्न में जुटे हैं। इसीलिए उन्होंने सत्ता को पंचायतों द्वारा ग्रामों तक पहुंचाने का संकल्प किया है। हम भारत की पंचायती परम्परा का काफी बारीकी से अध्ययन कर चुके हैं। हम देख चुके हैं कि भारतीय शासन-प्रणाली मूलतः व्यक्ति तथा ग्राम-प्रधान होती थी—उसका आधार स्वावलम्बी तथा स्वायत्तशासी ग्रामों का पंचायती संगठन था। इस प्रकार भारत के पचायती राज का मौलिक सिद्धान्त विकेन्द्रीकरण की वर्तमान धारणा से बहुत भिन्न है। विकेन्द्रीकरण का आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सत्ता कहीं-न-कहीं केन्द्रित है और उसे वहां से वितरित किया जाना चाहिए। सत्ता के केन्द्र से इस प्रकार वितरित किये जाने को ही सामान्यतः विकेन्द्रीकरण कहा जाता है। पर भारतीय पंचायती परम्परा में सत्ता को इन अर्थों में कभी केन्द्रित नहीं किया गया। 'हिन्दुस्तान की कहानी'[1] (डिस्कवरी ऑव इंडिया) में श्री नेहरू ने लिखा है—"भारत में कभी भी धार्मिक राज्य-तन्त्र नहीं था।...राजकीय सत्ता की सारी धारण यूरोप के सामन्तवाद से, जहां सम्राट की सत्ता अपने शासन-क्षेत्र में सभी व्यक्तियों और वस्तुओं पर होती थी, भिन्न थी। वह अपनी यह सत्ता सामन्तों तथा जागीरदारों को प्रदान करता था। इस प्रकार सत्ता की एक पदशाही स्थापित हो गई थी। यह राज-प्रभुत्व की रोमन धारणा का ही विकसित रूप था। भारत में इस प्रकार की कोई बात नहीं थी।... भारत में किसान कभी भी जागीरदार का दास नहीं रहा।...कृषि-व्यवस्था सहकारी अथवा सामूहिक श्रम पर आधारित थी।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है जहां यूरोप में शासन सत्ता का केन्द्र और आधार होता था वहां भारत में सत्ता का आधार सहकारी ग्राम था, और शासक अपनी

१. हिन्दी में यह पुस्तक 'सस्ता साहित्य मंडल' से प्रकाशित हुई है।

देश में शान्ति भी फिर से स्थापित हो गई। लेकिन फिर भी जनता की कल्पना के आदर्श राज्य की स्थापना के कोई चिन्ह नहीं दिखाई दिये। नौकरशाही को पहले जैसे ही अधिकार प्राप्त थे। लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल पुरानी व्यवस्था के अन्तर्गत ही कार्य कर रहे थे और उन्हें वे शक्तियां प्राप्त नहीं थीं कि वे शासनतन्त्र को नया रूप देने में सफल हों सकें। रचनात्मक कार्यकर्ताओं की एक बैठक में भाषण देते हुए कांग्रेस के तत्कालीन महामन्त्री श्री शंकरराव देव ने १० अक्तूबर, १९४९ को यह बात स्वीकार की और कहा—"यद्यपि यह ठीक है कि आज पण्डित जवाहरलाल नेहरू देश के प्रधानमन्त्री हैं और सभी प्रांतों में आज कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल हैं। पर यह भी सत्य है कि उनके नीचे शासन की वही पुरानी मशीन है, जो पहले अंग्रेजों के इशारों पर काम करती थी। उनपर वे ही पुराने अफसर बैठे हैं। हम उन्हें अलहदा नहीं कर सकते—हम ऐसा करने में असमर्थ हैं। देश का शासन चलाना आज एक टूटी-फूटी मोटरगाड़ी को जबरदस्ती चलाने जैसा ही है।"

इसी समय संविधान-सभा द्वारा देश का संविधान शीघ्रता से तैयार हो रहा था। २६ नवम्बर १९४९ को संविधान का निर्माण-कार्य पूर्ण हो गया और २६ जनवरी, १९५० को वह संविधान देश में लागू भी कर दिया गया और हमारा देश एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बन गया।

भारत के संविधान के बारे में कई प्रकार के मत प्रकट किये गए हैं और उसकी कई प्रकार से आलोचना की गई है। इन सबसे हमारा कोई खास सरोकार नहीं। इस संविधान ने कुछ बातों को विशेष रूप से स्पष्ट कर दिया है। संविधान में यह स्पष्ट घोषित किया गया है कि भारत एक कल्याणकारी राज्य होगा। संविधान देश के नागरिकों को कई मौलिक अधिकार प्रदान करता है, जो किसी भी लोकतन्त्रात्मक देश के नागरिकों के लिए आवश्यक हैं। इसके अतिरिक्त संविधान के ४०वें अनुच्छेद में पंचायतों के लिए विशेष व्यवस्था है। ४०वें अनुच्छेद के अनुसार, "राज्य ग्राम-पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियां और अधिकार प्रदान करेगा, जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों

के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।"

कल्याणकारी राज्य की आधारभूत भावना यह होती है कि देश का बच्चा-बच्चा सुख-समृद्धि में रहे। उसे जीने का अधिकार हो और वह अपनी मौलिक आवश्यकताओं से वंचित न रहे। उसके गुण की प्रगति की ओर अग्रसर होने के रास्ते मे कोई बाधा न हो। नागरिक को बेकारी, अंग-हानि और असमर्थता की अवस्था मे उचित राहत मिल सके और विद्या-प्राप्त करने की सुविधाएं सभीको समान रूप से उपलब्ध हो। कल्याणकारी राज्य को सफल बनाने के लिए पचायतो का होना आवश्यक है, क्योंकि पंचायतों को सारी शासन-प्रणाली की बुनियादी इकाई माना गया है और पंचायतो की प्रणाली स्वावलम्बी और लोकतान्त्रिक ग्रामों के समूहों की प्रणाली है। महात्मा गाधी के शब्दो मे, "असंख्य ग्रामों को लेकर बने इस संगठन में उत्तरोत्तर प्रबुद्ध और विकासोन्मुख तत्त्वों का समावेश होता रहेगा। व्यक्ति पचायत का केन्द्र होगा।...व्यक्ति ग्राम के हितों के लिए अपनेको मिटा देने तक के लिए तत्पर रहेगा। इसी प्रकार वह ग्रामसमूहो के लिए भी अपनेको न्यौछावर कर देने के लिए तैयार रहेगा। व्यक्ति को इकाई मानकर बनी यह व्यवस्था सजीव होगी। इन व्यक्तियों में निराशा नहीं होगी। वे अत्याचारी नहीं होंगे। वे और सब विनयी होंगे।.. व्यक्ति इस व्यवस्था का अविभाज्य अंग होगा।'

निर्वाचित कार्यकारिणी 'ग्राम पंचायत' बनाई गई है। इस तरह की सक्रिय गांव-सभाओं की कार्यकारिणी के सदस्य अपनी पदावधि में शिथिल या निष्क्रिय नहीं हो सकते, क्योंकि उनका अपने निर्वाचकों से लगातार सम्बन्ध बना रहता है। इन संस्थाओं को काफी अधिकार दिये गए। साथ ही, उनके कुछ निश्चित कर्तव्य भी निर्धारित किये गए। बाद में इसी प्रकार का कानून बिहार में भी बना। उड़ीसा और मध्यप्रदेश में पंचायत-सम्बन्धी कानूनों को संशोधित कर नई परिस्थितियों के अनुरूप करने की कोशिश की गई। लेकिन प्रारम्भिक पंचायतों का ताल्लुका, जिला या प्रांत के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं था। इसलिए उन्हें प्रशासन की प्रारम्भिक इकाई मानने का प्रश्न पैदा नहीं होता। पर गांधीजी की पंचायत-राज की धारणा इससे भिन्न थी। उसमें पंचायत को शासन की वास्तविक इकाई माना गया है, जिससे देश के सारे शासनतन्त्र का निर्माण होता है। अमरीकी पत्रकार ड्रियू पियरसन से एक भेंट के दौरान में गांधीजी ने कहा था, "भारत में सात लाख ग्राम हैं। हर ग्राम का संगठन उनके नागरिक की इच्छा से होगा। इस प्रकार देश के ४२ करोड़ के स्थान पर ७ लाख वोट होंगे—अर्थात् एक ग्राम का एक वोट होगा। चुनावों के द्वारा यही ग्राम अपना जिला-शासन चुनेंगे। यह जिला-शासन एक राष्ट्रपति का चुनाव करेंगे, जो राष्ट्र का मुख्य कार्यकारी होगा।"

स्पष्ट है कि गांधीजी की यह कल्पना अभी तक पूर्णरूपेण क्रियान्वित नहीं हो सकी है। भारत के संविधान में शासन की स्वायत्त इकाइयों के संगठन की जो बात कही गई हैं, वह उक्त अधिनियम द्वारा भी पूर्ण नहीं हुई। परन्तु श्री बलवन्तराय मेहता कमेटी की १९५९ की रिपोर्ट के बाद सामुदायिक विकास-मंत्रालय की देखरेख में और अधिक प्रगति हुई है, जिसका वर्णन आगे किया गया है।

पंचायतों की आर्थिक व्यवस्था

५ अगस्त, १९४८ को राजकुमारी अमृतकौर की अध्यक्षता में नई दिल्ली में होनेवाले राज्य के स्थानीय स्वशासन-मन्त्रियों के सम्मेलन में उद्घाटन-भाषण करते हुए प्रधानमन्त्री नेहरू ने कहा था—"लोकतन्त्र की किसी भी सच्ची व्यवस्था का आधार स्थानीय स्वशासन ही है और होना

स्थिति सुदृढ़ करने के उपाय सामने रखे। अलग-अलग राज्यों की अवस्था भी अलग-अलग थी, इसलिए सम्मेलन ने यह निश्चय किया कि इस प्रश्न पर अधिक जानकारी प्राप्त की जाय। सम्मेलन ने वित्त-सम्बन्धी प्रस्ताव में कहा—"यह सम्मेलन स्वीकार करता है कि स्थानीय संस्थाओं के वित्त-साधन आवश्यकता को देखते हुए बहुत कम हैं। सम्मेलन यह भी मानता है कि मौजूदा साधनों का उचित उपयोग भी नहीं किया जाता है। इसके अतिरिक्त कर-निर्धारण का तरीका दोषपूर्ण है तथा वसूली पूरी नहीं हो पाती।

"स्थानीय संस्थाओं की वित्तीय समस्या की गम्भीरता को देखते हुए यह सम्मेलन इस बात की सिफारिश करता है कि केन्द्रीय सरकार एक ऐसी समिति की नियुक्ति करे, जो स्थानीय संस्थाओं के वित्त की पूरी तरह से जांच-पड़ताल करे और उसको उन्नत करने तथा उसके विकास के उपायों के बारे में अपने प्रस्ताव पेश करे।"

स्थानीय वित्त-साधन की जांच-पड़ताल-समिति की रिपोर्ट

भारत सरकार ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। २ अप्रैल १९४९ को स्वास्थ्य-मन्त्रालय ने एक ऐसी समिति का निर्माण किया। इस समिति का नाम स्थानीय वित्त-साधन की जांच-पड़ताल-समिति था। इस समिति में अध्यक्ष को मिलाकर दस सदस्य थे।

समिति को निम्नलिखित प्रश्न पर विचार करना था।

स्थानीय संस्थाओं के वित्त की जांच-पड़ताल और उसके विकास और उन्नति के सुझाव देना; इसके लिए—

(क) इस बात की जांच करना कि क्या स्थानीय संस्थाओं के वित्त-साधन उनकी जिम्मेदारियों को पूरी तरह निबाहने के लिए काफी है? यदि नहीं तो उन्हें कैसे उठाया जा सकता है?

(ख) सरकार द्वारा वित्त-सहायता के साधनों की जांच-पड़ताल।

(ग) कर-निर्धारण और वसूली की मौजूदा व्यवस्था की जांच।

वित्त-साधनों की जांच के लिए समिति ने भारत में ब्रिटिश राज की स्थापना से लेकर अबतक के स्थानीय संस्थाओं-सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन किया। खासकर ब्रिटिश राज में नियुक्त की गई सभी जांच-

२. व्यवसाय-कर—यह कर व्यवसायों पर लिया जाता है और उन सब व्यक्तियों से लिया जाता है, जो छः मास में कम-से-कम ६० दिन उस इलाके में रहते हों।

३. यान-कर—यह कर मोटरकारों को छोड़ अन्य यानों पर, जो गांव में प्रयुक्त होते हैं, लिया जाता है।

४. सम्पत्ति-हस्तांतरण कर—यह सम्पत्ति के हस्तांतरण पर ५ प्रतिशत के दर से लिया जाता है।

राज्य-सरकार की अनुमति से लगान पर तीन पाई प्रति रुपया कर लगाया जा सकता है। पुलों आदि के लिए धन-संग्रह करने के लिए भूमि पर एक और कर लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त वाणिज्य, उपज के क्रय-विक्रय, ग्राम-स्थानों के इस्तेमाल, यान के अड्डों, कसाईखानों, आदि पर भी पंचायत फीस वसूल कर सकती है

इन आय के साधनों के अतिरिक्त;

१. पंचायतें जिला बोर्डों द्वारा लगाई रवाई का चौथाई भाग ले सकती हैं।

२. मालगुजारी का १२$\frac{१}{२}$ प्रतिशत भाग राज्य सरकार पंचायतों को अनुदान के रूप देने के लिए अलग से रखती है।

३. जिला-बोर्डों के द्वारा लगाया गया यात्री-कर भी पंचायतों को मिलता है।

४. मद्रास स्वास्थ्य-अधिनियम के अन्तर्गत समस्त करों की आय पंचायतों को मिलती हैं।

५. पंचायतों द्वारा प्राप्त न्याय-सम्बन्धी फीसों व जुर्मानों का $\frac{१}{१०}$ भाग और इसके अतिरिक्त जिला बोर्डों से हाटों, मण्डियों, पत्तनों आदि से प्राप्त आय का भाग पंचायतों को मिलता है।

बम्बई : १. भवन-कर—(क) भवन के मूल्य पर आठ आने प्रति १०० रुपये की दर तक एक ही बार।

(ख) सम्भावित सालाना किराये का १५ प्रतिशत तक।

२. यात्री-कर—छः आने प्रति यात्री तक।

३. मेलों तथा त्यौहारों पर कर—(क) स्टालों व दुकानों पर पहले

के लिए लाईसेंस पर फीस, जिला-बोर्ड के अनुदान आदि से भी पंचायतों की आय होती है।

उत्तर प्रदेश : इस प्रदेश में कोई भी कर आवश्यक तथा अनिवार्य नहीं है। परन्तु जो कर यहां लगाये जा सकते हैं, वे निम्न हैं—

१. (क) काश्तकार पर सीर भूमि के लगान पर प्रति रुपया पर एक आने का कर।

(ख) मालिक पर लगान पर दो पैसा प्रति रुपया का कर।

(ग) सम्भावित लगान के आधार पर सीर तथा खुदकाश्त भूमि के लगान पर प्रति रुपया एक आना कर।

इन सभी करों का एक साथ लगाया जाना आवश्यक है, और यह ऊपर लिखी उच्चतम मात्रा के अनुपात में लगाया जाता है।

२. व्यवसाय तथा व्यवसाय पर विनिहित मात्रा में कर।

इसके अतिरिक्त कपड़ा व खांड बेचनेवालों तथा अन्य व्यापार करनेवालों पर उनकी वार्षिक आय के आधार पर पंचायत कर लगा सकती है। इन करों की दरों की सीमा राज्य सरकार निर्धारित करती है।

३. उपरोक्त कोई कर न देनेवालों पर राज्य द्वारा निश्चित सीमाओं के भीतर भवन-कर लगाया जा सकता है। जिलाधीश यदि आज्ञा दे दे तो जिला बोर्ड को स्थानीय (लोकल टैक्स) में से विनिहित भाग देना पड़ता है।

४. जुर्माने, फीस, तथा राजीनामों से प्राप्त रकमें।

५. जिला-बोर्ड तथा सरकार से प्राप्त अनुदान।

६. नजूल सम्पत्ति के किराये का विनिहित भाग।

७. दान-चन्दे आदि से प्राप्त रकम।

८. खाद आदि के विक्रय से हुई आय।

पंजाब : यहां कोई कर अनिवार्य नहीं है। पंचायतों को जिन करों को लगाने का अधिकार है, वे भी राज्य सरकार की अनुमति से ही लगाये जा सकते हैं। ये कर निम्न हैं—

(ज) पंचायत-क्षेत्र में यात्रियों से यात्री-कर।

(झ) पंचायत के स्वामित्व की भूमि, भवनों तथा अन्य स्थानों की आय।

(ञ) सरकार द्वारा वसूल किये करों का भाग।

उड़ीसा : उड़ीसा में अनिवार्य कर केवल अचल सम्पत्ति के मालिकों पर ही लगता है। यदि कर देनेवाला निर्धन हो तो पंचायत कर कम कर सकती है या उसे कर से छूट भी दे सकती है।

यहां भी दलालों, एजेण्टों तथा डंडीदारों से लाइसेंस फीस ली जाती है। इनके अतिरिक्त पंचायत कुछ अन्य कर या शुल्क भी लगा सकती है, यथा—भाड़े के पशुओं पर कर, पंचायती भूमि का उपयोग करनेवालों से किराया, पशुओं तथा वस्तुओं की बिक्री पर शुल्क तथा उनकी रजिस्ट्री की फीस, पंचायती क्षेत्र के कसाईखानों से आय, सरायों, धर्मशालाओं आदि का किराया, आदि।

पंचायतों को १८ से ५० वर्ष तक की आयु के स्वस्थ पुरुषों पर श्रम-कर लगाने का भी अधिकार है, जिसके लिए वर्ष में चार दिन तय कर दिये जाते हैं। पर लगातार दो दिन से अधिक काम नहीं लिया जा सकता।

फिर न्याय-सम्बन्धी जुर्माने, फीस व दण्ड, दाख आदि कूड़ा-कर्कट के बचने से हुई आय, पंचायत के अधिकार में दी गई राज्य की सम्पत्ति से प्राप्त आय, जिला-बोर्ड तथा सरकार से प्राप्त अनुदान तथा लोकल रेट का एक-तिहाई भी ग्राम-फण्ड में ही जमा होते हैं।

मध्यप्रदेश : अनिवार्य कर निम्न हैं—

१. भवनों तथा कृषि के अतिरिक्त अन्य भूमि पर कर—यह कर सम्पत्ति पर कब्जा रखनेवालों तथा उनके न होने पर सम्पत्ति के मालिकों से निश्चित न्यूनतम मात्रा की सीमा में प्राप्त किया जाता है।

२. लाइसेंस फीस—क्षेत्र में हर कमीशन एजेण्ट तथा डण्डीदार को निश्चित फीस देकर लाइसेंस लेना पड़ता है।

३. व्यवसाय-कर—निश्चित व्यवसायों का अनुसरण करनेवालों पर विनिहित दर से लगाया जाता है।

न करे तो उसे उसी काल के लिए दुगुनी मजदूरी देनी पड़ेगी।

इसके अतिरिक्त आय के निम्नलिखित साधन भी हैं—

१. न्याय-सम्बन्धी फीस व जुर्माने।

२. सब-डिवीजनल विकास-खण्ड के अनुदान।

३. सरकार तथा अन्य स्रोतों से अनुदान।

४. जिन परमिटों के सम्बन्ध में उन्हें नियमों तथा उपनियमों के अन्तर्गत अधिकार प्राप्त हैं, उनपर फीस।

वित्तानुसन्धान-समिति की सिफारिशें

समिति की राय में उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचायतों की आय के मुख्यतः दो साधन हैं—

१. पंचायतों द्वारा खुद प्राप्त की गई आय।

२. सरकार तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त अनुदान।

पंचायतों को अपने साधनों से होनेवाली आय के बारे में समिति का मत है कि उन्हें निम्नलिखित दो अनिवार्य कर लगाने चाहिए—

१. भवन तथा चूल्हा-कर अथवा हैसियत या सम्पत्ति-कर।

२. सफाई-स्वास्थ्य-सम्बन्धी कर।

अपनी आवश्यकताओं तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार पंचायतें और कर भी लगा सकती हैं। श्रम के लिए कोई मजबूरी नहीं होनी चाहिए। यदि कोई व्यक्ति इच्छापूर्वक श्रम करना चाहे तो कर सकता है, परन्तु जो ऐसा न कर सके, उसकी एवजी देने की सुविधा दी जानी चाहिए। इसके लिए कोई दण्ड नहीं होना चाहिए।

कई पंचायतों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं होती। इस प्रकार की पंचायतों को, समिति की राय में, अन्य तरीकों से आर्थिक सहायता का दिया जाना अच्छा होगा। ये तरीके हैं—मालगुजारी का १५ प्रतिशत भाग तथा सम्पत्ति के हस्तांतरण पर कुछ फीस आदि। इस तरह से प्राप्त रकम पंचायतों के कोष में जानी चाहिए।

जहांतक पंचायतों की प्रारम्भिक शिक्षा की जिम्मेदारी का सम्बन्ध है, उन्हें उसी ढंग से अनुदान मिलने चाहिए जैसे कि स्थानीय स्वशासन की अन्य संस्थाओं को दिये जाते हैं।

इस तरह से पंचायतों की वित्तीय समस्या सुलझाने में काफी सहायता मिल सकती है। इसके साथ दूसरा तरीका है पंचायती खेत व पंचायती फार्म। इनसे पंचायतों को अपने सामान्य कार्यों के लिए काफी धन मिल सकता है। यह साधन वित्त-समस्या को हल करने के साथ-साथ स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भरता की भावनाओं को भी जाग्रत तथा पुष्ट करेगा।

स्थानीय वित्तानुसन्धान समिति की रिपोर्ट में एक जगह सहकारी खेती तथा इसी प्रकार के अन्य कार्यों को भी पंचायतों की आय का एक साधन बताया गया है। वित्तानुसन्धान-समिति के इस प्रस्ताव पर विचार करते हुए स्थानीय स्वशासन-मन्त्रियों के सम्मेलन ने यह ठीक ही निश्चय किया कि सहकारिता तथा पचायत के कर्त्तव्यों व कार्यों के क्षेत्र निश्चित होने चाहिए और आर्थिक उत्तरदायित्व के कार्य सहकारिता के क्षेत्र में ही रहने चाहिए। इसमें इतना अवश्य हो सकता है कि पंचायती क्षेत्र की हर सहकारी सभा अपनी आय से प्रति वर्ष एक निश्चित अनुपात में विकास के लिए पंचायत को ग्राम-फण्ड में रकम दे। इससे एक तरफ तो पंचायत सहकारिता को प्रोत्साहन देने में अपना भी लाभ देखेगी और दूसरे सहकारी सभा के क्षेत्र में हस्तक्षेप भी नहीं कर पायेगी।

कर-जांच-समिति की रिपोर्ट

१ अप्रैल १९५३ को केन्द्रीय वित्त-मन्त्रालय ने कर-पद्धति के बारे में पूरी जांच-पड़ताल करने के लिए एक कर-जांच-समिति (टैक्सेशन इन्क्वायरी कमेटी) की स्थापना की घोषणा की। समिति की स्थापना का उद्देश्य वित्त-मन्त्रालय के अनुसार "कर-पद्धति का पूरा अनुसन्धान करना है। इसी प्रकार की एक जांच-समिति इसी प्रकार की तहकीकात करने के लिए ३० वर्ष पूर्व भी नियुक्त की गई थी। पर १९५३ की परिस्थितियों में बहुत अन्तर आ चुका है। इसलिए एक नई जांच होना आवश्यक था। सरकार यद्यपि सन् १९४८ से ही एक ऐसी समिति नियुक्त करने के प्रश्न पर सोच रही थी, पर विभाजन तथा वैधानिक परिवर्तनों के कारण पहले ऐसा नहीं किया जा सका।" यह समिति देश की कर-व्यवस्था के बारे में क्रमिक तथा पूरी तहकीकात करने के लिए नियुक्त की गई।

अध्यक्ष-सहित समिति के छः सदस्य थे। भूतपूर्व केन्द्रीय वित्त-मन्त्री

डा० जान मथाई समिति के अध्यक्ष थे। दिल्ली के भूतपूर्व आय-कर आयुक्त सरदार इन्द्रजीतसिंह समिति के मन्त्री थे। समिति को निम्न-लिखित प्रश्नों पर विचार करना था—

१. केन्द्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय करों का जनता के विभिन्न वर्गों तथा विभिन्न राज्यों पर प्रभाव।

२. (क) वर्तमान केन्द्रीय, प्रादेशिक तथा स्थानीय कर-पद्धति के विकास की योजना।

(ख) जनता की आमदनी तथा वित्तीय असमानता को दूर करने के तरीके।

३. आय-कर लगाने का तरीका तथा उसकी सीमाएं, और उसका उत्पादक उद्योगों पर प्रभाव।

४. कर का मुद्रास्फीति तथा उपस्फीति के उपकरण के रूप मे परीक्षण।

५. अन्य सम्बन्धित बातों पर विचार।

६. (क) वर्तमान कर-पद्धति मे आवश्यक सुधारो, तथा

(ख) कर के नये स्रोतों के सम्बन्ध में विशेष रूप से सिफारिशे करना।

समिति ने १६ नवम्बर, १६५३ से गवाहियां लेनी शुरू की। सुनवाई के दौरान में करों की वर्तमान व्यवस्था की अच्छी तरह जांच-पड़ताल की गई। सारी जांच के बाद समिति ने अपनी सिफारिशे दी। पचायती वित्त के बारे में समिति ने निम्नलिखित सिफारिशे दीं—

१. पंचायतों के विकास में यह बात सहायक होगी कि उनका संगठन करने के तुरन्त बाद कर न लगाये जाय। पचायतों के प्रारम्भिक विकास की अवस्था में उन्हें अपने कार्य के लिए आवश्यक वित्त का राज्य सरकार की ओर से दिया जाना ही अधिक उचित है।

२. धीरे-धीरे पचायतों को कर लगाने के लिए तैयार करना चाहिए। इसके लिए उन्हें बाध्य भी किया जा सकता है। पर पंचायतों का कर लगाने का क्षेत्र सीमित ही रहना चाहिए। इसके अलावा उनकी कर लगाने की पद्धति सीधी-सादी होनी चाहिए। व्यापार, जल, गाड़ी, पशु आदि पर लगाये गए छोटे-छोटे कर बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध नही होते। समिति के प्रस्तावानुसार नीचे लिखे कार

कर अधिक उपयोगी होंगे—

१. साधारण सम्पत्ति कर।

२. सेवा कर।

३. भूमि पर उप-कर (स्वाई)

४. सम्पत्ति-हस्तांतरण-कर।

इनके अतिरिक्त पंचायत की परिस्थितियों के अनुसार यानों, व्यवसायों तथा मेले-तमाशों पर भी कर लगाये जा सकते हैं।

कर-जांच-समिति के प्रस्तावों पर स्थानीय स्वशासन-मन्त्रियों के सम्मेलन में विचार किया गया। राज्यों का कथन था कि जनता पर करों का भारी बोझ है और वह और अधिक करों का बोझ नहीं सह सकती। इसलिए पंचायतों को नये कर नहीं लगाने चाहिए। लेकिन राज्यों के पास भी इतना रुपया नहीं है कि वे पंचायतों को अनुदान दे सकें। अतः पंचायतों को वित्त-सहायता देने के लिए राज्यों ने केन्द्र से सहायक अनुदान की मांग की।

स्पष्ट है कि ऐसी दशा में पंचायतों के लिए आवश्यक वित्त-सहायता आसानी से जुटाई जा सकती। इसका एकमात्र तरीका यही हो सकता है कि पंचायतों को सुपुर्द किये गए कामों के स्वरूप के अनुसार राज्य तथा केन्द्र, अपने उन करों का, जिन्हें वे पंचायती क्षेत्र से प्राप्त करते हैं, एक भाग पंचायतों को दें। साथ ही, वित्तानुसन्धान-समिति की सिफारिशों के अनुसार पंचायती क्षेत्रों में सहकारी फार्मों तथा पंचायती खेतों की स्थापना करके भी आय का एक अन्य साधन निकाला जा सकता है। इसके अतिरिक्त सहकारी सभाओं का विकास-फण्ड भी पंचायत की आय का एक अन्य आवश्यक तथा उपयोगी साधन हो सकता है।

पंचायत-राज की वास्तविक धारणा के अनुसार स्थानीय स्वशासन की सभी संस्थाएं पंचायत के अधिक्षेत्र में ही आ जाती हैं। नगर, तहसील तथा जिला पंचायतों की कर-पद्धति तथा संगठन आदि के बारे में उपयुक्त स्थानों पर विचार किया जायगा।

कांग्रेस की पंचायत-समिति की रिपोर्ट

पंचायतों के विकास का अध्ययन करते समय हम देख चुके हैं कि

१९४७ तक देश के प्रायः सभी राज्यों में पंचायत-राज-सम्बन्धी कानून बन चुके थे। भारत के सभी प्रमुख राजनैतिक दल भी पंचायतों के विरुद्ध नहीं हैं। आचार्य विनोबा भावे ने पंचायत को सर्वोदय-समाज की आधार-शिला बताया है। कांग्रेस के कार्यक्रम में पंचायतों को सदा से एक महत्व-पूर्ण स्थान दिया गया है। पंचायतों की प्रगति की ओर कांग्रेस ने सदा काफी ध्यान दिया है। २३-२४ मई १९५४ को नई दिल्ली में होनेवाली कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक में पंचायतों की प्रगति पर विचार-विमर्श हुआ। इस सम्बन्ध में पास हुए प्रस्ताव में कहा गया है—"कांग्रेस कार्य-समिति को भारत के विभिन्न भागों में पंचायत-पद्धति के उत्तरोत्तर विकास को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह न सिर्फ भारत की पुरानी परम्पराओं के अनुकूल ही है, बल्कि वर्तमान स्थिति के भी उपयुक्त है। आधुनिक राज्य धीरे-धीरे स्वभावतः केन्द्रीकरण की ओर अग्रसर होने लगते हैं। इस प्रवृत्ति में सन्तुलन लाने के लिए स्थानीय स्वायत्त संस्थाओं का विकास किया जाना चाहिए, जिससे देशवासी स्वय देश के प्रशासन में तथा सामाजिक, आर्थिक व न्यायिक क्षेत्रों में भाग ले सकें। इसका सबसे अच्छा उपाय यही हो सकता है कि भारत के गांवों में पंचायतों का विकास किया जाय। इन पंचायतों को प्रशासनिक तथा न्यायिक दोनों ही तरह के काम करने चाहिए।

"कार्यसमिति विशेषतः न्याय-पंचायतों की स्थापना का स्वागत करती है, जिनसे अदालतों का भार कम होगा तथा काफी संख्या में छोटे-छोटे मामलों का मौकों पर ही फैसला हो जाने से देशवासियों को सस्ता एवं शीघ्र न्याय मिल सकेगा।

"स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सम्पूर्ण देश में इस प्रकार की पंचायतों का विकास किया जाना चाहिए। ये पचायतें जाति तथा धर्म का भेद-भाव किये बिना सम्बन्धित क्षेत्र का पूर्ण प्रतिनिधान करेंगी।"

बैठक में यह भी निश्चय किया कि सारे राज्यों में पंचायतें किस ढंग से काम करती हैं इसका अध्ययन किया जाय। इसके लिए एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति के छः सदस्य थे।

समिति का कार्य इस प्रस्ताव के अनुसार यह था कि वह "इस प्रश्न के सब पहलुओं पर विचार करे और यह भी ध्यान रखे कि विभिन्न राज्यों में पंचायतें किस तरह काम कर रही हैं। अजमेर में होनेवाली अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी की बैठक के अवसर पर कार्य-समिति की बैठक में समिति अपनी रिपोर्ट पेश करे।"

समिति ने एक प्रश्नावली बनाकर देश के सब राज्यों तथा प्रदेश कांग्रेस कमेटियों को भेजी। समिति ने अपनी पहली बैठक में मूलभूत तथा व्यावहारिक समस्याओं का निर्णय किया, जो ये हैं—

१. शान्तिपूर्ण रीति से सामाजिक एवं आर्थिक क्रान्ति लाने में प्रभावशाली साधन के रूप में ग्राम-पंचायतों का स्थान।
२. लोक-हितकारी-राज्य की स्थापना के लिए सामाजिक एवं आर्थिक शक्ति के व्यापक विकेन्द्रीकरण में ग्राम-पंचायतों का स्थान।
३. प्राचीन भारतीय परम्पराओं के अनुरूप 'सम्मिलित प्रजातन्त्र' के आदर्श के रूप में ग्राम-पंचायतों का विकास—पंच परमेश्वर का स्थान।
४. दलबन्दी से दूर सामुदायिक संगठन के रूप में ग्राम-पंचायतें।
५. ग्राम-पंचायतों के कार्य में सर्वसम्मति का सिद्धान्त—एकमत से चुनी जानेवाली पंचायतों को अन्य पंचायतों के मुकाबले में अधिक अधिकारों का दिया जाना।
६. पंचायतों की निर्वाचन-पद्धति—वयस्क मताधिकार—प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष चुनाव—हाथ दिखाकर मतदान या प्राचीन भारत में प्रचलित पर्ची द्वारा प्रश्नों के तय करने की पद्धति का विकास करना।
७. पंचायत-संगठन की इकाई—एक गांव या ग्राम-समूह अथवा जनसंख्या के आधार पर।
८. पंचायत तथा राज्य के बीच की मध्यवर्ती संस्थाएं।
९. राष्ट्रीय आर्थिक आयोजन में ग्राम-पंचायतों का स्थान—दूसरी पंचवर्षीय योजना में पंचायतों के प्रभावशाली योग को सुनिश्चित करने के उपाय—सामुदायिक योजनाओं एवं राष्ट्रीय विस्तार-सेवाओं में पंचायतों का महत्व।

व्यावहारिक समस्याएं ये हैं—

१. प्रशासनिक अथवा नगरपालिका-कार्य।
२. न्याय-सम्बन्धी कार्य—न्याय-पंचायत के निर्णयों को गांव की दल-बन्दी से स्वतन्त्र रखना।
३. आर्थिक कार्य, विशेषकर गांव में सहकारी संस्थाओं तथा सहकारी प्रणाली का विकास तथा सहकारी खेती से सम्बन्धित कार्य।
४. पंचायतों की आय के साधन—लगान की उगाही का प्रतिशत भाग—सार्वजनिक भूमि, हाट-बाजार, मेला-स्थान, नदी, घाट इत्यादि की व्यवस्था से आय; नकद, जिन्स तथा श्रम के रूप में दान अथवा चन्दा।
५. कर्मचारी प्रशिक्षण।

समिति ने इन सब प्रश्नों का भली प्रकार अध्ययन किया और फिर देश-भर से प्राप्त सूचना के आधार पर अपनी रिपोर्ट तैयार की। ऊपर जो प्रश्नावली दी गई है, उसीसे रिपोर्ट का महत्व प्रकट हो जाता है। केन्द्र तथा राज्यों में कांग्रेस का ही शासन होने से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उक्त रिपोर्ट का राज्यों पर प्रभाव पड़ेगा और कार्यरूप में परिणत किया जाना निश्चित-सा ही होगा।

इस रिपोर्ट के लेखकों का भी यही मत है कि भारत में पंचायतों का क्रम बहुत प्राचीन है और भारत में राज्य-प्रणाली का विकास इन लोकतान्त्रिक पंचायतों से ही हुआ है। राजाओं ने सत्ता इन संस्थाओं से ही प्राप्त की। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहां पंचायतें किसी विकेन्द्रीकरण के क्रम के फलस्वरूप नहीं बनीं। वस्तुतः ये पहले बनीं और इनके संगठन द्वारा ही शासन की केन्द्रीय संस्था का निर्माण हुआ। रिपोर्ट ने इस निष्कर्ष के आधार पर यह सिफारिश की गई है कि पंचायतें संविधान के निर्देशानुसार शासन की इकाईयां हों, तथा दलबन्दी से सुरक्षित रखी जायं। यथासम्भव उनमें सर्व-सम्मति के सिद्धान्त को प्रोत्साहन दिया जाय और न्याय के लिए न्याय-पंचायतों का निर्माण पृथक और चुनाव द्वारा ही हो। यह रिपोर्ट पंचायतों, पंचायत-विभागों तथा पंचायत-राज-पद्धति में विशेष आस्था रखनेवालों के अध्ययन के लिए भी पर्याप्त सामग्री उप-

स्थित करती है। इस रिपोर्ट के अन्तिम निष्कर्ष निम्नलिखित हैं—

१. पंचायती परम्परा—भारत में स्वस्थ और जनतान्त्रिक परम्पराओं को स्थापित करने के लिए पंचायत-व्यवस्था एक बहुत अच्छा आधार प्रदान करती है। राज्य को चाहिए कि वह इसके विकास को प्रोत्साहित करे, ताकि हमारी जनता शासनिक कार्यों तथा सामुदायिक जीवन के दूसरे सामाजिक, आर्थिक और न्यायिक कार्यों में भाग ले सके।

२. संविधान और पंचायतें—भारतीय संविधान में निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ग्राम-पंचायतों को न केवल स्थानीय स्वायत्त-शासन इकाइयों के रूप में ही काम करना चाहिए, वरन् सामाजिक न्याय को स्थापित करने के लिए और सामुदायिक जीवन के पोषण के लिए भी प्रभावशाली कार्य करना चाहिए, ताकि लोगों को अधिकाधिक रोजगार प्राप्त हो सके।

३. आर्थिक तथा राजनैतिक सत्ताओं का विकेन्द्रीकरण—भारतीय संविधान जिन मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है, उनको सम्पूर्ण रूप से तब ही वास्तविक रूप दिया जा सकता है कि जब ग्राम-पंचायत-संस्थाओं के जरिए आर्थिक और राजनैतिक सत्ता को विकेन्द्रित करने के लिए गम्भीर और क्रमवद्ध प्रयास किया जाय।

४. मध्यवर्ती संस्थाओं के कार्य का पंचायतों द्वारा निर्वहन—व्यापक भूमि-सुधारों के लागू होने के फलस्वरूप मध्यवर्ती संस्थाएं समाप्त हो गई हैं। मध्यवर्ती संस्थाएं पहले ग्रामीण समाज में कुछ उपयोगी कार्य किया करती थीं, यथा उधार देना, बाजार-हाट का काम, गांव की आवश्यकताओं की पूर्ति इत्यादि। अब राज्य का कर्त्तव्य है कि वह ग्राम-पंचायतों के माध्यम से इस किस्म की सेवाएं गांवों को प्रदान करवाये।

५. पंचायतों द्वारा जनतन्त्र का विकास—ग्राम-पंचायतों के विकास से एक ऐसा जनतन्त्र विकसित होना चाहिए, जो ग्रामीण समुदाय के सभी तत्वों का प्रतिनिधान कर सके।

६. पंचायतें और दलगत नीति—ग्राम-पंचायतों की सबलता इस बात पर निर्भर होगी कि वे गांव की जनता में किस हद तक एकता की भावना पैदा कर सकती हैं और ग्रामीण आबादी के विभिन्न तत्वों का

विश्वास कहांतक प्राप्त करती है। अतः जहांतक सम्भव हो, पंचायतों को दलगत राजनीति से अलग रखना चाहिए।

७. **सर्व-सम्मति से चुनाव**—ग्राम-पंचायतों के चुनावों में सर्व-सम्मति से चुनाव के सिद्धान्तों को अधिकतम महत्व प्रदान करना चाहिए। इसके लिए वांछनीय होगा कि उन पंचायतों को अधिक शक्ति और अधिकार प्रदान किए जायं, जो पंचों को एकमत से चुनती हैं।

८. **लचीलापन**—उपर्युक्त बुनियादी सिद्धान्तों से, जहांतक सम्भव हो, नहीं भटकना चाहिए, परन्तु यह हमेशा याद रखना चाहिए कि पंचायतों के रोज-ब-रोज के काम के लिए सारे देश में कोई बना-बनाया ढर्रा नहीं रखा जा सकता है। इसलिए राज्यों को इस बात की छूट रहनी चाहिए कि वे स्थानीय परम्पराओं, स्थितियों व जरूरतों के मुताबिक अपना निजी ढांचा विकसित कर सके।

९. **बालिग मताधिकार**—ग्राम-पंचायतों का चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होना चाहिए। गांव के सब बालिग मिलकर ग्राम-सभा का निर्माण करें। जहां यह संख्या बहुत बड़ी हो, वहां गांव के प्रत्येक परिवार से एक-एक प्रतिनिधि लेकर ग्राम-सभा बनाई जाय। ग्राम-सभा द्वारा चुनी हुई ग्राम-पंचायत ग्राम-सभा की कार्यकारिणी के समान होगी। ग्राम-पंचायत के सदस्यों की संख्या ग्राम की आबादी के अनुपात में होगी। सामान्यतः यह पांच या पांच का कोई गुणक होना चाहिए।

१०. **चुनाव-पद्धति**—ग्राम-पंचायतों के चुनाव का ढंग जितना सरल हो, उतना ही अच्छा है। जिन पंचायतों के चुनाव सर्वसम्मति से हो जाते हैं, वहां कोई दिक्कत नहीं होती। पर जहां सब सदस्यों की सर्व-सम्मति प्राप्त न हो सके, वहां चुनाव गुप्त मतदान द्वारा होने चाहिए। इस चुनाव को गांव के ही बर्तनों, घड़ों या कनस्तरों इत्यादि का मत डालने के सन्दूक के रूप में प्रयोग करके और सरल बनाया जा सकता है। यदि जरूरी हो तो चुनाव-अफसर-गांव सभा के विभिन्न सदस्यों के वोट एक रजिस्टर में अलग कमरे में बैठकर गुप्त रूप से नोट कर ले। पर कमेटी हाथ द्वारा वोट लेने की प्रथा को सदा के लिए वर्जित नहीं करना चाहती

और जहां ग्राम-सभा इस तरीके को ठीक समझे, वहां यह अपनाया जा सकता है।

११. पंचायती क्षेत्र की जनसंख्या—ग्राम-पंचायत-संगठन की प्राथमिक इकाई सामान्यत: १५०० से लेकर २००० आबादीवाला एक गांव होना चाहिए। ऐसी ही पंचायतें ग्रामीण समुदाय की आवश्यकताओं के अनुसार योजना बना सकेंगी और काम कर सकेंगी। वैसे भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न स्थिति है और इस मामले में कोई कठोर योजना ठीक नहीं होगी। जहां ज़रूरत हो वहां कुछ छोटे-छोटे गांवों को मिलाकर एक ग्राम-पंचायत बनाई जा सकती है।

१२. मध्यवर्ती संस्थाएं—पंचायतों के काम की देखभाल करने के लिए और उनको एक सूत्र में पिरोने के लिए किसी प्रकार की एक मध्यवर्ती संस्था सहायक हो सकती है। इन मध्यवर्ती संस्थाओं को कुछ कार्यवाहक जिम्मेदारियां भी दी जा सकती हैं। ऐसी संस्थाओं का तहसील के स्तर पर बनाना उचित होगा। वैसे जिलों के स्तर पर या अन्य उपयुक्त स्तरों पर भी इन्हें बनाया जा सकता है। ऐसी मध्यवर्ती संस्थाएं नामज़द नहीं होनी चाहिए। उनका सरपंचों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव होना चाहिए। उनके साथ काम करने के लिए कुछ टेक्निकल विशेषज्ञ साथ रखे जा सकते हैं, परन्तु उनको वोट देने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

१३. पंचायतों के कार्य—पंचायतों के विभिन्न कार्य होने चाहिए। नगरपालिका-कार्यों में ग्राम की सफाई-सुथराई, गांव की सड़कों की देखभाल, ग्रामीण समुदाय के सामान्य उपयोग की इमारतों का बनाना और उनकी मुरम्मत, पानी बहाने की नालियों का प्रबन्ध, पीने के पानी का प्रबन्ध, गांव की सड़कों पर रोशनी, इत्यादि कार्य आ जाते हैं। यदि जिला-बोर्ड शिक्षा की देखभाल नहीं करता, तो उस काम को भी पंचायत के सुपुर्द किया जा सकता है। ऐसी दशा में पंचायतों के शैक्षणिक कार्यों की देखरेख राज्य के शिक्षा-विभाग द्वारा होनी चाहिए। कुछ अनिवार्य नगरपालिका-कार्यों के अलावा राज्य-सरकारें ग्राम-पंचायतों की कार्यक्षमता को देखकर उन्हें कुछ ऐसे दायित्व दे सकती हैं, जो उनकी अपनी ओर से स्वयं ही सोच-विचारकर सामने रखे गए हों।

१४. पंचायती न्याय—अदालती या न्याय-पंचायतों की सदस्यता और उनका कार्य ग्राम-पंचायतों से अलग होना चाहिए। न्याय-पंचायत कुछ गांवों के बीच, जिनकी जनसंख्या पांच से छः हजार तक हो और जो लगभग तीन मील की लम्बाई-चौड़ाई में आ जाते हों, होनी चाहिए। प्रत्येक ग्राम-सभा को चाहिए कि न्याय-पचायतों में काम करने के लिए भी पांच आदमियो को चुने। इस प्रकार कुछ गावों से चुने गये न्याय-पंचायतों के सदस्यों की संख्या तीस तक हो सकती है। इस तरह जो न्याय-पंचायत चुनी जाती है, उसकी पांच-पाच की पीठिका या बेंच एक-के-बाद एकवाले क्रम से मुकदमों की सुनवाई कर सकती है। जिस गाव का मामला हो, मुकद्दमा उसी गांव मे चलना चाहिए। अनावश्यक देरी से बचने के लिए पूरा मामला एक ही बैठक में खतम कर देना चाहिए। गांव में न्याय को सादा, सस्ता और फौरी करने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि न्याय-पंचायतों को दूसरी अदालतो मे व्याप्त वातावरण से बचाया जाय। इन पंचायतों में किसी वकील को पैरवी करने की आज्ञा नही होनी चाहिए। प्रत्येक गांव-सभा द्वारा पांच सदस्यो की जो न्याय-पचायत चुनी जाती है, उसमें कम-से-कम एक हरिजन व एक महिला होनी चाहिए।

१५. योजना और पचायतें— भारत मे योजना तभी सफल हो सकती है, जब उसका आधार एक-एक गाव हो। ऐसी ग्राम-आधारित योजना मे ग्रामों--पंचायतों का महत्वपूर्ण भाग होगा। इस दृष्टि से पचवर्षीय योजना में जिस ग्राम-विकास-परिषद् की चर्चा की गई है, वह ग्राम-पंचायत के इर्द-गिर्द ही होनी चाहिए। इससे ग्रामों मे एक स्थायी किस्म का नेतृत्व विकसित करने मे सहायता मिलेगी और ग्रामीण विकास के सब पहलुओं पर ध्यान दिया जा सकेगा। सामुदायिक योजनाओ तथा राष्ट्रीय विस्तार खण्डों इत्यादि के अफसरों तथा ग्रामीण स्तर के कार्यकर्ताओं को चाहिए कि वे ग्राम-पंचायतों के विकास और वृद्धि मे सहायता दें, ताकि वे राष्ट्रीय योजनाओं की पूर्ति के लिए उत्तरोत्तर दायित्व ग्रहण कर सकें।

१६. प्रशिक्षण—कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण के लिए विशेष प्रबन्ध करना चाहिए, ताकि वे विकास-कार्यक्रमो को उनके सब पहलुओ मे पूरा करने के योग्य हो जावें। इससे बेकार नौजवानों को काम भी दिया जा

सकेगा। सर्व-सेवा-संघ, गांधी-स्मारक-निधि तथा कस्तूरबा गांधी-निधि जैसी गैर-सरकारी संस्थाओं का भी सहयोग इस कार्य के लिए लेना चाहिए।

१७. कर-प्राप्ति और आय के साधन—पंचायतों को उत्तरोत्तर मालगुजारी वसूल करने का कार्य दिया जाना चाहिए और जितनी रकम वे इकट्ठी करें, उसका १५ से २५ प्रतिशत तक भाग उनको अपना दैनिक कार्य चलाने के लिए दे दिया जाना चाहिए। पंचायतों को श्रमकर लगाने का भी अधिकार दिया जाना चाहिए। जहांतक सम्भव हो, कोशिश यही करनी चाहिए कि कार्य स्वेच्छा-श्रम द्वारा—श्रमदान के रूप में—करवाया जाय। यदि कोई व्यक्ति श्रमकर के रूप में श्रम नहीं देना चाहता तो उससे श्रम द्वारा किये जानेवाले कार्य के मूल्य की दुगुनी रकम वसूल करनी चाहिए। गांव की सामान्य भूमि का प्रबन्ध गांव-पंचायत की आय का तीसरा स्रोत है। पंचायत को कुछ दिनों तक सफलतापूर्वक काम कर लेने के बाद ही निम्न प्रकार के कर लगाने का अधिकार दिया जाना चाहिए—

१. अराजियों (भूमि) पर कर

२. गाड़ी-कर

३. व्यवसाय-कर।

४. गांव में चाय इत्यादि की दुकानों पर कर।

५. हाट, बाजार, मेला, आदि की भूमि के प्रबन्ध से होनेवाली आय।

वर्तमान स्थितियों में यह नितान्त आवश्यक है कि ग्राम-पंचायत के कार्यों को चलाने के लिए राज्य द्वारा उन्हें सहायता दी जाय।

१८. सहकारिता और पंचायतें—सहकारी समितियों और ग्राम-पंचायतों के कार्यों और उनके संगठनों को एक-दूसरे से अलग रखना कई कारणों से जरूरी है। सहकारी समितियों का कार्यक्षेत्र ग्राम-पंचायतों के कार्यक्षेत्र से अधिक व्यापक है। फिर सहकारी समितियां जहां स्वेच्छा पर आधारित हैं, वहां ग्राम-पंचायतों की सदस्यता अनिवार्य है। इसके अतिरिक्त और भी कई कारण हैं। परन्तु ग्राम-पंचायतों को सहकारी समितियों के विकास के लिए जनमत का समर्थन प्राप्त करना चाहिए। इसके

अतिरिक्त समितियों को चाहिए कि वे समय-समय पर पंचायतों को अपने काम की रिपोर्ट दिया करें।

समिति के एक सदस्य श्री मालवीय कुछ बातों में इससे भिन्न मत रखते थे। मतभेद की बातों पर उनके अलग सुझाव निम्न है—

१. प्राचीन परम्परा का अनुसरण केवल सांस्कृतिक स्रोत तक ही किया जाना चाहिए, उसके आगे नहीं, क्योंकि पहले के मुकाबले में अब परिस्थितियां बहुत बदल चुकी हैं।

२. तहसील-स्तर पर तहसील व तालुक्के के नाम से नियन्त्रण करने वाली मध्यवर्ती संस्था होनी चाहिए, जिसमें छः सदस्य तहसील की ग्राम-पंचायतों से आयें और तीन जिलाधीश द्वारा तहसील अधिकारियो में से मनोनीत किये जायं।

३. न्याय-पंचायतों का समग्र निर्वाचन नही होना चाहिए। ग्राम-पंचायत के निर्वाचित सदस्यों में एक सुनिश्चित अधिकारी द्वारा न्याय-पंचायत के सदस्य नियुक्त कर दिये जाने चाहिए।

४. योजना-परिचालन तथा विकास के लिए ग्राम-पचायतों के अति-रिक्त कोई अन्य संस्था या संगठन नहीं होना चाहिए।

उपरिलिखित बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पंचायतों का बुनियादी महत्व सब स्वीकार करते है। एक-न-एक दिन यह संस्था शासन के हर पहलू की वास्तविक इकाई बनेगी। अनुभव के आधार पर यह भी स्वीकार किया जा रहा है कि विभिन्न राज्यों मे पचायतो के कानून तथा उनकी गतिविधि में भी समानता लाई जानी चाहिए।

पंचायती ढांचा नौकरशाही ढांचे से एकदम उल्टा है। इस ढांचे के स्थापित होते ही नौकरशाही का भवन गिर जायगा। यह धारणा नौकर-शाही के उस समुदाय को शंकित कर रही है, जिसने आज तक जनता के शोषण में सहायता दी है और जनता के ऊपर रौब और सत्ता कायम रखने में ही अपना अधिकार समझा है। पंचायत की धारणा शासन की धारणा को ही बदल देती है। परन्तु इस धारणा के अनुसार पंचायतों की स्थापना की पहली शर्त है एक मानसिक वातावरण का निर्माण। इसके लिए सबसे आव-श्यक कार्य है पंचायती शासन-तन्त्र में कर्मचारी समुदाय का ऊपर से लेकर

नीचे तक प्रशिक्षण। कर्मचारी समुदाय में जबतक पंचायती पद्धति के सिद्धान्तों के लिए श्रद्धा और प्रेम उत्पन्न नहीं होगा तबतक पंचायतों तथा नौकरशाही में मन-मुटाव का रहना स्वाभाविक है। राज्यों और केन्द्रीय शासन इस समस्या की ओर भी आवश्यक ध्यान दे रहे हैं।

पंचवर्षीय योजना और पंचायतें

देश के स्वतन्त्र होने से सरकार और सत्तारूढ़ दल की जिम्मेदारियां और ज्यादा बढ़ गई हैं। स्वतन्त्रता के पहले देश के नव-निर्माण की योजना बनाने के लिए कांग्रेस ने एक योजना-समिति बनाई थी। परन्तु यह काफी पुरानी बात है। इस बीच देश में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं। परिस्थितियों के बदल जाने के कारण इस योजना की वह उपयोगिता नहीं रही, जो पहले थी।

बदली हुई परिस्थितियों के अनुरूप देश का नव-निर्माण करने की कई व्यक्तियों ने अपनी-अपनी अलग योजनाएं सामने रखीं। कई ने तो उनपर अमल करना भी आरम्भ कर दिया। आचार्य विनोबा भावे की अध्यक्षता में गांधीवादी विचारकों का एक सम्मेलन वर्धा में हुआ, जिसने सर्वोदय-समाज को जन्म दिया। सम्मेलन में देश के नव-निर्माण की योजना बनाने के लिए तेरह व्यक्तियों की एक समिति बनाई गई।

३० जनवरी १९५० को इस समिति ने अपनी योजना प्रकाशित कर दी। यह योजना 'सर्वोदय-योजना' के नाम से प्रसिद्ध है। योजना अहिंसा, सहयोग और स्वावलम्बन की भावनाओं पर आधारित है। इसमें ग्रामों और ग्राम-संस्थाओं के महत्व का वास्तविक मूल्यांकन किया गया है, क्योंकि समिति की धारणा यह रही है कि भारत जैसे ग्रामों के देश का पुनरुत्थान ग्रामों और ग्रामीणों में आत्म-सम्मान और स्वावलम्बन के पुनर्विकास के बिना सम्भव नहीं है। योजना का उद्देश्य निम्न उद्धरणों से प्रकट हो जायगा—

"अहिंसात्मक समाज में उत्पादन, व्यवस्था, प्रशासनिक नियन्त्रण और राजनैतिक सत्ता का अधिकतम विकेन्द्रीकरण होना चाहिए।

"...शिखर पर शक्तियों के संग्रहण से बचने के लिए और लोकतन्त्र को क्रियात्मक बनाने के लिए ऊपर से प्रशासन की निम्न इकाईयों तथा

गैर-सरकारी अभिकरणों (एजेंसियों) को ज्यादा-से-ज्यादा शक्ति हस्तान्तरित करने की कोशिश की जा रही है।

"सरकारी सत्ता से शक्तियों के लिये जाने के बारे में हमारा रवैया उपरोक्त बातों से भिन्न है। जबकि मौजूदा व्यवस्था में सत्ता शिखर से आधार की ओर जाती है, हमारा मत है कि शक्तियां मूलतः प्रशासन की बुनियादी इकाइयों में निहित होनी चाहिए और नीचे से ऊपर की ओर जानी चाहिए।

"स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद देश में उठनेवाली ध्वंसात्मक प्रवृत्तियों से हम परिचित हैं। हम एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार के तत्त्वावधान में स्वाधीनता और राष्ट्र की अविच्छिन्नता कायम रखने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

"पर साथ-ही-साथ हम यह भी महसूस करते हैं कि एक ऐसी सरकार, जो व्यक्ति की चेतना को पूरी तरह से विकसित नहीं होने देती और आम आदमी के उपक्रम का लाभ नहीं उठाती, वह कभी भी प्रशासन की उस शक्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगी, जो उसके सामाजिक कार्यों के साधन, संस्कृति और विकास की दृष्टि से भिन्न-भिन्न करोड़ों लोगों के जागरूक होकर भाग लेने से और अधिक बढ़ जाती है। अतः हम यह महसूस करते हैं कि प्रशासन की बुनियादी इकाइयों के रूप में ग्राम-पंचायतें स्थापित की जानी चाहिए और उन्हें शासन की पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए। विभिन्न स्तरों पर सामाजिक सहयोग के लिए परोक्ष चुनाव तथा शक्तियों के प्रत्याधिकरण के द्वारा अन्य प्रादेशिक संस्थाएं बनाई जानी चाहिए। इस प्रक्रिया के द्वारा एक मीनाराकार प्रशासन-यन्त्र का निर्माण होगा, जिसमें सरकार की अधिकांश शक्तियां नीचे होंगी और नीचे से ऊपर जाते-जाते इस प्रकार कम होती जायेंगी कि ऊपर का प्रशासन न्यूनतम शक्तियोंवाला होगा।

"नीचे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, भूमि तथा विकेन्द्रित उद्योगों की समस्या का प्रबन्ध करनेवाली ग्राम-पंचायतें होंगी। ग्राम-पंचायतों द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनी गई एक प्रादेशिक परिषद् होगी और पंचायतों की प्रादेशिक परिषदों से इसी रूप में चुनी गई पंचायतों की प्रान्तीय परिषद्

होगी। प्रान्तीय पंचायत-परिषदों द्वारा परोक्ष रूप से चुनी गई एक अखिल भारतीय पंचायत-परिषद् होगी। केवल ग्राम-पंचायतों का चुनाव ही बालिग मताधिकार द्वारा होगा।

"...उपरिलिखित के अनुसार कृषि, विकेन्द्रित उद्योगों तथा सार्वजनिक मिल्कियतवाले केन्द्रित उद्योगों का आयोजन तीन विभिन्न परिषदों के नीचे होगा। पहली दो संस्थाओं की बनावट पूर्णतः विकेन्द्रित होनी चाहिए, जिसमें देहाती जनता भूमि-परिषद् की, तथा बहूद्देशीय सहकारी सभा विकेन्द्रित उद्योगों की परिषद् की बुनियादी इकाई होगी।"

यह योजना भारत के संविधान के लागू होने के पूर्व प्रकाशित करदी गई थी। इसके कई भागों और सुझावों को संविधान में स्वीकार नहीं किया गया है, तथापि संविधान के राज्य-नीति के निर्देशक सिद्धान्त काफी हद तक इस योजना के आधारभूत सुझावों के अनुसार ही हैं। भारत की पहली पंचवर्षीय योजना संविधान के उपबंधों के अंदर ही बनी है। अतः यह स्पष्ट है कि पंचवर्षीय योजना सर्वोदय-योजना के एकदम अनुकूल नहीं हो सकती। लेकिन फिर भी जहांतक ग्राम-समाज और उसकी मौलिक इकाई—ग्राम-पंचायत का सम्बन्ध है, इस योजना को सरकारी योजना में भी पर्याप्त महत्व दिया गया है। योजना को कार्यान्वित करने के लिए जो तंत्र योजना-आयोग ने प्रस्तावित किया है, उसमें इस ग्राम्य संस्था के महत्व को पूर्णतया स्वीकार कर लिया गया है। आयोग की रिपोर्ट का कुछ सम्बन्धित अंश नीचे उद्धृत किये जा रहे हैं—

"भारत में सैकड़ों वर्षों से मालगुजारी तथा पुलिस के प्रबन्ध के लिए ग्राम एक प्रारम्भिक प्रशासनिक इकाई रहा है। परन्तु सामाजिक तथा आर्थिक संस्था के रूप में यह अंग्रेजी राज में कमजोर होता गया। ज्यों-ज्यों अंग्रेजों का राज-प्रबन्ध स्थिर हुआ त्यों-त्यों ग्राम-समाज बढ़ती हुई मात्रा में सरकार पर निर्भर रहने लगा और अपने मामलों के प्रबन्ध में निर्बल होता गया। विकास-कार्यों में सरकारी विभाग सम्पूर्ण ग्राम-समाज से सामूहिक रूप से सम्पर्क न रखकर गांव के अलग-अलग व्यक्तियों से सीधा सम्पर्क रखते थे। अतः तीस वर्ष का विकास-कार्य जनता के एक बहुत थोड़े अंश पर ही प्रभाव डाल सका।

"बहुत-से राज्यों में ग्राम-पंचायतों के निर्माण के कानून बन चुके हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् बहुत-से राज्यों ने इन कानूनों को इस उद्देश्य से संशोधित किया है कि पंचायतों का विकास शीघ्रता से हो और उनका कार्यक्षेत्र विस्तृत किया जाय। बहुत-से विलीन हुए क्षेत्रों में भी इसी तरह के कार्य शुरू करने की आवश्यकता है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि भारत में पंचायत-सम्बन्धी कानून पर्याप्त मात्रा में विचार की स्वतन्त्रता तथा विकास के लिए तीव्र इच्छा के द्योतक हैं, जिसमें यह ध्येय दीखता है कि ग्राम को राष्ट्रीय संगठन में एक आवश्यक मौलिक इकाई बनाया जाय, ताकि संविधान के इस निर्देश को कार्य रूप में परिणत किया जा सके और गांवों में पंचायतें बनाकर उन्हे ऐसे अधिकार दिये जायं कि वे स्वायत्त शासन की इकाई के रूप में काम कर सकें। इस सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप देने में कुछ राज्यों ने काफी सफलता प्राप्त की है, परन्तु सामूहिक तौर पर देश में अभी तक बहुत-कुछ करने को बाकी है। हमारी राय यह है कि राज्यों में आगे के कुछ निश्चित समय के भीतर ग्रामों अथवा ग्राम-समूहों से लिए पंचायतें बनाने का कार्य होना चाहिए।

"पंचायतों के कार्यक्रम के अन्तर्गत बहुत-से नागरिकता-सम्बन्धी तथा आर्थिक काम भी लिये जा सकते है। इसके साथ-साथ पंचायतें न्याय-सम्बन्धी कार्य भी करती है। परन्तु तथ्य यह है कि बहुत कम पंचायतें ये सभी काम करती हैं। अधिकतर पंचायतों के कार्यों पर स्थानीय दलबन्दी, अर्थाभाव तथा निर्देशन की कमी स्पष्ट दिखाई देती है। पंचायतों ने गांवों में सामाजिक जागृति लाने में भी सहायता दी है। परन्तु ग्राम्य जीवन को उन्नत करने के कार्य में पर्याप्त सफलता प्राप्त नहीं हुई है। इसके अपवाद तो अवश्य हो सकते है, परन्तु यह ठीक है कि पंचायतें ग्राम-पुनर्गठन के लिए, जो इनका वास्तविक ध्येय था, सफल तन्त्र न बन सकीं। हमारा विश्वास है कि पंचायतें अपने नागरिक कर्तव्य सफलतापूर्वक निभाने में तभी योग्य होंगी कि जब उन्हें विकास-कार्य से सम्बन्धित किया जायगा, और उस कार्य में ग्राम-पंचायतों को प्रभावशाली हिस्सा दिया जायगा। जबतक ग्राम-संस्था ग्रामीण साधनों को विकसित करने का उत्तरदायित्व

नहीं संभालती तबतक ग्रामीण जीवन पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता, क्योंकि वही ग्राम-संस्था, जो ग्रामीण जनता के सामूहिक हित का प्रतिनिधान करती हो, आवश्यक नेतृत्व उपलब्ध करा सकती है। राजकीय संस्थाओं की प्रत्येक ग्रामीण तक अलग-अलग पहुंच नहीं हो सकती, इसलिए उनकी पहुंच मुख्यत: इन्हीं संस्थाओं पर निर्भर करती है।

"जहांपर पंचायत और सहकारी सभाएं दोनों हों, वहांपर ग्रामीण जीवन में इन दोनों के कर्त्तव्यों का नियमित रूप से वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। बहुत-सी ऋण-सम्बन्धी सहकारी सभाएं आजकल बहुद्देश्यीय सभाओं में परिवर्तित की जा रही हैं, परन्तु बहुद्देश्यीय कार्य अभी तक पूर्ण रूप से विकसित नहीं हुए हैं। सहकारी सभा के कार्य इन उद्देश्यों के अधीन चलाये जाते हैं और ये उसके सदस्यों तक ही सीमित रहते हैं। सहकारिता के विकास के साथ-साथ यह आन्दोलन ग्रामीणों का अधिकाधिक प्रतिनिधि होता जायगा। दूसरी ओर पंचायतों के सम्बन्ध में पहले से ही यह धारणा है कि वे गांव के समस्त समाज की प्रतिनिधि होंगी, जिनमें गांव के वे लोग भी शामिल होंगे, जो कृषि-कार्य नहीं करते। परम्परा तथा कानून के अधीन पंचायत के अधिकार जनता के सभी अंगों की मांगों को पूरा करने के लिए काफी विस्तृत हैं। यदि ग्राम-पंचायतों को विकास-योजनाओं के साथ अधिक घनिष्टता से सम्बन्धि किया जाय तो ग्रामीण नेतृत्व अधिक सफलता से विकसित होगा और सहकारी कार्य सुदृढ़ होगा।

"वर्तमान कानूनों के अधीन पंचायतों को पहले से ही कई अधिकार प्राप्त हैं। विभिन्न कार्यों की जिम्मेदारी निभाने के लिए राज्य सरकार उन्हें उपयुक्त अधिकार दे सकती है, जैसे—

१. गांव के लिए पैदावार का कार्यक्रम बनाना और इसे चलाने तथा आर्थिक सहायता देने के लिए बजट तैयार करना।
२. सरकारी संस्थाओं द्वारा न दी जानेवाली सहायता।
३. ग्राम में उपज को बढ़ाने के लिए कृषि के निम्नतर स्तरों का संरक्षण; बंजर भूमि को काश्त में लाना तथा जिस भूमि का मालिक उसकी काश्त न करता हो उसकी काश्त का प्रबन्ध।
४. सामाजिक कार्यों के लिए स्वेच्छा से श्रम प्राप्त करने का प्रबन्ध करना।

५. वर्तमान कानून के अनुसार गांव में खेती और दूसरे कामों में सहकारिता को प्रोत्साहन देना।
६. भूमि-सुधार-सम्बन्धी कानूनों को क्रियान्वित करने में सहायता देना।

"अपनी समस्याओं के बारे में जानकारी प्राप्त करके ग्राम-समाज उन्हें एकत्रित होकर हल कर सकता है। इसलिए गांव के नेताओं और प्रचारकों का पहला लक्ष्य यह होना चाहिए कि ग्राम-समाज के सभी वर्गों के भले तथा हित की जिम्मेदारी लें और उपलब्ध साधनों को प्रयोग मे लाने की कोशिश करें।

"ग्राम के विकास-कार्यक्रम के लिए पंचायत-कानून में ऐसे प्रावधान होने चाहिए कि राज्य सरकार कुछ और व्यक्तियों को नियुक्त कर सके ताकि पंचायतें ग्राम-विकास-संस्था की तरह काम कर सके।

"ग्राम-विकास-संस्था धीरे-धीरे स्थानीय सहकारी सभा तथा कृषकों द्वारा माने हुए समस्त ग्राम की उपज बढ़ाने के कार्यक्रम को चलाने योग्य हो जायगी। देश के हरेक हिस्से मे हालात भिन्न-भिन्न हैं। अतः यह सुझाव साधारण तथा मोटे तौर पर ही दिये गए है।

"भिन्न-भिन्न राज्यों की विधान-सभाओं ने कई कर लगाने के कानून बनाये है, उदाहरण के लिए, भूमि और भवन-सरीखी अचल सम्पत्ति पर कर, गाड़ी-कर, मृत्यु-कर, न्याय-सम्बन्धी जुर्माने, आदि। राज्य सरकार और जिला बोर्ड की ओर से आर्थिक सहायता दिये जाने के लिए भी उपबंध हैं। कुछ राज्यों ने ग्राम-पंचायतों को श्रम के रूप में कर लेने के अधिकार दिये हैं। कानून के अनुसार हरेक मनुष्य को वर्ष में नियत अवधि के लिए काम करना पड़ता है। कुछ राज्यों में जो मनुष्य श्रम के रूप में सहायता न कर सके, उसके लिए यह व्यवस्था भी है कि वह एवजी काम या एवज में सहायता दे। निस्सन्देह कानून इस श्रम-प्राप्ति में सहायक हो सकता है, परन्तु ग्राम-विकास-कार्यों में लोगों का सहयोग अधिक मात्रा में तभी काम में आ सकता है कि जब ग्राम-पंचायतें ग्राम की दशा को उन्नत करने और सभी कामों को सजीव करने में स्थानीय लोगों को उत्साहित करें। पंचवर्षीय योजना में इस बात की व्यवस्था है।

"स्थानीय विशानुसन्धान समिति का सुझाव है कि मालगुजारी का २५ प्रतिशत भाग पंचायतों को दिया जाना चाहिए। हम यह समझते हैं कि ग्राम-पंचायत को एक मौलिक राशि दी जानी चाहिए, ताकि वह कुछ थोड़ी ही कोशिश करके गांववालों की इतनी सेवा कर सके, जिससे कि वह उनकी आर्थिक दशा को उन्नत कर सके। यह आवश्यक है कि जब राज्य सरकारें अपनी योजनाएं बनाये तो वे मालगुजारी का पूरा ख्याल रखें। यदि इसका कुछ हिस्सा पंचायतों को दे दिया जाय तो राज्य सरकार की योजना उससे प्रभावित होगी, अच्छा यह होगा कि हर राज्य मालगुजारी पर थोड़ा-सा अतिरिक्त कर या अधिकर (सेस) लगा दे और वह कर पंचायतों को दिया जाय। एक अतिरिक्त तरीका यह हो सकता है कि राज्य-पंचायतों के सदस्यों और कर्मचारियों के प्रशिक्षण की ओर खास ध्यान दे, ताकि पंचायतें सामाजिक शिक्षा का केन्द्र बन सकें। राज्यों को पंचायतों की उन्नति के इस ढंग का अच्छी प्रकार से अध्ययन करना चाहिए, ताकि हर राज्य एक-दूसरे के अनुभव से लाभ उठा सके।

"वैसे तो देश के अधिकांश भागों में गांव ही सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक संगठन की प्रारम्भिक इकाई है, पर फिर भी कुछ खास कार्यों के लिए इकाई अधिक बड़ी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए पंचायत तथा सहकारी विभागों के वैतनिक कर्मचारियों तथा सप्लाई के लिए अधिक बड़ी इकाई अधिक उपयोगी रहेगी। इकाई कितनी बड़ी हो, यह स्थान विशेष की परिस्थितियों, बचत तथा कार्यकुशलता आदि पर निर्भर होना चाहिए।

"एक विकास-क्षेत्र का सहकारी कृषि, पंचायत तथा पशुओं की देख-भाल का तंत्र सामान्य होना चाहिए। सामुदायिक योजनाओं के संचालनार्थ विकास-क्षेत्र की उन्नति के लिए प्रसार-अधिकारी न होकर एक विकास टीम होनी चाहिए। इसके लिए कृषि, पशु-चिकित्सालय, सहकारी आन्दोलन, पंचायत, घरेलू उद्योग, स्वास्थ्य और शिक्षा-विभागों की योजनाओं को चालू करने के लिए साझी एजेन्सी होनी चाहिए। इन विभागों के कर्मचारियों को संगठित होकर काम करना चाहिए। मालगुजारी-विभाग

के कर्मचारियों को भी इनके साथ ही मिलकर काम करना चाहिए। कुछ राज्यों में पंचायत-विभाग सहकारी विभाग के अधीन है। ऐसा करना बहुत लाभदायक है। ग्राम-स्तर पर सहकारी तथा पंचायत-विभाग के कर्मचारी सांझे होने चाहिए।

"हर राज्य को अपनी आवश्यकता के अनुसार अपने विकास-संगठन का नमूना बनाना होगा। इसमें इन बातों का ध्यान रखना चाहिए—

(१) बहुमुखी काम करनेवाला ग्राम-सेवक ही एक गांव में विकास-विभाग का प्रतिनिधि हो। (२) विकास-क्षेत्र में ग्राम-सेवक विकास-अधिकारी, एस० डी० ओ० तथा माल-अफसरों के साथ मिलकर काम करें। (३) विकास के सब काम संगठित रूप से करने के लिए कलेक्टरों को प्रसार-कार्य-सम्बन्धी अधिकार दिये जायं। इसमें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किये जा सकते है। यह सुझाव कलेक्टर पर बड़ी जिम्मेदारी डालते है। इसलिए उसे एक सहायक दिया जाना चाहिए, जो इसकी ओर अधिक ध्यान दे सके।

"विकास के काम में, और वस्तुत: सरकार के समूचे कार्य मे, हरेक स्थान पर सरकारी अफसरों को जनता के साथ मिलकर काम करना चाहिए। यह बड़ी आवश्यक बात है, क्योंकि विकास-क्षेत्र मे लाये गए शासन-सम्बन्धी परिवर्तन तभी सफल होंगे कि जब सरकार, अफसर और जनता सहयोग तथा भाईचारे की भावना से प्रेरित होकर काम करेंगे। साथ ही ऊपर से लेकर नीचे तक सभी कर्मचारियों को अपने विचार प्रकट करने और सुझाव देने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। काम करने का अवसर स्त्रियों और पुरुषों दोनों को दिया जाना चाहिए। ग्राम-सेवक के पद पर ऐसे ही उम्मीदवारों को रखना चाहिए, जिनको विकास-कार्य का अनुभव हो और जिनमें सेवा-भाव तथा लगन हो।

लोकतान्त्रिक आयोजन की सफलता जनता के सहयोग पर निर्भर होती है। इस सहयोग को प्राप्त करने तथा उसे उचित रूप में संगठित करने के लिए जनता की संस्थाओं का होना आवश्यक है। यह अनुभव-सिद्ध बात है कि जहां-जहां योजना-पूर्ति का कार्य उपयुक्त पंचायतों के सुपुर्द किया गया है, वहां वह बहुत सफल रहा है। यह सफलता इसलिए

श्रौर भी अधिक मूल्यवान है कि जनता उस सफलता को अपनी सफलता समझती है। इससे उसमें आत्म-विश्वास उत्पन्न होता है। अकेले उत्तर प्रदेश में १९५३-५४ में पंचायतों द्वारा लगभग साढ़े आठ करोड़ रुपये के मूल्य का विकास-कार्य किया गया था। यदि सारे देश में पंचायतों द्वारा हुए कार्य का मूल्यांकन किया जाय तो वह अरबों रुपये का होगा। इससे पता लगता है कि इस संस्था के ठीक ढंग से परिचालित होने से किस प्रकार करोड़ों नर-नारी देश के नव-निर्माण के कार्य में जुटकर अमूल्य कार्य कर सकते हैं। सन् १९५५ में सामूहिक योजनाओं और राष्ट्रीय विस्तार-सेवा के कामकाज पर योजना-आयोग की समीक्षा-समिति की दूसरी रिपोर्ट में कहा गया है—

"पंचायतों पर प्रशासन और राष्ट्रीय विस्तार-कार्य की अधिकाधिक जिम्मेदारी डाली जानी चाहिए। इसीसे लोकतन्त्र को बल मिलेगा और सामुदायिक योजना का उद्देश्य सफल होगा।... योजना-सलाहकार-समितियां उपयोगी सिद्ध हुई हैं, यह काम स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की कार्यकारिणी समितियों से लेना चाहिए।... पंचायतों और सहकारी समितियों के ठीक संगठन के बिना राष्ट्रीय विस्तार काम स्वाभाविक रूप से चलना और बढ़ना सम्भव नहीं है।"

इन बातों को ध्यान में रखते हुए द्वितीय पंचवर्षीय योजना के बनाने के सम्बन्ध में प्रधान मन्त्री का यह निर्देश उचित ही था कि उसका आधार गांव है। भारत के नव-निर्माण तथा विकास के कार्य में पंचायतों की कितनी उपादेयता है और इनपर इस सम्बन्ध में कितना उत्तरदायित्व पड़ता है, यह ऊपर की पंक्तियों से सिद्ध हो जाता है। पंचायत-राज की धारणा का मौलिक ध्येय वस्तुतः यही है कि ग्रामीण आत्म-विश्वास की ज्योति से जागृत होकर स्वावलम्बन द्वारा अपना विकास करें। ग्रामों के स्वावलम्बी होने से ही योजना का पहला कदम पूरा होता है। फिर ग्रामीणों के जीवन का स्तर ऊंचा होगा। उनके उत्पादन के साथ-साथ उनकी क्रय-शक्ति बढ़ेगी और इसी तारतम्य से हम उन्नति की ओर अग्रसर होंगे। धीरे-धीरे केन्द्रीय शासन का कार्यभार घटता जायगा। लोग एक नये जीवन, नये अनुशासन, नये उत्साह और नई शक्ति से सम्पन्न होकर शासन की बहुत-

सी जिम्मेदारियां सम्भाल लेंगे। शासन-शक्ति वस्तुतः जनता में पहुंचकर उससे ही क्रमानुसार ऊपर को एक वृक्ष की भांति बढ़ेगी। स्वावलम्बन से जनता स्वशासन की ओर स्नेह तथा सद्भावना के वातावरण में बढ़ती हुई चिर-वांछित शासन-निरपेक्ष समाज के आदर्श के समीपतम सोपान तक पहुंच सकेगी।

पंचायतों की प्रगति के आंकड़े

प्रथम पंचवर्षीय योजना में ग्राम-पंचायतों की संख्या ८२,०८७ से बढ़कर १,१७,५९३ हो गई। और द्वितीय योजना के लिए यह संख्या २,४४,५६४ तक बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया, और सुझाव दिया गया कि लगभग १००० जनसंख्या के लिए एक ग्राम की सीमा रखी जाकर उसके लिए ग्राम-पंचायत बनाई जाय। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि पंचायतों के कर्त्तव्य तथा अधिकार क्या हों? द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल में पंचायतों की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। पंचायतों की प्रगति तथा इनमें सुधारों के प्रश्नों पर विचार करने के लिए विभिन्न राज्यों के स्वायत्त-शासन-मन्त्रियों के सम्मेलनों की परिपाटी कायम की गई। प्रथम सम्मेलन २७ जून, १९५४ को शिमला में हुआ, दूसरा १९५५ में शिमला में हुआ, तृतीय सितम्बर १९५७ में श्रीनगर में, चतुर्थ अक्तूबर १९५८ में दिल्ली में, पंचम अक्तूबर १९५९ में हैदराबाद में और छठा नवम्बर १९६० में बंगलौर में हुआ।

हर सम्मेलन में गत वर्ष की प्रगति पर विचार किया गया और आगे के लिए सुझाव दिये जाते रहे। इसी काल में वित्त-मन्त्री के ५८-५९ के वित्तीय भाषण में योजना के व्यय में सावधानी तथा किफायत की मन्त्रणा पर राष्ट्रीय विकास-मण्डल ने एक योजना-कार्य-समिति का निर्माण किया। इस समिति के अध्यक्ष स्वराष्ट्र मन्त्री, उपाध्यक्ष वित्त-मन्त्री तथा सदस्य दो राज्यों के मुख्य मन्त्री, जिनका मनोनीतिकरण प्रधान मन्त्री करें रखे गये। इस समिति ने एक अध्ययन-दल का निर्माण किया, जिनमें अध्यक्ष श्री बलवन्तराय मेहता नियुक्त हुए। इनको सामूहिक विकास तथा राष्ट्रीय प्रसार के अध्ययन करने का काम सौंपा गया। जो प्रश्न इस दल को अध्ययन हेतु दिये गए, उनमें एक यह भी था कि विकास-कार्य को तेज, तथा और

अधिक सफल बनाने के लिए किस प्रकार का संगठन विकसित किया जाय। इस दल ने एक सुझाव दिया—लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण का। इससे उनका तात्पर्य था कि शक्ति का ही विकेन्द्रीकरण किया जाय, और ग्राम-विकास-खण्ड तथा जिला-स्तर पर लोकतन्त्री संस्थाओं को पूर्ण शक्ति प्राप्त हो। इस दल की रिपोर्ट श्री बलवन्तराय मेहता कमेटी रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है और आज पंचायतों के संगठन के विषय में यह मैगनाकार्टा का स्थान रखती है। इस रिपोर्ट का विशिष्ट विवरण सम्बन्धित अगले अध्याय में दिया जायगा। यहां इतना ही लिखना पर्याप्त है कि इस दल ने अप्रत्यक्ष चुनाव द्वारा ग्राम-पंचायतों से खण्ड-विकास समितियों तथा जिला-परिषदों का निर्माण प्रस्तावित किया है और विकास-सम्बन्धी समस्त बजट इनके हवाले किया जाना है। इस दल के प्रस्ताव भारत-सरकार ने स्वीकार कर लिये और राजस्थान तथा आन्ध्र प्रदेश ने इस दिशा में सर्वप्रथम कदम उठाया। धीरे-धीरे सभी राज्य इसे अपना रहे हैं। यहां इस बात की ओर संकेत करना अनुचित न होगा कि वस्तुतः तृस्तरीय पंचायत-राज-शैली का विचार सर्वप्रथम हिमाचल प्रदेश में पैदा हुआ, जैसा कि उनके १९५३ के अधिनियम से स्पष्ट है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना-काल में पंचायतों के स्वरूप तथा इनके कार्यों में अपूर्व विकास हुआ है। जो पंचायतें प्रारम्भ में केवल सलाह देने-वाली समितियां समझी जाती थीं और आमतौर पर मनोनीत होती थीं, आज हर राज्य में वयस्क मतदान द्वारा चुनी जाती हैं और शक्ति-सम्पन्न हैं। स्वायत्त-शासन-मन्त्री-सम्मेलनों के सुझाव सभी राज्यों ने स्वीकार किये हैं और भारत के सभी राज्यों का इस विषय पर मतैक्य है कि पंचा-यतों को अधिक-से-अधिक अधिकार दिये जायं, इनको दलबन्दी से मुक्त रखा जाय, और इन्हें ही विकास-कार्यों के सम्पादन का भार सौंपा जाय। ३१ मार्च १९६१ के आंकड़ों के अनुसार पंचायतों की प्रगति तथा विकास का क्रम इस प्रकार है—

कार्य	३० सितम्बर, १९५७	३१ मार्च, १९५९	३१ मार्च, १९६०	३१ मार्च, १९६१	३१ मार्च, १९६२
पंचायतों की संख्या	१,६०,३६९	१,७७,६३३	१,७९,९०६	१,९३,५२६	२,०३,०४९
ग्राम जो पंचायताधीन आये	४,१०,०००	४,६१,०००	४,८३,०००	५,०२,०००	५,३३,०००
ग्रामीण जनता, जो क्षेत्र में आई (लाखों में)	१,९७३	२,१६८	२,५६९	२,७०१	२,८२१
क्षेत्र में आये ग्राम कुल का प्रतिशत	७५	८२	८३	८९	९४
क्षेत्र में आनेवाली ग्रामीण जनता—कुल के प्रतिशत में	७५	८२	८८	९२	९५
प्रति पंचायत-ग्रामों की औसत संख्या	२.५	२.६	२.७	२.९	२.६
प्रति पंचायत और जनसंख्या	१,२११	१,३४२	१,४२८	१,३९६	१,३९३

अब सभी राज्यों में ग्राम-पंचायतों के सचिव हैं। काश्मीर को छोड़कर सब जगह ये वैतनिक हैं। समस्त सामुदायिक विकास-कार्य पंचायतों द्वारा सम्पादित होते हैं। पंचायतों ने कार्य को आमतौर पर सुचारु रूप से सम्पादित करके अपनी पात्रता तथा आवश्यकता सिद्ध कर दी है। न्याय की दिशा में भी पंचायतों ने अपूर्व प्रगति की है।

तृतीय पंचवर्षीय योजना में त्रिस्तरीय पंचायत-राज को पद्धति के स्वरूप में स्वीकार कर लिया है और इसी भूमिका में जिला-स्तरीय विभागाध्यक्षों के कर्तव्यों के सम्बन्ध में सुझाव दिये हैं तथा कृषि-उत्पादन की ओर विशेष ध्यान देने की सलाह दी है।

जुलाई १९६१ में हैदराबाद में विकास-मन्त्रियों तथा विकासयुक्तों के सम्मेलन में भी पंचायतों के विषय पर विशेष विचार-विमर्श किया गया। इन समस्त सुझावों का इस स्थल पर स्थानाभाव से उद्धृत करना सम्भव नहीं। इतना निष्कर्ष अवश्य निकाला जा सकता है कि धीरे-धीरे पूज्य बापू के विचारानुकूल पंचायत-राज देश में क्रियान्वित हो रहा है और इसीसे भारत का विकास तथा राष्ट्रीयता सुदृढ़ होकर सारे विश्व में सर्वोदयी विचारधारा पनपेगी। इस मार्ग में जो सप्रभाव योग सामुदायिक मंत्री श्री एस. के. दे. ने दिया है, वह इतिहास में स्वरणाक्षरों से लिखा जायगा। पंचायतें अभी शैशवावस्था में हैं, परन्तु जितना काम इन्होंने किया है और श्रमदान दिया है, वह सराहनीय तथा आशाजनक कहा जा सकता है।

: ५ :

विभिन्न राज्यों में पंचायतें

स्वतन्त्रता के पश्चात सबसे प्रथम तो जो प्रान्त थे वे राज्य बने। देशी रियासतों का विलय हुआ और संविधान ने देश को क, ख तथा ग श्रेणी के राज्यों में विभक्त किया। फिर राज्य-पुनर्गठन-आयोग का निर्माण हुआ। इस आयोग के सुझावों के अनुसार राज्यों का पुनर्गठन हुआ और केवल दो श्रेणियां रह गई—राज्य और केन्द्र-प्रशासित संघीय क्षेत्र। इसके पश्चात बम्बई राज्य, महाराष्ट्र तथा गुजरात में विभक्त हुआ। इस समय देश में १५ राज्य तथा ६ केन्द्र-प्रशासित संघीय क्षेत्र हैं। नागालैण्ड एक और इकाई बनी। गोआ भी भारत में सम्मिलित हो चुका है। इस पुनर्गठन के फलस्वरूप बनीं शासन की इकाईयों के अनुसार ही अब पंचायतों की वर्तमान स्थिति का वर्णन उपयुक्त होगा।

असम

ग्राम्य जन-संख्या	८,६२,१००
पचायतों की संख्या (यह केवल मैदानी इलाकों में है)	२,५५०
ग्राम जो पंचायतों की परिधि में आये है	१७,११७
पंचायती क्षेत्र की औसत आबादी	२,६४६
आंचलिक पंचायतों की संख्या	१२०
मोहकुम परिषदों की संख्या	१६

सुरक्षित वनों तथा चाय बागानों को छोड़कर सब ग्राम तथा जन-संख्या पंचायतों की परिधि में आ चुके हैं। इस राज्य ने सन् १९[illegible] में नया अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार इसने त्रि-स्तरीय विकेन्द्रित लोकतन्त्री पद्धति को अपनाया है। ग्राम-स्तर पर सब वयस्कों की गांव-सभा बनती है। विकास-खण्ड-स्तर पर आंचलिक [illegible]

होती है और सब-डिविजन स्तर मोहकुम परिषद् होता है। गांव-सभा ग्यारह से चौदह सदस्यों की पंचायत चुनती है। एक महिला, एक अनुसूचित, तथा एक आदिवासी के लिए स्थान रखे जाते हैं। यदि ये चुने न जायं तो शेष सदस्यों द्वारा सहयोजित कर लिये जाते हैं। आंचलिक पंचायत के लिए चुनाव भी वयस्क मत प्रदान द्वारा होता है। ये सदस्य गांव-पंचायत के पद के नाते सदस्य बन जाते हैं।

स्थानीय विधान-सभा-सदस्य भी आंचलिक पंचायत के सदस्य होते हैं। परन्तु उन्हें मताधिकार नहीं होता। मोहकुम परिषद् में आंचलिक पंचायतों के प्रधान स्थानीय विधान-सभा तथा संसद-सदस्य रहते हैं। इनके साथ म्यूनिसिपल कमेटियों के, नगरपालिकाओं तथा स्कूल बोर्डों के प्रधान भी रहते हैं। परिषद् अनुसूचित तथा आदिम जातियों का एक प्रतिनिधि मनोनीत कर लेता है। जिलाधीश को इस तृस्तरीय संगठन से पृथक् रखा जाता है। विकास-खण्डाधिकारी आंचलिक पंचायत के अधीन सचिव होता है। जो सरकारी कर्मचारी सदस्य रखे जाते हैं, उनको मताधिकार नहीं होता।

कार्य तथा कर्त्तव्य—गांव-पंचायत स्वावलम्बी धारणानुसार बनाई जाती है। और वह ग्राम की स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्राम-रक्षा, कृषि, वन-संरक्षण, पशु-वंश, आदि से सम्बन्धित आवश्यकताओं का प्रबन्ध करती है। अन्य कार्यों के साथ सांझी भूमि, चरागाहों सिचाई के साधनों, शिक्षा-प्रसार का भी प्रबन्ध करती है। मिडिल स्कूलों का प्रबन्ध इनके अधीन रहता है।

आंचलिक पंचायत क्षेत्र के समस्त विकास-कार्यों का भार वहन करती है। इनमें वे कार्य नहीं पड़ते, जो गांव-पंचायत के अधीन आते हैं। यह गांव-पंचायतों के बजट का अनुमोदन करती है और उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करती है। मोहकुम परिषद् आंचलिक पंचायतों के बजट का अनुमोदन करता है तथा उनके कार्यों का पर्यवेक्षण करता है। यह शासन को आंचलिक पंचायतों को दिये जानेवाले वित्त के वितरण में सलाह देता है, और जिला-योजनाएं बनाता है।

आय—गांव तथा आंचलिक पचायतों को भूराजस्व का भाग मिलता है—१५ प्रतिशत गांव-पंचायतों को औरत १० प्रतिशत आंचलिक पंचा-

यतों को। यह निर्धारित कर भी लगा सकती है। सरकार से तीनों स्तरों को अनुदान भी मिलता है।

आठ खण्डों की पंचायतों ने ग्रामीण बीमा योजनाधीन भी कार्यारम्भ कर दिया है।

आन्ध्र

ग्रामीण जनसंख्या	२५,८२२ (हजारों में)
पंचायतों की संख्या	१४,५४८
ग्रामीण जन-संख्या का अनुपात, जिनमें पंचायतें बन चुकी हैं	१०० प्रतिशत
ग्रामो की संख्या, जहां पंचायतें बन चुकी है	२६,४५०
ग्रामों का अनुपात, जहां पंचायतें काम कर रही हैं।	१०० प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जनसंख्या	१,७६०
पंचायत-समितियों की संख्या	२७०
जिला-परिषदों की संख्या	२०

इस प्रदेश में मद्रास पंचायत अधिनियम १९५० के अधीन भूतपूर्व मद्रास क्षेत्र और हैदराबाद ग्राम-पंचायत और अधिनियम १९५६ के अनुसार राज्य के अन्य भागों में पंचायतें काम कर रही हैं। इन दोनों अधिनियमों में उचित संशोधन और एकीकरण करने के लिए आवश्यक कानून बनाये जा रहे है।

आन्ध्र में तिखण्डे ढांचे के आधार पर लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त को स्वीकार करके उसे व्यावहारिक रूप देने के लिए आन्ध्र राज्य पंचायत समिति और जिला परिषद् अधिनियम १९५९ पास किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत १ नवम्बर, १९५९ से [illegible] पंचायत-समितियो और २० जिला-परिषदों की स्थापना की गई। इससे पहले लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण की दिशा में ब्लाक और जिला के स्तर पर सरकारी अध्यादेश (आर्डीनेन्स) द्वारा पंचायत समितियों और जिला-परिषदों की स्थापना करके आवश्यक प्रयोग किया गया था।

ग्राम-पंचायत, पंचायत-समिति और जिला-परिषद् का एक दूसरे से

परस्पर जुड़ाव है। ग्राम-पंचायत का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली पर होता है, जबकि अन्य दो पंचायतों का अप्रत्यक्ष रूप से। ग्राम-सभा को कानूनी मान्यता अभी नहीं दी गई है।

इन तीनों प्रकार की पंचायतों में स्त्रियों, हरिजनों, और आदिम जातियों के लिए स्थान सुरक्षित किये गए हैं। विधान-सभा और विधान-परिषदों के सदस्य पंचायत-समिति के होते हैं। किन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं है। विधान-सभा के सदस्य और लोक-सभा के सदस्य जिला-परिषद् के पूर्ण सदस्य हैं। चुनाव गुप्त ढंग से कराया जाता है और सुरक्षित जगहें मुख्य संस्था में से नियुक्त सदस्यों के द्वारा भरी जाती हैं।

पंचायत-समितियां और जिला-परिषदों में उप-समितियों की स्थापना की व्यवस्था है। इन उप-समितियों में से एक उप-समिति को स्त्री, बच्चों और समाज के अशिक्षित लोगों की सहायता का काम सौंपा गया है।

जिलाधीश जिला-परिषद् का सदस्य होता है और सभी समितियों का चेयरमैन भी। जिला-स्तर के कुछ अधिकारी शासन द्वारा नामांकित किये जाने पर जिला-परिषद् के सदस्य होते हैं, किन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं रहता।

विकास-खण्ड-अधिकारी अपने समस्त कर्मचारियों के साथ पंचायत-समिति के सीधे प्रशासनिक नियन्त्रण में काम करते हैं। विकास-अधिकारी समिति का मुख्य कार्यवाहक अधिकारी होता है।

कार्य तथा कर्त्तव्य—ग्राम-स्तर पर विकास-कार्यों का उत्तरदायित्व ग्राम-पंचायतों को सौंपा गया है। प्राइमरी शिक्षा का प्रोत्साहन, लघु गृह-उद्योग-धन्धे, कृषि का प्रसार और विस्तार सहकारी खेती और भूमि-सुधार तथा प्रबन्ध, माता तथा शिशु-कल्याण केन्द्रों की स्थापना और ग्राम-रक्षा अर्थात् गांव में चौकी और पहरे का प्रबन्ध तथा कृषि-उत्पादन-योजनाओं की स्थापना और उन्हें कार्यान्वित करने आदि कार्य पंचायतों को सौंपे गये हैं।

विकास-खण्ड-स्तर पर समस्त विभागों के विकास-कार्य, सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाओं का निर्माण और उन्हें उचित ढंग से रखना तथा

पिछड़े वर्ग से सम्बन्धित योजनाओं का पूरा करना यह समस्त कार्य पंचायत-समितियों को सौंपे गये हैं। प्राइमरी शिक्षा, पंचायत-समिति के अधीन तथा सेकेण्डरी तथा हायर सेकेण्डरी पाठशालाएं जिला-परिषदों को सौंप दी गई हैं। भूतपूर्व जिला बोर्डों के कर्तव्य और अधिकार तथा सम्पत्ति और ऋण इन समितियां और परिषदों को दे दिये गए हैं।

जिला-परिषद्, पंचायत-समितियों के ऊपर देखरेख करनेवाली संस्था है। विभिन्न समितियों में एकरूपता तथा नियोजन-सम्बन्धी कार्य जिला-परिषदों को दिये गए हैं। जिला-परिषद् पंचायत-समितियों के बजट को उचित निरीक्षण के पश्चात पास करती है। शासन से प्राप्त अनुदान में से विभिन्न पंचायतों में धन का वितरण भी जिला-परिषदों का काम है। जिन क्षेत्रों में पंचायत-समितियों की स्थापना नहीं हुई हो, उन क्षेत्रों के लिए जिला-परिषद् पंचायत-समितियों के समस्त कार्य और कर्त्तव्य को पूरा करती है। उच्च तथा औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध और प्रसार भी जिला-परिषदों के अधीन है।

आर्थिक साधन— पंचायतों के आय का मुख्य साधन शासन से प्राप्त होनेवाला अनुदान है। इसके अतिरिक्त गृहकर, पेशा-कर और कुछ वस्तुओं के हस्तांतरण पर लगाई गई ड्यूटी से प्राप्त आय भी है। पंचायत को स्वयं बहुत-से कर लगाने के अधिकार हैं।

सभी प्रकार की शासकीय सहायता पंचायत-समितियों के द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में दी जाती है। भूतपूर्व जिला-बोर्डों के कर के सम्पूर्ण अधिकार पंचायत-समितियों को दिये गए हैं।

पंचायत-समितियां और उनकी उप-समितियों तथा जिला-परिषदों का एक निर्धारित सीमा तक वित्तीय मामलों में स्वीकृति देने का अधिकार प्राप्त है।

राज्य सरकार ने पंचायत समीकरण निधि की स्थापना की है, जिससे शासकीय साधनों से प्राप्त आय का ०.२५ नये पैसे प्रति व्यक्ति के हिसाब से उन पंचायतों को इस प्रकार की धन प्राप्त करनेवाली योजनाओं के लिए दिया जाता है, जैसे सामूहिक [illegible], बगीचा आदि का लगाया जाना। यह सहायता ऋण और अनुदान दोनों रूपों में दी जाती है

अन्य विशेषताएं—ग्राम-पंचायतों का बजट पंचायत-समितियों द्वारा निरीक्षण के पश्चात निर्धारित अवधि के अन्दर उचित कार्यवाही के हेतु निर्धारित अधिकारी के पास भेज दिया जाता है। पंचायत-समिति का बजट जिला-परिषद् द्वारा पास किया जाता है।

उड़ीसा

ग्रामीण जनसंख्या	१४०.५२ लाख
पचायतों की संख्या	२३४२
ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत, जहां पंचायतें बन चुकी हैं	६७ प्रतिशत
उन ग्रामों की संख्या, जहां पंचायतें बन चुकी हैं	४७,६३६
कुल ग्रामों का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	६४ प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत संख्या	५,८०७
पंचायत-समितियों की संख्या	७
जिला-परिषदों की संख्या	१३

उड़ीसा ग्राम-पंचायत-अधिनियम के अधीन ग्राम-पंचायतें स्थापित की गई थीं। इसके अनुसार प्रत्येक ग्राम में एक पाल्ली सभा स्थापित की जाती है। सम्पूर्ण पंचायत-क्षेत्र के लिए ग्राम-सभा नाम की किसी संस्था का विधान ग्राम-पंचायत उड़ीसा के अधिनियम के अन्तर्गत नहीं है। पाल्ली सभा को पंचायत द्वारा किये गए कार्यों तथा आगामी कार्यक्रमों पर विचार करने का अधिकार है। जब उड़ीसा का शासन प्रधान के सीधे नियन्त्रण में चला गया तो उड़ीसा परिषद् एक्ट १६५६ को लागू करने के लिए कुछ अध्यादेश जारी किये, जिनके अनुसार संसद की स्वीकृति से राज्य में तृस्तरीय ढांचे पर आधारित पंचायत-राज की स्थापना की गई। उड़ीसा जिला परिषद् अधिनियम १६५६ के अनुसार ग्राम-पंचायत, पंचायत-समिति और जिला-परिषदों की स्थापना की गई। २६ जनवरी, १६६१ से राज्य-भर में पंचायत-समितियां काम कर रही हैं। इन पंचायत-समितियों में प्रत्येक पंचायत के सरपच पदेन तथा एक निर्वाचित व्यक्ति सदस्य होते हैं। स्त्रियों तथा परगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित किये गए हैं।

विधान-परिषद् और लोक-सभा के सदस्य भी पंचायत-समिति के सदस्य होते हैं। डिवीजनल मैजिस्ट्रेट तथा प्रत्येक विकास-विभाग से एक-एक अधिकारी इन समितियों के सदस्य नामांकित होते हैं। विकास-अधिकारी मुख्य कार्यकारी अधिकारी होता है।

जिला-परिषदों में पंचायत-समितियों के अध्यक्ष तथा स्थानीय सदस्य तथा विधान-परिषद् और लोकसभा के सदस्य होते हैं। अन्तिम दो को मत देने का अधिकार नहीं होता। एक स्थान स्त्रियों के लिए भी सुरक्षित रखा जाता है। जिलाधीश, परगनाधीश और अन्य विकास-विभागों के अधिकारी भी जिला-परिषद् के सदस्य होते हैं, किन्तु इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता। पंचायत-समिति और जिला-परिषद् की कार्य-अवधि पांच साल होती है। इन संस्थाओं का चुनाव गुप्त मतदान-प्रणाली के द्वारा कराया जाता है। सुरक्षित जगहें निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुनाव के द्वारा पूरी की जाती हैं। उड़ीसा में लागू किया गया पंचायती राज देश के दूसरे राज्यों से कुछ भिन्न है। यह भिन्नता पंचायत-समिति, जिला-परिषद् दोनों में अधिकारियों का नाम अंकित करने तथा पंचायत-समिति में प्रत्येक पंचायत से निर्वाचित सदस्यों को भेजने के रूप में है। जबकि अन्य प्रदेश की पंचायत-समितियां तथा जिला-परिषद् में अधिकारियों को केवल दोनों में से एक ही की सदस्यता प्राप्त है। इसके अतिरिक्त पंचायत-समितियों के सदस्य प्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति के अनुसार नहीं आते हैं।

आर्थिक साधन—ग्राम-पंचायत और पंचायत-समितियां दोनों को कर और फीस लगाने के अधिकार हैं। इसके अतिरिक्त शासन इन संस्थाओं को मालगुजारी में से कुछ प्रतिशत अनुदान के रूप में देती है। जिला-परिषद् की आय मुख्य रूप से शासकीय सहायता के रूप में है। इसको कर लगाने का अधिकार नहीं है। पचायतों को स्थायी रूप से आमदनी प्राप्त करनेवाले साधनों जैसे मछली-पालन, बाजारों का विकास, हड्डियों से खाद बनानेवाली छोटी-छोटी मशीनें, पानी उठानेवाले सिंचाई के लिए पम्प आदि योजनाओं के लिए शासन द्वारा समय-समय पर आर्थिक सहायता दी जाती है।

अन्य विशेषताएं—उड़ीसा की पंचायतों ने सहकारी पद्धति के अनुसार किसानों को उनकी आवश्यकता के समय बीज और ऋण देने के लिए अपने-अपने क्षेत्रों में अन्न-भण्डारों की स्थापना की है, जिससे प्रत्येक पंचायत में हजारों मन उत्तम प्रकार के बीज का भण्डार स्थापित हो गया है, जिनसे किसान सहकारी पद्धति पर ऋण लेते हैं।

उड़ीसा ग्राम-पंचायत-अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था भी है कि पंचायतें ऐसे सभी स्वस्थ्य-विवाहित व्यक्तियों से, जिनकी आयु १८ और ५० वर्ष के भीतर हो, सार्वजनिक भलाई से सम्बन्धित कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से श्रम-कर ले सकें।

उत्तर प्रदेश

ग्रामीण जन-संख्या	५४५·९० (लाखों में)
पंचायतों की संख्या	७२,३३५
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	१०० प्रतिशत
ग्रामों की संख्या, जिनमें पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	१,११,७२२
गांव का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें बन चुकी हैं।	१०० प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	७५५

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् गांव-गांव को व्यापक अधि-

कार देने के लिए सबसे पहले उत्तर प्रदेश में १९४७ उत्तर प्रदेश पंचायत राज अधिनियम पारित किया गया। इसके अन्तर्गत समस्त देहाती क्षेत्रों में प्रत्येक गांव के लिए पंचायतें स्थापित की जाती हैं। प्रत्येक पंचायत में १६ से ३१ तक सदस्य होते हैं। चुनाव हाथ उठाकर कराया जाता है। पंचायत की कार्यावधि ५ साल की होती है। ग्राम-सभा को वैधानिक मान्यता दी गई है, जो ग्राम-पंचायत के कार्यों तथा आय-व्यय-सम्बन्धी आंकड़ों पर विचार-विमर्श कर सकती है और पंचायत के कार्यों पर वार्षिक बैठकों द्वारा उचित नियन्त्रण भी रखती है। पंचायत को सफाई तथा स्वच्छता, जन-मार्गों का निर्माण और उनकी मुरम्मत, कुओं का निर्माण, कृषि-विकास, सरकार से ऋण प्राप्त करके किसानों में बांटना, सहकारिता-विकास, उन्नतिशील बीज-भण्डारों की स्थापना, पुस्तकालयों की स्थापना, प्रारम्भिक पाठशालाओं की स्थापना तथा मातृ और शिशु-कल्याण-सम्बन्धी कार्यों का उत्तरदायित्व दिया गया है।

आर्थिक साधन—ग्राम-पंचायतों को पेशा-कर, गाड़ी-कर, तथा वस्तुओं के विक्रय के ऊपर कर लगाने का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त शासन से भी सहायता मिलती है।

उत्तर प्रदेश में लोकतन्त्रीय पद्धति का विकेन्द्रीकरण करने के लिए सबसे पहले जिला-बोर्डों को समाप्त करके उनके स्थान पर अंतरिम जिला-परिषदों को भी समाप्त करके उत्तर प्रदेश क्षेत्र-समिति और जिला-परिषद् अधिनियम १९६० के अनुसार विकास-खण्ड-स्तर पर क्षेत्र-समितियां और जिला के स्तर पर जिला-परिषदों की स्थापना की गई है। दोनों संस्थाओं का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन-पद्धति के द्वारा होता है। स्थानीय विधान-सभा और लोक-सभा के सदस्य इसके मेम्बर होते हैं। सभी ग्राम-पंचायतों के प्रधान क्षेत्र-समिति के सदस्य होते हैं। खण्ड-विकास-अधिकारी क्षेत्र-समिति का मुख्य कार्यवाहक अधिकारी होता है। जिला-परिषद एक मुख्य कार्याधिकारी की नियुक्ति करती है।

दोनों ही संस्थाओं को कर, फीस और टोल आदि लगाने के अधिकार दिये गए हैं।

क्षेत्र-समिति का मुख्य रूप से प्रारम्भिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना, मातृ तथा शिशु-कल्याण केन्द्रों की स्थापना, प्रारम्भिक स्कूलों की व्यवस्था, सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाओं का निर्माण, कृषि-विकास, सहकारिता तथा गृह-उद्योग-धन्धों का विस्तार आदि कार्य सौंपे गये हैं। विभिन्न ग्राम-पंचायतों के कार्यक्रमों में एकरूपता पैदा करना तथा उनके आय-व्ययक के निरीक्षण का कार्य भी इन संस्थाओं को सौंपा गया है।

जिला-परिषदों को क्षेत्रीय समितियों के ऊपर साधारण नियन्त्रण, जिला की सड़कों, अस्पतालों, जूनियर हाई स्कूलों आदि के निर्माण तथा उनकी व्यवस्था करने के अधिकार प्राप्त हैं। पूरे जिले की योजनाओं को बनाना और शासन द्वारा प्राप्त अनुदानों को विभिन्न संस्थाओं में उचित वितरण भी इन संस्थाओं का कर्त्तव्य है।

केरल

ग्रामीण जन-संख्या	११७.६६ (लाखों में)
पंचायतों की संख्या	८६२
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	९१ प्रतिशत
ग्रामों की संख्या का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं।	७६ प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या।	११,९९६

केरल में मद्रास पंचायत अधिनियम १९५० के अधीन भूतपूर्व मालाबार जिला तथा ट्रावनकोर-कोचीन अधिनियम १९५० के अधीन भूतपूर्व ट्रावनकोर-कोचीन क्षेत्र में पंचायतें स्थापित की गई थीं। किंतु दोनों अधिनियमों के अन्तर्गत सम्पूर्ण देहाती क्षेत्रों में पंचायतें स्थापित नहीं हो पाईं थीं। केरल पंचायत अधिनियम १९६० के अंतर्गत संपूर्ण राज्य में एक प्रकार का समान पंचायत-राज-विधान लागू किया गया है और समस्त प्रदेश में पंचायतों की स्थापना की गई है।

राज्य सरकार के निर्णय के अनुसार ग्राम-पंचायतों के कुछ समय तक भली प्रकार कार्य कर चुकने के पश्चात् ही पंचायतें उच्च-स्तरीय पंचायतें यथा पंचायती समितियों और जिला-परिषदों की स्थापना की जायगी।

केरल पंचायत राज अधिनियम १९६० के लागू होने से पूर्व की पंचायतों का क्षेत्र बहुत बड़ा था और उनका पुनर्संगठन किया जा रहा है।

पंचायतों का चुनाव गुप्त पद्धति के अनुसार कराया जाता है। परिगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित होते हैं और इसी प्रकार स्त्रियों के लिए भी एक स्थान सुरक्षित रखा जाता है। पंचायतें सार्वजनिक सड़कों के निर्माण, ग्राम-रक्षा, तालाबों, कुओं तथा नालियों के निर्माण और मुरम्मत, सिंचाई की छोटी-छोटी योजनाएं, कृषि-विकास, सहकारी खेती, पशु-विकास, जन-कल्याण, जन-स्वास्थ्य तथा सफाई एवं कुटीर उद्योग-धन्धों के लिए उत्तरदायी हैं।

आर्थिक साधन—पंचायतों को कर लगाने का अधिकार है यथा व्यवसाय-कर, गाड़ी-कर, मकान-कर आदि-आदि। इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा लगाये गए प्रारम्भिक करों की समस्त धन-राशि पंचायतों को सौंप दी जाती है।

गुजरात और महाराष्ट्र

	गुजरात	महाराष्ट्र
कुल ग्रामों की संख्या	१७८४४	३८९४९
कुल पंचायतों की संख्या	१०७५०	१९१५१
कुल ग्रामों की संख्या, जहां पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	१७७६०	३७९९८
कुल ग्रामों का प्रतिशत, जहां पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	९९ प्रतिशत	९८ प्रतिशत
ग्रामीण जन-संख्या का कुल प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें स्थापित की जा चुकी हैं	९८ प्रतिशत	९९ प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	१०२०	[illegible]

गुजरात और महाराष्ट्र राज्यों की अलग-अलग स्थापना होने के पूर्व इन दोनों राज्यों को मिलाकर बम्बई राज्य के नाम से पुकारा जाता था। बम्बई पंचायत अधिनियम १९५८ के लागू होने के पहले राज्य में विभिन्न क्षेत्रों में पांच प्रकार के पंचायती राज अधिनियम लागू थे। बम्बई और कच्छ में बम्बई ग्राम पंचायत अधिनियम १९३३ का सौराष्ट्र ग्राम पंचायत अध्यादेश १९४९, विदर्भ में सी०पी० और बरार पंचायत अधिनियम १९४५ के अन्तर्गत पंचायतें काम कर रही थीं। किन्तु बम्बई पंचायत-राज अधिनियम १९५८ के द्वारा इन सभी पंचायत-राज अधिनियमों का एकीकरण करके एक समान स्तर और पद्धति के ऊपर पंचायतों की स्थापना की गई। इस बम्बई पंचायत-राज अधिनियम १९५८ के अन्तर्गत जिला के स्तर पर जिला-पंचायत-मण्डलों की स्थापना की गई। विकास-खण्ड के स्तर पर किसी प्रकार की पंचायत संस्था नहीं है।

ग्राम-सभा ग्राम-पंचायत के आय-व्ययक के मदों पर विचार कर सकती है। अधिनियम के अन्तर्गत इसे कानूनी मान्यता प्राप्त है। ग्राम-पंचायत में ७ से १५ तक सदस्य होते हैं, जिनका चुनाव गुप्त निर्वाचन-प्रणाली के अनुसार कराया जाता है। स्त्रियों और परिगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित हैं। ग्राम-पंचायत की कार्यावधि ४ वर्ष के लिए होती है। जिला-पंचायत-मण्डल में ७ से १२ सरपंच, जिला-बोर्डों के अध्यक्ष, जिला-स्कूल-बोर्डों के अध्यक्ष, जिला-विकास-बोर्ड के अध्यक्ष तथा जिला-पंचायत-अधिकारी सदस्य के रूप में काम करते हैं। इसके अतिरिक्त स्त्रियों और परिगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रहते हैं।

ग्राम-पंचायत निम्नलिखित कार्यों के लिए उत्तरदायी है—

कृषि-विकास, कुटीर-उद्योग, यातायात, सफाई, शिक्षा का प्रसार, चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता आदि।

आर्थिक साधन—आय के मुख्य साधन स्थानीय कर तथा मालगुजारी में से सरकार द्वारा दी जानेवाली रकमें हैं। जिला-पंचायत-मण्डल ग्राम-पंचायतों के विभिन्न कार्यों का नियंत्रण और निरीक्षण रखते हैं और पंचायतों के आय-व्यय स्वीकृत करने का अधिकार उन्हें प्राप्त है।

गुजरात और महाराष्ट्र दोनों के अलग-अलग राज्य बन जाने पर दोनों की सरकारों द्वारा त्रिस्तरीय ढांचे पर आधारित पंचायत-राज को स्थापित करने के लिए उच्च-स्तरीय समितियों के सुझाव पर नये अधि-नियम बन चुके हैं। इनके अनुसार दोनों राज्यों में तीनों स्तरों पर पंचायतें स्थापित होंगी और उन्हें व्यापक अधिकार दिये जायंगे।

जम्मू और काश्मीर

ग्रामीण जन-संख्या	४०.०० (लाखों में)
ग्राम-पंचायतों की संख्या	९३६
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनमे पंचायतें स्थापित हो चुकी है	१०० प्रतिशत
गांव की संख्या, जिनमें पंचायते बन चुकी हैं	६९५८
गांव का प्रतिशत, जिनमें पंचायते बन चुकी हैं	१०० प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	३०९८

जम्मू और काश्मीर ग्राम-पंचायत अधिनियम १९५८ के अन्तर्गत ग्राम-स्तर पर ग्राम-पंचायतों तथा विकास-खण्ड-स्तर पर ब्लॉक-पंचायत बोर्ड की स्थापना की गई है। प्रत्येक ग्राम-पंचायत-क्षेत्र में एक ग्राम-सभा होती है, जिसको ग्राम-पंचायत के वार्षिक कार्यों तथा आय-व्यय पर विचार करने का अधिकार प्राप्त है। ग्राम-पंचायत में [illegible] सदस्य होते हैं, जिसमें कुछ सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं और कुछ पंचायतों द्वारा और कुछ निर्वाचित सदस्य होते हैं। किन्तु इन सदस्यों में निर्वाचित प्रतिनिधियों का बहुमत होता है। ग्राम-पंचायत के सदस्यों और निर्वाचित सदस्यों का चुनाव हाथ उठाकर किया जाता है। लेकिन अगर कहीं मार-पीट की आशंका हो तो ऐसी अवस्था में निर्वाचन गुप्त ढंग से किया जाता है।

ब्लॉक-पंचायत बोर्ड में प्रत्येक पंचायत से एक प्रतिनिधि लिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ सदस्य सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं, एक स्थान स्त्रियों के लिए भी सुरक्षित रखा जाता है। [illegible]

जिला के स्तर पर किसी प्रकार की पंचायत-संस्था बनाने का विचार नहीं है।

ग्राम-पंचायतों को जन-मार्गों का निर्माण, ग्राम-रक्षा, पुलों का निर्माण, प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध, कृषि-विकास, सफाई तथा कुटीर-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना आदि कर्त्तव्य सौंपे गये हैं।

आर्थिक साधन—ग्राम-पंचायतों का मुख्य आर्थिक साधन स्थानीय कर तथा सामुदायिक विकास-योजनाओं से प्राप्त होनेवाली रकमें हैं।

ब्लॉक पंचायत बोर्ड के पास अपना स्वतन्त्र रूप से आय का कोई साधन नहीं है। इसका काम पंचायतों को परामर्श देना है।

दिल्ली

ग्रामीण जन-संख्या	३.०७ (लाखों में)
पंचायतों की संख्या	२०५
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें बन चुकी हैं।	१०० प्रतिशत
ग्रामों की जन-संख्या जिनके लिए पंचायतें बन चुकी हैं।	३०३
गांव का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें बन चुकी हैं।	१०० प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या।	९७६

दिल्ली में ग्राम-पंचयतों की स्थापना की जा चुकी है। ग्राम-सभाओं को वैधानिक मान्यता दी गई है और ग्राम-सभा के मतदाता ही गुप्त निर्वाचन-प्रणाली द्वारा ग्राम-पंचायत के पंचों का निर्वाचन करते हैं। ग्राम-पंचायत में ५ से ११ तक सदस्य होते हैं, जिनमें स्त्रियों और परिगणित जातियों का स्थान सुरक्षित है। लगभग ८ पंचायतों के समूह को मिलाकर एक केन्द्रीय पंचायत की स्थापना की जाती है, जिसका काम ग्राम-पंचायतों के कार्य की देखभाल तथा न्याय-पंचायत के रूप में काम करना है।

ग्राम-पंचायतों को कृषि-विकास, पशुपालन, सहकारी खेती, मछली पालन, कुटीर-उद्योग-धन्धों आदि के प्रोत्साहन का कार्य सौंपा गया है।

जमीनें, मछली, जंगल तथा बाजारों से प्राप्त आमदनी ग्राम-पंचायतों को दी जाती है। इसके अतिरिक्त शासन द्वारा समय-समय पर विभिन्न कार्यों की सहायता भी प्राप्त होती है।

ग्राम-सम्बन्धी बहुत-से विकास-कार्य नगर-निगम द्वारा भी पूरे किये जाते है।

विकास-खण्ड स्तर पर विकास-समितियो की स्थापना की गई जिनके अधिकारों और कर्त्तव्यो मे उचित विस्तार किया जा रहा है। इनका नामकरण विकास-समिति के स्थान पर पंचायत-समिति कर दिया गया है। यह आशा की जाती है कि दिल्ली निगम इन पंचायत समितियों को विकास-सम्बन्धी अपने अधिकार सौंप देगा।

पंजाब

ग्रामीण जन-संख्या — १३० ६८ (लाखों में)

पंचायतों की संख्या — १३ ४३६

ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं — १०० प्रतिशत

ग्रामों की संख्या, जिनमे पंचायते स्थापित हो चुकी हैं — २०८५५

गांव की संख्या का प्रतिशत, जिनमे पंचायतें स्थापित की जा चुकी हैं। — १०० प्रतिशत

प्रति पंचायत की औसत जन-संख्या — ६५५

सन् १६५६ के पहले पंजाब में पंजाब ग्राम-पंचायत-अधिनियम १६५२ और पेप्सू ग्राम अधिनियम के अन्तर्गत ग्राम-पंचायतें काम कर रही थी। पंजाब ग्राम-पंचायत-संशोधन अधिनियम १६५६ के द्वारा पेप्सू पंचायत राज अधिनियम को रद्द करके सम्पूर्ण प्रदेश में [illegible] साधनों के साथ समान स्तर पर पंचायतों [illegible] अधिनियम के द्वारा ग्राम-सभा को मान्यता प्रदान [illegible] और ग्राम-सभाएं ग्राम-स्तर पर [illegible] हैं तथा पंचायत द्वारा [illegible]

पंजाब पंचायत समिति और जिला-परिषद् अधिनियम [illegible]

अन्तर्गत राज्य-भर में त्रिस्तरीय ढांचे के ऊपर आधारित पंचायती राज स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार विकास-स्तर पर पंचायत-समितियां और जिला-स्तर पर जिला-परिषद् स्थापित की गई हैं।

पंचायत-समिति में कुल १६ प्रारम्भिक सदस्य होंगे, जो पंचों और सरपंचों द्वारा निर्वाचित होकर पंचायत-समिति में आयेंगे। यदि पंचायत-समिति का क्षेत्र तहसील के बराबर हो तो उस दशा में इसमें केवल ८ सदस्य निर्वाचित होंगे। प्रारम्भिक सदस्यों द्वारा पंचायत-समिति में स्त्रियां और परिगणित जातियों में से क्रमशः दो और चार सदस्यों के सम्मिलित किये जाने की भी व्यवस्था है। विधान-सभा और विधान-परिषदों के सदस्यों को पंचायत-समिति का सदस्य बनने का अधिकार है परन्तु मत देने और अध्यक्ष अथवा उप-अध्यक्ष के पद पर निर्वाचित होने का अधिकार नहीं है। परगनाधीश और विकास-अधिकारी पंचायत-समितियों के पदेन सदस्य हो सकते हैं। किन्तु उन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं हो सकता है।

जिला-परिषद् में प्रत्येक पंचायत-समिति में से पांच सदस्य, यदि समिति का क्षेत्र तहसील के बराबर हो, या दो सदस्य यदि समिति का विकास खण्ड-क्षेत्र के बराबर हो, पंचायत-समिति के प्रारम्भिक सदस्यों द्वारा निर्वाचित होकर आते हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय विधान-परिषदों और लोक-सभा के सदस्य तथा पंचायत-समितियों के अध्यक्ष भी सदस्यों के रूप में आते हैं, किन्तु इन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता। इसके अतिरिक्त स्त्रियां और परिगणित जातियों में से इतने सदस्य जिला-परिषद् में सम्मिलित किये जाते हैं, जिनको मिलाकर उनकी संख्या दो और पांच न हो जाय। शासन-सम्बन्धी कार्यों में अनुभव रखनेवाले दो व्यक्तियों को भी परिषद् का सदस्य बनाया जाता है। जिलाधीश, जिला-परिषद् का मेम्बर होता है, किन्तु उसको मत देने का अधिकार नहीं होता। परिषद् का चेयरमैन गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा निर्वाचित होता है। लोक-सभा-सदस्य और विधान-सभा-सदस्य जिला-परिषद् के अध्यक्ष नहीं चुने जाते हैं।

कार्य और कर्तव्य—पंचायतें ग्राम-स्तर पर विकास-सम्बन्धी सारे

कार्यों के लिए उत्तरदायी हैं। कुटीर-उद्योग, कृषि का विकास, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई, कृषक मण्डल, महिला मंडल, ग्राम-रक्षा दल की स्थापना, कृषकों के लिए बीज की व्यवस्था तथा मातृ और शिशु-कल्याण का प्रबन्ध आदि पंचायतों के कर्त्तव्य हैं।

कृषि-विकास, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सफाई का प्रबन्ध, [illegible] के साधनों का प्रबन्ध, सहकारिता तथा लघु उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना आदि कार्य पंचायत-समितियों को सौंपे गये हैं। पंचायत-समिति सरकार की ओर से विकास-सम्बन्धी कार्यों को पूरा करने की उत्तरदायी है। जिला-परिषद् पंचायत-समितियों की योजनाओं में समीकरण तथा उनके आय-व्ययकों को स्वीकृत करने का काम करती है।

आर्थिक साधन—पंचायतों को कर लगाने का अधिकार प्राप्त है, जैसे भवन-कर, व्यवसाय-कर आदि। इसके अतिरिक्त मालगुजारी तथा सम्पत्ति के हस्तांतरण-सम्बन्धी शुल्क में से कुछ प्रतिशत पंचायतों को मिलता है। इसके अतिरिक्त आमदनी प्राप्त करनेवाले साधनों, जैसे ट्यूब वेल निर्माण और फिर शुल्क लेकर सिंचाई के वास्ते पानी देना, [illegible] के लिए मकानों का निर्माण आदि कार्य पंचायतें कर सकती हैं और इनके लिए शासन की ओर से सहायता प्राप्त होती है। पंचायत-समितियों को शासन से प्राप्त होनेवाले अनुदान के अतिरिक्त [illegible] स्थानीय कर, जो एक रुपये में २५ नये पैसे के हिसाब से [illegible], इनसे प्राप्त रकम मिलती है। जिला परिषद् की आय [illegible] सरकार द्वारा मिलनेवाली सहायता और अनुदान [illegible] है।

अन्य विशेषताएं—पंचायत-समिति [illegible] अधिकारी होता है। इसके अतिरिक्त समिति को [illegible] की सेवाएं भी प्राप्त होती हैं, जिनसे [illegible] जाता है।

पंजाब में [illegible] किये गये हैं, जिससे प्रतीत होता है कि [illegible] दिलचस्पी है। शासन ने प्रशासनिक अधिकारियों [illegible]

किये हैं, जिनके अनुसार पंचों के साथ विनम्रता तथा आदर का व्यवहार किये जाने के आदेश हैं। पंचायतों के चुनाव में सर्वसम्मति लाने के उद्देश्य से शासन ने यह निर्णय किया है कि जिन पंचायतों में चुनाव निर्विरोध और सर्वसम्मति से हो, उन पंचायतों के उस क्षेत्र का समस्त भूराजस्व पंचायतों को दे दिया जाय। पंजाब पंचायत-राज-अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि संचालक पंचायत-राज की स्वीकृति से पंचायत सार्वजनिक भलाई-सम्बन्धी निर्माण-कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से श्रम ले सकें।

पश्चिमी बंगाल

ग्रामीण जन-संख्या	२००.२१ (लाखों में)
पंचायतो की संख्या	४५५६
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	२८ प्रतिशत
गांवों की संख्या, जिनमें पंचायतें बन चुकी हैं	११६५१
उन गांवों का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें बन चुकी हैं	३० प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	१२२९
आंचल पंचायतों की संख्या	४६९

पश्चिमी बंगाल में पंचायतें स्थापित नहीं की गई थीं, किन्तु अब उनकी स्थापना के लिए कार्यक्रम बनाया गया है। पंचायतों का चुनाव मतदाताओं द्वारा गुप्त मतदान-प्रणाली के द्वारा कराया जाता है। ग्राम-सभा को भी मान्यता दी गई है। पंचायतों का कार्यकाल चार साल का होता है। पंचायतों के ऊपर कई पंचायतों को मिलाकर आंचल पंचायतों की स्थापना की जाती है। किन्तु इसका क्षेत्र विकास-खण्ड के बराबर नहीं होता। आंचल-पंचायतें कर-वसूली के लिए आवश्यक कर्मचारियों की नियुक्ति करती हैं। ग्राम-सभा, ग्राम-पंचायत के वार्षिक कार्यक्रम और आय-व्ययक के ऊपर विचार करती हैं। ग्राम-पंचायतें सफाई, सार्वजनिक मार्गों का निर्माण और उनकी मुरम्मत, पीने के पानी का प्रबन्ध,

प्रारम्भिक शिक्षा आदि के लिए उत्तरदायी हैं। आंचल-पंचायतें करों को लगाकर उनकी वसूली का प्रवन्ध करती है और न्याय-पचायत का भी काम आंचल-पंचायत ही करती है। दफादारों और चौकीदारों की [illegible] का अधिकार भी इन पंचायतों को है।

ग्राम-पंचायतों को कर लगाने का अधिकार नहीं है। आंचल पंचायतों तथा शासन से मिलनेवाली सहायता ही मुख्य रूप से ग्राम-पंचायतों की आय का साधन है।

आंचल-पंचायतों को मकान, मेला, गाड़ी आदि कर लगाने का अधि-कार है। इसके अतिरिक्त सफाई तथा पीने के पानी के [illegible] के लिए प्राप्त होनेवाले अनुदान भी आंचल-पचायतों की आय का [illegible] हैं। सरकार द्वारा विभिन्न कार्यों के लिए सहायता प्राप्त होती रहती है।

बिहार

ग्रामीण जन-संख्या	३६१ ५८ (लाखों में)
पंचायतों की संख्या	१०६१७
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें बन चुकी है	६५ प्रतिशत
गांव की संख्या, जहां पचायतें स्थापित हो चुकी है	६७३५८
गांव का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें स्था-पित हो चुकी हैं	६६ प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	३[illegible]२०

अन्य प्रदेशों की भांति बिहार में [illegible] ग्राम-पंचायतों की स्थापना बिहार पंचायत अधिनियम [illegible] में संशोधित हो चुका है, के अन्तर्गत की गई है। [illegible] कारिणी-समिति को दूसरे प्रदेशों की तरह [illegible] जा सकता है। अभी तक बिहार में [illegible] पंचायती राज की स्थापना नहीं हुई है। [illegible] बिहार पंचायत समिति तथा जिला-परिषद् [illegible] हो चुका है और इसके पास हो जाने पर [illegible]

समितियां और जिला-परिषदों की स्थापना कर दी जायगी। वर्तमान खण्ड-विकास-समिति और जिला-विकास-समितियों के कार्य और अधिकार इन पंचायत-समितियों और जिला-परिषदों को सौंप दिये जायंगे।

वर्तमान समय में ग्राम-पंचायतों को अपनी कार्यकारिणी का आय-व्ययक पास करने का अधिकार है। ग्राम-पंचायत के मुखिया को भी चुनने का अधिकार है।

ग्राम-पंचायतों को परामर्श देने के लिए बिहार में क्षेत्रीय पंचायत परामर्शदातृ समितियां स्थापित हैं। इन समितियों में लोक-सभा तथा विधान-सभा के सदस्य, नगरपालिकाओं के अध्यक्ष तथा जिला बोर्डों के मेम्बर सदस्य होते हैं। खण्ड-विकास-अधिकारी इस समिति का सेक्रेटरी होता है। इस प्रकार कोई संस्था जिला के स्तर पर नहीं है, किन्तु राज्य-स्तर पर एक स्टेट पंचायत बोर्ड की स्थापना की गई है, जिसके २६ सदस्य होते हैं। इनमें से २० सदस्य विधान-परिषद् के सदस्यों में से निर्वाचित होते है, ४ सदस्य पंचायतों द्वारा निर्वाचित होते हैं तथा दो सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इस बोर्ड का काम पंचायतों के कामों पर पुनः विचार तथा सरकार को पंचायत-सम्बन्धी मामलों में उचित परामर्श देना है। संचालक पंचायत-राज इस बोर्ड का सेक्रेटरी होता है।

ग्राम-पंचायत को कृषि-विकास, ग्रामीण सड़कों की मुरम्मत, पीने के पानी की व्यवस्था, चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता और सफाई तथा गांव के विकास का उत्तरदायित्व दिया गया है।

बिहार राज्य में ग्राम-पंचायतों को उचित रूप से अपने कार्यों को निभाने के लिए प्रत्येक पंचायत-क्षेत्र में ग्राम-रक्षा दलों की स्थापना की गई, जो पंचायत-क्षेत्र में रक्षा-व्यवस्था, पंचायत-संपत्ति की सुरक्षा तथा पंचायतों द्वारा निकाले गए आदेशों को पूरा करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। इस दल को कुछ पुलिस के अधिकार भी दिये गए हैं।

मद्रास

ग्रामीण जन-संख्या	२२६.६० (लाखों में)
पंचायतों की संख्या	१२०३७
ग्रामीण जन-संख्या का अनुपात जहां	

पंचायतें बन चुकी है	९८ प्रतिशत
ग्रामों की संख्या, जहां पचायतें बन चुकी है	१७५१३
ग्रामों की संख्या का अनुपात, जिनमे पंचायतें बन चुकी है	९९ प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	१७९९
पंचायत यूनियन कौंसिल की संख्या	७५
जिला-विकास-सलाहकार-समिति की संख्या	२९

मद्रास पंचायत अधिनियम १९५८ सन् १९६० मे लागू हुआ। इसके अधीन ग्राम पंचायत, टाऊन पचायत और यूनियन कौंसिल की स्थापना की गई। इसके पूर्व मद्रास मे पचायत-राज अधिनियम १९५० के अन्तर्गत केवल ग्राम-पंचायतों की स्थापना का ही विधान था। जिला के स्तर पर जिला-विकास-सलाहकार समिति की स्थापना मद्रास जिला-समिति अधिनियम १९५८ के अनुसार की गई।

प्रत्येक पचायत मे कम-से-कम ५०० की आबादी होनी चाहिए। इसी प्रकार टाऊन-पचायत की जन-संख्या कम-से-कम ५००० और इसकी वार्षिक आय १०,००० रुपये होनी चाहिए। अभी तक मद्रास पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत ग्राम-सभाओं को वैधानिक स्वरूप नहीं दिया गया है।

पंचायतों का चुनाव गुप्त मतदान-प्रणाली के अनुसार होता है। स्त्रियों तथा परिगणित और आदिम जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रखे जाते हैं। ग्राम-पंचायत के सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष चुनाव-प्रणाली के अनुसार होता है।

पंचायत यूनियन कौंसिल में प्रत्येक पंचायत से चुने हुए एक-एक सदस्य तथा स्थानीय विधायक तथा तीन स्त्रियां तथा तीन परिगणित जाति के सदस्य चुने जाते हैं। विधायकों को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। जिला-विकास-सलाहकार-समिति में मद्रास राज्य की लोक-सभा और विधान-सभा के सदस्य और पंचायत यूनियन के [illegible]

सहकारी बैंकों के अध्यक्ष होते हैं। इसके अतिरिक्त विभिन्न विभागों के अधिकारी भी इसके सदस्य होते हैं, किन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता। सलाहकार-समिति का चेयरमैन जिलाधीश होता है।

कर्तव्य तथा कार्य—ग्रामों के विकास और भलाई के कार्य का उत्तरदायित्व पंचायतों को सौंपा गया है। ग्रामीण सड़कों तथा नालियों का निर्माण और उनकी मुरम्मत, कुओं का निर्माण, सफाई का प्रबन्ध, तालाबों और बावड़ियों का निर्माण और मुरम्मत, पीने के पानी का प्रबन्ध तथा जनहित-सम्बन्धी दूसरे कार्य पंचायतों को सौंपे गए हैं। सरकार ने पंचायतों को सार्वजनिक भूमि हस्तांतरित कर दी है। इसी प्रकार गांव में ऐसे जंगल, जो सुरक्षित नहीं हैं, पंचायतों के अधिकार में दे दिये गए हैं।

पंचायत यूनियन कौंसिल को सड़कों के निर्माण और मुरम्मत, औषधालयों की स्थापना और देखरेख, मातृ और शिशु-कल्याण-केन्द्रों की स्थापना, प्रारम्भिक पाठशालाओं, कृषि-विकास, कुटीर-उद्योग-धन्धों तथा पशु-चिकित्सा-सम्बन्धी कार्य सौंपे गये हैं। सिंचाई-सम्बन्धी लघु योजनाओं का निर्माण और उचित नियन्त्रण भी पंचायत यूनियन कौंसिल का उत्तरदायित्व है। सामुदायिक कार्यों को क्रियान्वित करने का कार्य भी इसी कौंसिल की जिम्मेदारी है।

जिला-विकास-कौंसिल, प्रान्तीय शासन को ग्राम-पंचायतों के कार्य और कर्त्तव्य तथा पंचायत यूनियन कौंसिल और नगरपालिका से सम्बन्ध रखनेवाले विकास तथा आर्थिक मामलों पर परामर्श देती हैं। इसी प्रकार कृषि, उद्योग, श्रम-सहकारिता, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा तथा स्थानीय शासन-प्रबन्ध से सम्बन्धित विषयों पर सरकार को उचित परामर्श और सुझाव प्रस्तुत करती है। हाट, बाजारों और सड़कों का वर्गीकरण का काम भी करती हैं।

आर्थिक साधन—राज्य सरकार पंचायत यूनियन कौंसिल मालगुजारी में से एक रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से वार्षिक अनुदान देती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय शिक्षा, सहायता तथा लोकल रेट पर उसकी वसूली पर अनुपातिक सहायता शासन द्वारा इन पंचायतों को मिलती है। ग्राम-पंचायतों को भवन, भूमि तथा पेशा-कर लगाने के अधिकार हैं। इसके

अतिरिक्त ग्राम-पंचायतों को उनके द्वारा लगाये गए गृह-कर के [illegible] रुपया प्रति व्यक्ति के हिसाब से अनुपातिक सहायता देने की भी [illegible] है।

अन्य विशेषताएं—मद्रास सरकार ने पंचायतों के लिए मद्रास [illegible] विकास-सेवा की स्थापना स्थायी रूप से की है। पंचायत [illegible] क्षेत्रीय विकास-अधिकारी कमिश्नर के रूप में काम करता है।

मध्य प्रदेश

ग्रामीण जन-संख्या	२८६.३८ ([illegible])
पंचायतों की संख्या	१३४६५
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें स्थापित हो चुकी है	६६ प्रतिशत
ग्रामों की संख्या, जिनमें पंचायतें बन चुकी हैं	६५६८६
ग्रामों की जन-संख्या का प्रतिशत, जहां पंचायतें स्थापित हो चुकी है	६४ प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	११६३

वर्तमान मध्य प्रदेश में पांच प्रकार के पंचायत-[illegible] के अन्तर्गत पंचायतें काम कर रही है। पांच विभिन्न क्षेत्र, जिनको [illegible] वर्तमान मध्य प्रदेश की स्थापना की गई हैं इस प्रकार है—

१. भूपाल क्षेत्र—इसमें भूपाल स्टेट पंचायत अधिनियम १९[illegible] के [illegible] पंचायतें काम कर रही हैं।
२. महाकोशल क्षेत्र—इसके अन्तर्गत सी० पी० और [illegible] नियम १९४६ के अन्तर्गत पंचायतें काम कर रही हैं।
३. मध्यभारत क्षेत्र—इस क्षेत्र में [illegible] के अधीन पंचायतें काम कर रही हैं।
४. विन्ध्य प्रदेश क्षेत्र—इस क्षेत्र में [illegible] विन्ध्य प्रदेश [illegible] अधिनियम के अन्तर्गत पंचायतें काम कर रही हैं।
५. सरोंज उप-क्षेत्र—इस क्षेत्र के अन्तर्गत [illegible] के अन्तर्गत पंचायतें स्थापित की गई हैं।

मध्य प्रदेश की कुछ भूतपूर्व रियासतों तथा इन्दौर में १६२० से पंचायतें काम कर रही हैं।

भूतपूर्व मध्य भारत-क्षेत्र की पंचायतों के एकीकरण का विधान रखा गया है। इसके अनुसार ग्राम-पंचायत, केन्द्र-पंचायत और मण्डल-पंचायतों की स्थापना की गई है।

ग्राम-पंचायत की जन-संख्या लगभग १००० होती है और इसका क्षेत्र पटवार हलका के क्षेत्र के बराबर होता है। राष्ट्रीय प्रसार सेवा-क्षेत्र के लिए एक केन्द्र पंचायत की स्थापना होती है। और सम्पूर्ण जिला में मण्डल-पंचायत की स्थापना की गई है।

मध्य प्रदेश पंचायत बिल १६६०,जिसके अन्तर्गत उपरोक्त पांच प्रकार के अधिनियमों के एकीकरण के द्वारा, राज्य-भर में एक प्रकार का अधिनियम लागू करना है, मध्यप्रदेश की विधान-सभा से पास हो चुका है। इसके अनुसार ग्राम, विकास-खण्ड और जिला के स्तर पर ग्राम-पंचायत, जनपद और जिला-पंचायत की स्थापना की जायगी। इन पंचायतों के स्थापित हो जाने पर मध्य प्रदेश में तृस्तरीय ढांचे पर आधारित पंचायती-राज स्थापित हो जायगा। इन पंचायतों के अधिकार और कर्त्तव्य वे ही हैं, जो दूसरे राज्यों में इन संस्थाओं को दिये गए हैं।

मैसूर

ग्रामीण जन-संख्या	१४६.४५ (लाखों में)
पंचायतों की संख्या	७४४४
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें स्थापित हो चुकी हैं	१०० प्रतिशत
गांव की संख्या, जहां पंचायतें बन चुकी हैं	२५८८०
गांव की संख्या का प्रतिशत, जिनमें पंचायतें काम कर रही है	१०० प्रतिशत
प्रति पंचायत औसत जन-संख्या	२००२
ताल्लुका बोर्डों की संख्या	१८६
जिला-विकास-समिति की संख्या	१६

संगठन—मैसूर ग्राम-पंचायत-अधिनियम और लोकल बोर्ड अधि-

नियम १९५९ के अनुसार तिखण्डे ढांचे के ऊपर आधारित पंचायत-राज की स्थापना की व्यवस्था की गई है। इसके अनुसार ग्रामीण-स्तर पर ग्राम-पंचायत, तालुका-स्तर पर तालुका बोर्ड और जिला के स्तर पर विकास-सलाहकार-समिति की स्थापना की गई है। इसके पहले [illegible] ग्राम-पंचायतें थीं, लेकिन विभिन्न क्षेत्र में पांच प्रकार के पंचायत-राज अधिनियम लागू थे। वे इस प्रकार थे—

१. पुराने मैसूर-क्षेत्र के लिए ग्राम-पंचायत और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड एक्ट १९५२
२. मद्रास कर्नाटक क्षेत्र के लिए ग्राम-पंचायत एक्ट १९५०
३. बम्बई कर्नाटक क्षेत्र के लिए हैदराबाद ग्राम-पंचायत अधिनियम १९५६ और
४. कुर्ग क्षेत्र के लिए कुर्ग पंचायत-राज-अधिनियम १९५९

किन्तु नये अधिनियम के द्वारा उपरोक्त पांचों अधिनियमों का एकीकरण करके राज्य-भर में समान स्तर पर तिखण्डे ढांचे के अनुरूप पंचायतों की स्थापना की गई है।

ग्राम-पंचायत और तालुका-बोर्ड के चुनाव प्रत्यक्ष पद्धति के अनुसार कराये जाते हैं। जिला-विकास-सलाहकार-समिति का चुनाव तालुका-बोर्ड के द्वारा और प्रत्यक्ष ढंग से कराया जाता है। बोर्ड और कौंसिल दोनों में स्त्रियों, परिगणित जातियों और हरिजनों के स्थान सुरक्षित किये जाने की व्यवस्था है। स्थानीय विधान-सभाओं के सदस्य तालुका-बोर्ड और जिला-सलाहकार-समिति के सदस्य होते हैं। [illegible] अधिकार प्राप्त नहीं है। किसी ग्राम-सभा-क्षेत्र के भीतर [illegible] वयस्क मत देने के अधिकारी होते हैं। [illegible] मान्यता प्राप्त है। ग्राम-सभा के सदस्य पंचायत के [illegible] के ऊपर विचार करते हैं। ग्राम-पंचायत और [illegible] चुनाव गुप्त चुनाव-प्रणाली के अनुसार कराया जाता है।

तालुका बोर्ड और जिला कौंसिल [illegible] बना सकती है। जिला-विकास-सलाहकार-समिति [illegible] होता है। विकास-अधिकारी तालुका-बोर्ड का [illegible]

होता है। जिन क्षेत्रों में विकास-खण्ड स्थापित नहीं हुए हैं, वहां ताल्लुका बोर्ड का कार्यकारी अधिकारी तहसीलदार होता है। राज्य सरकार को अधिकार है कि वह जिला कौंसिल में अन्य सरकारी अधिकारी को नामांकित करके भेजे।

कार्य तथा कर्त्तव्य—ग्राम-पंचायतों के मुख्य रूप से निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—

ग्रामीण जनपथों का निर्माण और उनकी मुरम्मत, नालियों, कुओं, तालावों का निर्माण तथा सुधार तथा उनकी मुरम्मत, सफाई का प्रबन्ध, पशु-सुधार, कुटीर-उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देना, सहकारिता आन्दोलन को प्रोत्साहन तथा कृषि-सुधार और अन्य विकास-सम्बन्धी कार्यों को पूरा करना, जिनका सम्बन्ध ग्रामीण स्तर पर हो।

ताल्लुका-बोर्डों को सड़कों के निर्माण और रक्षा का उत्तरदायित्व, सिंचाई की लघु योजनाओं का निर्माण, कृषि-सुधार, सहकारिता को प्रोत्साहन तथा ऐसे अन्य विकास-कार्य, जिनका सम्बन्ध ताल्लुका से हो, इनको सौंपे गए हैं। ताल्लुका बोर्ड पंचायत के कार्यों का निरीक्षण भी करता है। जिला-विकास-कौंसिल ताल्लुका बोर्डों के बजट की स्वीकृति भी प्रदान करती है तथा उनके कार्यों का निरीक्षण और विभिन्न ताल्लुका-बोर्डों में पारस्परिक संयोग पैदा करती हैं। ताल्लुका-बोर्डों का यह भी उत्तरदायित्व है कि वह प्रारम्भिक तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं की स्थापना और उनके संचालन के व्यय में उचित हिस्सा प्रदान करें।

आर्थिक साधन—हर पंचायत में एक निधि होती है, जिसे ग्राम-पंचायत फण्ड के नाम से पुकारते हैं। इसमें शासन से प्राप्त अनुदान, पंचायत द्वारा लगाये गए करों की राशि, ताल्लुका बोर्डों द्वारा दिये गए भाग की धन-राशि तथा पंचायत द्वारा स्वयं प्राप्त की गई धन-राशि सम्मिलित होती है। पंचायत को अधिकार है कि वह पेशा, व्यापार, और मकान पर कर लगाये। इसी प्रकार गलियों, बाजारों, और त्योहारों के ऊपर भी पंचायतें अपनी स्वेच्छा से कर लगा सकती हैं। भूराजस्व का ३० प्रतिशत इन

पंचायतों को वैधनिक रूप से दिया जाता है।

ताल्लुका-बोर्डों की आय उनके द्वारा लगाये गए उपकर द्वारा तथा करों से प्राप्त आमदनी और शासन द्वारा दिये गए अनुदान की आमदनी है। ताल्लुका-बोर्डों को यह भी अधिकार है कि वह पशुओं के विक्रय पर तथा अचल सम्पत्ति पर कर लगाये। इसके अतिरिक्त शासन [illegible], जो १२ नये पैसे प्रति रुपया के हिसाब से मालगुजारी पर लगाया जाता है, से प्राप्त आय इन बोर्डों को देता है। मालगुजारी का २० प्रतिशत भी इन ताल्लुका-बोर्डों को दिया जाता है।

राजस्थान

ग्रामीण जन-संख्या	१,३०,२४०
पंचायतों की संख्या	७,३६४
ग्रामीण जनता का अनुपात, जो पंचायत-क्षेत्र में सम्मिलित हो चुका है	१०० प्रतिशत
ग्रामों की संख्या, जो पंचायत-क्षेत्र में आ चुके हैं	३४,२२१
पंचायत-क्षेत्र में आनेवाले कुल ग्रामों की संख्या का प्रतिशत	१०० प्रतिशत
पंचायत की औसत जन-संख्या	१,७७३
पंचायत-समितियों की संख्या	२३२
जिला-परिषदों की संख्या	२६

पंचायत के सरपंच अपने क्षेत्र की समिति के पदेन सदस्य होते हैं। उसी प्रकार समितियों के प्रधान जिला-परिषदों के पदेन सदस्य होते हैं। विधान-सभाओं के सदस्य समितियों के सदस्य होते हैं। परन्तु उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता। जिला-परिषद् में स्थानीय विधान-सभाई, संसद-सदस्य पूर्ण सदस्य होते हैं। पंचायत-समिति में दो महिलाओं, एक परिगणित जाति तथा एक आदिम जाति के सदस्य को सम्मिलित किये जाने का भी विधान है। यदि इस प्रकार के सदस्य निर्वाचित न हुए हों तो शासन-प्रबन्ध में दक्षता-प्राप्त दो व्यक्तियों तथा सहकारी समितियों से एक-एक सदस्य लेने की व्यवस्था है। इसी प्रकार जिला-परिषद् में भी महिलाओं, परिगणित तथा आदिम जातियों, सहकारी समितियों तथा शासन-प्रबन्ध से सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तियों के भी सम्मिलित किये जाने का विधान है। जिला के सहकारी बैंक का अध्यक्ष जिला-परिषद् का पदेन सदस्य होता है। ग्राम-पंचायतों के चुनाव गुप्त प्रणाली के अनुसार कराये जाते हैं।

ग्राम-पंचायत अपने प्रतिदिन के कार्य-संचालन के लिए एक सेक्रेटरी की नियुक्ति करती है। पंचायत-समिति का कार्यवाह अधिकारी विकास-खण्ड-अधिकारी होता है। जिला-परिषद् के लिए भी सेक्रेटरी नियुक्त किये जाते हैं। जिले का विकास-अधिकारी परिषद् का पदेन सदस्य होता है। विकास-विभाग के जिला-स्तर के अधिकारी परिषद् की बैठकों में भाग ले सकते हैं, लेकिन उन्हें मत देने का अधिकार नहीं होता। समिति और परिषद् का काम सुचारू रूप से चलाने के लिए उप-समितियों की व्यवस्था की जाती है।

कार्य तथा कर्त्तव्य—ग्राम-पंचायत कृषि-उत्पादन, पशु-सुधार, जन-स्वास्थ्य, तथा सफाई का प्रबन्ध, मातृ तथा शिशु-कल्याण ग्रामीण मार्गों का निर्माण तथा संरक्षण, बाजार, गोदाम, पुलों, नालियों का प्रबन्ध, शिक्षा-प्रसार तथा गांव में चौकी और पहरे का प्रबन्ध आदि कर्त्तव्य सौंपे गये हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी समितियों की स्थापना, श्रमदान, भूमि-सुधार-कार्यों में सहायता आदि का कार्य भी पंचायतों का उत्तरदायित्व ठहराया गया है।

और शासकीय सहायता करती है और पंचायत-समिति तथा जिला-परिषद् के सदस्यों को विकास, कृषि, पशु-पालन, सहकारिता आदि विषयों पर उचित रूप से प्रशिक्षण दिया जाता है।

हिमाचल प्रदेश

हिमाचल प्रदेश का निर्माण १९४८ में हुआ। पंजाब पंचायत-राज अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रदेश में पंचायतें स्थापित की गई थीं, जिनके बहुत सीमित अधिकार थे। १९५२ में हिमाचल प्रदेश पंचायत-राज अधिनियम के अन्तर्गत निर्वाचित पंचायतों की स्थापना की गई। हिमाचल प्रदेश में क्षेत्रीय परिषद् (टेरीटोरियल काऊंसिल) काम कर रही है। ब्लाक-स्तर पर इन क्षेत्रों में खण्ड-विकास-समितियों को विकास-सम्बन्धी कार्यों में उचित संयोग तथा परामर्श देने का अधिकार दिया गया है। हिमाचल प्रदेश में तहसील-स्तर पर तहसील-पचायतें भी काम कर रही हैं। केंद्र-प्रशासित क्षेत्रों में पंचायतों की स्थापना तथा उचित संशोधनों के साथ खण्ड और जिला के स्तर पर भी पंचायतों के संगठन का उद्देश्य वहां की स्थानीय परिस्थितियों तथा क्षेत्रीय परिषदों को ध्यान में रखते हुए स्वीकृत कर लिया गया है।

ग्रामीण जन-संख्या	१४·०० (लाख में)
ग्राम-पंचायतों की संख्या	५१८
गांव की जन-संख्या, जिनमें पंचायतें बन चुकी हैं	११,३५३
गांव का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें बन चुकी हैं	१०० प्रतिशत
ग्रामीण जन-संख्या का प्रतिशत, जिनके लिए पंचायतें स्थापित की जा चुकी हैं	१०० प्रतिशत
प्रति पचायत औसत जन-संख्या	२,१२४

हिमाचल प्रदेश पंचायत-राज अधिनियम १९५२ के अन्तर्गत प्रत्येक पटवार क्षेत्र के लिए ग्राम-पंचायतों की स्थापना की गई है। प्रत्येक ग्राम-पंचायत में मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन-प्रणाली पर आधारित ७ से १५ सदस्यों का निर्वाचन हाथ उठाकर कराया जाता है। ग्राम-पंचायत के

कार्यकाल की अवधि ३ साल होती है। स्त्रियों और परिगणित जातियों के लिए स्थान सुरक्षित किये गए हैं। ग्राम-सभा को ग्राम-पंचायत द्वारा बनाये गए बजट को पास करने और उसके कार्यों पर विचार करने तथा उसे स्वीकृत करने का पूरा अधिकार प्राप्त है।

इस समय प्रदेश में ५१८ पंचायतें काम कर रही हैं। यह [illegible] किया गया है कि वर्तमान पंचायतों के क्षेत्र का पुनर्गठन किया जाए। इसके परिणाम-स्वरूप पंचायतों की संख्या लगभग ६०० हो जाएगी।

हिमाचल प्रदेश पंचायत-राज अधिनियम के अन्तर्गत पंचायतों को व्यापक अधिकार दिये गए हैं। सार्वजनिक मार्गों, [illegible], पुलों का निर्माण और उनका संरक्षण, प्राइमरी स्कूलों की मरम्मत, मातृ [illegible] शिशु-कल्याण, कृषि-विकास, सहकारिता तथा कुटीर उद्योग-धन्धों का प्रोत्साहन, पंचायती वनों की स्थापना-सम्बन्धी महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व [illegible] को सौंपा गया है। देहाती क्षेत्रों में [illegible] के लिए आवश्यक [illegible] ईमारती व अन्य प्रकार की लकड़ियों के जनता में वितरण का भी [illegible] कार पंचायतों को दिया गया है।

तहसील-स्तर पर तहसील-पंचायतों की स्थापना की गई है [illegible] १० से ४० तक सदस्य होते हैं। प्रत्येक पंचायत, म्युनिसिपल कमेटी, नोटीफाईड एरिया कमेटी से एक-एक प्रतिनिधि निर्वाचित होकर तहसील-पंचायत में आते हैं। इसके अतिरिक्त निर्वाचित सदस्यों की [illegible] चौथाई तक शासन द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। [illegible] प्रबन्ध, प्रौढ शिक्षा तथा पुस्तकालयों की स्थापना और [illegible] कारियों के प्रशिक्षण का कार्य भी इन तहसील-पंचायतों [illegible] है। सवाई (लोकल रेट) का [illegible] जाता है।

१९५९ में क्षेत्रीय परिषद् की [illegible] काम कर रही थी। [illegible] दायित्वों को [illegible] परिषद् का [illegible] आर्थिक सहायता प्रदान [illegible]

सार्वजनिक सड़कों, पुलों, और भवनों का निर्माण करना है। इसके अतिरिक्त स्वास्थ्य, पशु-पालन-सम्बन्धी कार्य भी इनको सौंपे गए हैं।

सन् १९५३ में ही हिमाचल प्रदेश पंचायत-राज अधिनियम के अधीन तृस्तरीय पंचायत-राज की स्थापना हुई थी, जो क्षेत्रीय परिषद् अधिनियम बनने से टूट गई। अब पुनः तृस्तरीय ढांचे के अनुसार पंचायत-राज स्थापित करने की योजना बनाई गई है।

विकास, प्रौढ़ शिक्षा, सहकारिता तथा कुटीर-उद्योगों से भी था। और यह सब काम हो सकता था उस ८५ प्रतिशत जनता के जागरूक सहयोग से, जो ग्रामों में बसती है। ग्राम एक बड़ी प्राचीन इकाई है। जबतक ग्रामीण जीवन अपने सब अंगों में पुष्ट न होता तबतक 'अधिक अन्न उपजाओ आन्दोलन' सफल होना सम्भव नहीं। सरकारी कर्मचारी अभी तक शान्ति-व्यवस्था रखने तथा कर-संग्रह को ही अपना काम समझते थे। आवश्यकता थी कि उनको विकास के नये काम के लिए तैयार किया जाय। अतः प्रसार-कार्य की नई पद्धति का निर्माण किया गया और २ अक्तूबर १९५२ को राष्ट्रपिता के जन्म-दिवस पर प्रशासन के इस नये ढांचे का प्रारंभ हुआ। इस कार्य के दो पहलू थे—एक तो यह कि प्रयोगशाला का ज्ञान खेत तथा ग्रामीण तक पहुंचाया जाय और दूसरा यह कि सरकारी कर्मचारी तथा जनता के बीच खाई को पाटा जाकर उन्हें एक दूसरे का साथी बनाया जाय और वे एक परिवार की तरह कार्य करने को आगे बढ़ें। देश में कुछेक विकास-खण्ड खुले। कर्मचारियों के नये निकट सम्पर्क ने जादू का काम किया। आशातीत उत्साह से जनता का सहयोग प्राप्त हुआ। काम सीमित होने के कारण प्रशिक्षण तथा पर्यवेक्षण का काम केन्द्र कर सकता था। परन्तु ज्यों-ज्यों काम विस्तृत हुआ त्यों-त्यों समस्या मांग करने लगी कि प्रशिक्षण तथा पर्यवेक्षण निकट से हो। कलेक्टर, सब डिविज़नल अफसर, जिला-स्तर के विभागीय कर्मचारी इसकी लपेट में आये। गांवों-गावों में काम होने लगे। विविध प्रकार के विकासात्मक काम थे। इन कामों को यदि सरकारी एजेन्सी द्वारा करना होता तो इतने कर्मचारियों की जरूरत होती कि उनका वेतन-भार ही असह्य हो जाता। उधर लाल फीताशाही का प्रभाव अधिक नियम बनाने लगा। लोगों का उत्साह मद पड़ने लगा। तो विकास-खण्ड के स्तर पर जन-सहयोग-प्राप्ति हेतु खण्ड-विकास-समितियों का निर्माण हुआ। जनता का उत्साह पुनः लौटने लगा। छोटे-छोटे काम पंचायतों तथा अन्य लोकतन्त्री संस्थाओं से करवाये जाने लगे। काम में अपनेपन की भावना कायम रखने के लिए जनता द्वारा अंशदान की व्य-वस्था भी रखी गई। श्रम की महान परन्तु सुप्त शक्ति को जगाने के लिए अंशदान श्रमदान के रूप में भी लिया जाने लगा। कार्य का महत्व बढ़ा।

देश का हर व्यक्ति तथा हर दल इसकी उपयोगिता स्वीकार करने लगा। और इसी अनुभव ने केन्द्र में सामुदायिक विकास-मन्त्रालय की आवश्यकता सुझाई। इस मन्त्रालय के मन्त्री हुए श्री सुरेन्द्रकुमार दे, जो वर्षों से अपने तन, मन, धन द्वारा सामुदायिक विकास-कार्य में जुटे थे। सामुदायिक विकास ने शनैः-शनैः विकास की नई पद्धति का निर्माण किया। इसमें सन्देह नहीं कि कल्याणकारी राज्य होने के नाते सब जनता के बहुत भले के लिए शासन रुपया जुटाता है। परन्तु इसमें दो बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है—

१. जनता की आवश्यकताओं तथा उनके निर्णयों के अनुसार योजना बने, और

२. योजना को पूरा करने में जनता का इतना हाथ रहे कि वह इसे अपनी योजना समझे।

इन दो उद्देश्यों की पूर्ति के प्रयत्न मे कुदरती तौर पर कार्यक्रम का बनना और उसका चलना जनता की इच्छानुसार होता है और कर्मचारी वर्ग उसको जनता के आदेशानुसार चलाता है।

इन ध्येयों की प्राप्ति के लिए निर्देशन के लिए तो जनता का प्रतिनिधि संसद विद्यमान है। परन्तु क्षेत्र में यह काम तो आखिर कर्मचारी-समुदाय द्वारा सम्पन्न होते हैं। तो प्रश्न था कि जहां काम पूरा होता है, वहां पर क्या किया जाय। पहले तो मनोनीत खण्ड-विकास-सलाहकार समितियां बनाई गई। इसी काल में देश में ग्राम-पंचायतों का नव-निर्माण भी हो रहा था तो एक तरफ तो सामुदायिक विकास-क्रम में जनता का प्रभाव-सम्पन्न सहयोग की प्राप्ति के वास्ते अंशदान की [illegible] रखा गया, जिसके अधीन हर ग्राम-विकास-कार्य में जनता को ५० प्रतिशत तक अंशदान देना पड़ता। यह अंशदान श्रमदान में भी दिया जा सकता था। परन्तु प्रश्न था कि सामूहिक रूप से इस अंशदान की पूर्ति [illegible] तो सर्वप्रथम पंचायतों को विकास-कार्य सम्पादन करने तथा अंशदान जुटाने के लिए प्रयुक्त किया गया।

इस पद्धति से योजना जनता की योजना हुई और [illegible] और इधर ग्रामीणों में आत्मविश्वास बढ़ा।

इसके पश्चात् यह समस्या सामने आई कि विकास-खण्ड-प्रशासन की इकाई जबतक नहीं बनेगी तबतक सामूहिक विकास का कार्य सब विभागों द्वारा सांभे तौर पर नहीं चल पायेगा। जिला-स्तर पर कलेक्टर को विकास-कार्यकर्ताओं का नेता बनाया गया और इसी तरह खण्ड-विकासाधिकारी को विकास-खण्ड के स्तर पर। परन्तु यह बात कागज पर ही रही। हर विभाग ने अपना सीधा सम्बन्ध अपने मातहतों से जोड़ा और सम्पर्क व्यवस्था अर्थात ट्रान्समिशन लाईन लम्बी बनती चली गई। और वह रही भी एकांगी। हर विभाग के कर्मचारी में, विकास-खण्ड-स्तर पर प्रशासन तथा विकास के एक सजीव शरीर बनाने की जो भावना आनी थी वह नहीं आ पाई। उधर खण्ड-विकास-सलाहकार-समितियां भी यह अनुभव करने लगीं कि आखिर उनकी सलाह का क्या लाभ जब कई बार उसका उल्लंघन भी कर दिया जाता है। वे चाहती थीं कि उनके अधिकार भी किसी कानून के अधीन पक्के कर दिये जायं। ये सब समस्याएं श्रीबलवन्तराय मेहता की अध्ययन-मण्डली के सम्मुख आईं और उनके सम्बन्ध में पूर्ण विचार तथा ऊहापोह के पश्चात् उन्होंने लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण का क्रम बनाया। इस क्रम का संक्षिप्त वर्णन चौथे अध्याय में किया जा चुका है। यह क्रम सामुदायिक विकास तथा देश के इतिहास में एक क्रान्तिकारी कदम है। इससे जनता की प्रेरणा तथा शक्ति-सम्पन्न खण्ड-विकास तथा जिला-परिषदों का निर्माण तथा समस्त कर्मचारी समुदाय का उनके अनुशासन में आचरण स्वयमेव उन ध्येयों को प्राप्त करवा देगा, जिनका कि वर्णन ऊपर किया जा चुका है। शनैः-शनैः कर्मचारी-समुदाय का भार जो बढ़ रहा था, वह पचायती स्वावलम्बन की भावनाओं द्वारा निग्रह में आ जायगा और जो नौकरशाही को डर तथा सन्देह के वातावरण में काम करवाने की पद्धति थी, वह अपने-आप विश्वास तथा आत्मानुशासन के भावो से ओतप्रोत होकर लोकशाही के आदर्शों को सार्थक करेगी।

इस तरह ग्राम-पंचायत से लेकर संसद तक एक पूर्ण सम्बद्ध सिलसिले का निर्माण हो गया है। शासन की चाबियां अब दिल्ली में न रहकर ग्राम-पंचायतों तक पहुंच गई हैं। १५ अगस्त, १९४७ को जिस स्वतन्त्रता ने दिल्ली में कदम रखा था, वह स्वतन्त्रता अब चलकर गांव-गांव में पहुंच

रही है। नौकरशाही लोकशाही में बदल रही है। मानव-मानव इस प्रेरणा-प्रद तथा जीवनदायक धारणा की प्राप्ति से अल्हादित हो रहा है। लोक-तन्त्र अब अपने चरम लक्ष्य को मानो प्राप्त हुआ-सा देख रहा है।

ग्राम्य प्रशासन, तथा सामाजिक जीवन के प्रशासन के सिवा और भी पहलू है, यथा आर्थिक, सांस्कृतिक आदि। इसलिए पंचायती राज की पद्धति को पूर्णतया सार्थक होने के लिए एक पुष्ट सहकारी संगठन तथा सहायक संस्थाओं यथा बाल, युवक तथा महिला-मण्डलों की आवश्यकता है।

इन संस्थाओं का भी निर्माण हो रहा है और इन सबके संगठन तथा विकास द्वारा सामुदायिक विकास जनता की वस्तु बन गई है। परन्तु इस सत्य को स्वीकार करना भी आवश्यक है कि वस्तुतः सामुदायिक विकास की पद्धति ने ही पंचायत-राज की इस नई परम्परा का रहस्योद्घाटन किया है। वरना यह बात इतिहास-सिद्ध है कि कूटनीतिज्ञ विष्णुगुप्त चाणक्य को भी यह कहना पड़ा था कि ग्राम-पंचायतों का ग्राम-ग्राम में संगठन राष्ट्र की पुष्टता में बाधक है। आज सामुदायिक विकास-मन्त्रालय की प्रेरणा से राष्ट्रपिता की वह घोषणा सार्थक हो रही है कि—

"स्वतन्त्र भारत में व्यक्ति ग्राम के लिए, ग्राम जिला के लिए, और जिला देश के लिए अपने प्राण तक भी न्योछावर करने को तैयार रहेगा।"

परन्तु हमें यह ध्यान रखना पड़ेगा कि जैसे केवल जन-संख्या किसी देश की शक्ति का मानदण्ड नहीं हो सकती, जैसा कि हमें इतिहास से प्रमाण मिला है, उसी प्रकार संस्थाओं की केवल संख्या से हम पंचा-यती राज की सफलता नहीं आंक सकते। बढ़ी हुई संख्या में संस्थाएं जब-तक वह भली प्रकार अपना काम न जानती हों, वरदान के स्थान पर अभि-शाप भी बन जाती हैं। अतः सर्वप्रथम आवश्यकता है [illegible] प्रशि-क्षण की और इससे भी पहले जरूरत है [illegible] इसके मूल रूप को समझनेवाले प्रशिक्षकों की। इस [illegible] समस्या के दोनों पहलुओं पर [illegible] कर रहा है। [illegible] तैयार किये जा रहे हैं, और [illegible] का विशाल प्रोग्राम है।

इस प्रकार का [illegible]

दलवन्दी के लिए कोई स्थान नहीं होगा। आखिर हर राजनैतिक दल साधारण जनता का कल्याण तो चाहता ही है। वर्तमान लोकतन्त्र की पद्धति में सर्वदलीय सरकार साधारणतया स्थापित नहीं होती। परन्तु इस पद्धति में तो जिला-परिषद में सब दलों के व्यक्तियों को कल्याणकारी कार्य करने का मौका प्राप्त होगा।

इस तरह सामुदायिक विकास ने क्रमशः विकसित होते-होते आज हमें ऐसे स्थल पर पहुंचा दिया है, जहां पहुंचकर हम पंचायती राज, सबका भला तथा स्वावलम्बन आदि के ध्येयों की उपलब्धि को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। गांव अब अपने गौरव को पहचान रहे हैं। देश के विकास-मार्ग में दलवन्दी की भावना का नाश हो रहा है। सब दल एक होकर विकास के कार्य में जुट रहे हैं। जाति-पांति तथा ऊंच-नीच के विचार से समाज मुक्त हो रहा है। गांवों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में सौरभ तथा सुरम्यता आ रही है। गांवों में वह सब सुलभताएं प्राप्त कराई जा रही हैं कि ग्रामीण जनता का अब नगरों के लिए आकर्षण कम हो रहा है। कुटीर-उद्योग ग्रामों में आ रहे हैं। यातायात सुधर रहे हैं। स्वास्थ्य-सम्बन्धी सुविधाएं गांवों में आ रही हैं और भारत की भावी आशा इसीमें है कि ग्राम्य क्षेत्र में यातायात, स्वास्थ्य, कुटीर उद्योग, लघु उद्योग, मनोरंजन, विकसित कृषि, फलोत्पादन की सुविधाएं पहुंचे। ग्राम पर्याप्त मात्रा में स्वावलम्बी हों। जनता का ग्राम्य क्षेत्र से नगरों को निष्क्रमण बन्द हो। इन्हीं कार्यों से ८५ प्रतिशत जनता का निर्वाह तथा उनकी वास्तविक आय बढ़ेगी और भारत का वास्तविक कल्याण होगा। इसकी सफलता का श्रेय समुदायिक मन्त्रालय को ही प्राप्त होगा, जिसके तत्त्वावधान में जनता के सामूहिक विकास का क्रम पंचायतों द्वारा संचालित होकर जनता का अपना काम बन रहा है और एक स्वसंचालित तथा स्वावलम्बी समाज का निर्माण हो रहा है।

: ७ :

न्याय-पंचायतें

अंग्रेजी काल में जब पंचायतों का पुनरुत्थान हुआ तो अधिकतर उन्हें कुछ मुकद्दमों के निर्णय करने का अधिकार दिया जाता था। मद्रास को छोड़ न्याय तथा प्रबन्ध-सम्बन्धी पंचायतें एक ही होती थी, जैसा कि पंजाब राज्य में अभी तक है। परन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् सर्वसम्मत विचारधारा यही है कि न्याय-पंचायतें प्रबन्ध-सम्बन्धी पंचायतों से पृथक होनी चाहिए। पंचायती न्याय के ध्येय तथा पद्धति पर सैद्धान्तिक विचार भूमिका में किया जा चुका है। अधिकतर लोग यह मानते हैं कि पंचायती न्याय की वास्तविक सफलता आपसी समझौते में है, क्योंकि इसमें झगड़ों में कमी होती है। इस दिशा में पंचायतों का काम वस्तुतः सराहनीय है। परन्तु एक संस्था तथा पद्धति के रूप में राजीनामा का प्रयोग हिमाचल प्रदेश में ही हुआ है, जहां न्याय-पंचायत से पृथक ग्राम-पंचायत ही समझौता-समिति का निर्माण करती है। हर राजीनामा-[illegible] में [illegible] को पहले ग्राम-पंचायत के पास प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। [illegible] एक समझौता-समिति नियुक्त करती है, जो दोनों पक्षों में समझौता कराने का प्रयत्न करती है। राजीनामा होने [illegible] अन्दर-अन्दर प्रमाण देना पड़ता है। [illegible] न्याय-पंचायत में जा सकता है। [illegible] समझौता हुआ और इस प्रयोग ने राजीनामा [illegible] का सफल साधन सिद्ध कर दिया है।

न्याय-पंचायतों को आमतौर पर [illegible][1] —

फौजदारी

१ [illegible] राजीनामा-योग्य मामले.

२. न्याय-पंचायत अपमान-सम्बन्धी मामले,
३. कुछेक वे मामले, जिनमें न्यायालय की अनुमति से राजीनामा हो सकता हो,
४. सीमित सीमा तक शान्ति हेतु जमानत लेना,
५. सीमित मूल्य तक चोरी व धोखाधड़ी के मामले,
६. टीका, अनिवार्य शिक्षा, पशु-अतिक्रमण, जूआ तथा नशाबन्दी अधिनियमों के अधीन अपराध।
७. गुजारा-प्राप्ति के प्रार्थनापत्र, दण्ड की सीमा साधारणतया सौ रुपये जुर्माना तक रखी गई है। न्याय-पंचायतें कारावास का दण्ड नहीं दे सकतीं। कुछ प्रदेशों में पंचायतों को श्रेणियों में बांटा गया है और उत्तम श्रेणी में रखी गई पंचायतों के मामलों को सुनने तथा दण्ड-सम्बन्धी अधिकार बढ़ा दिये जाते हैं। जुर्माना-प्राप्ति आदि कार्यों में मैजिस्ट्रेट सहायता देते हैं।

दीवानी

दीवानी मामलों में अधिकार सौ रुपये के मामले मूल्य से लेकर पांच सौ रु० मूल्य के मामले तक साधारण वादों में अधिकार दिये हैं। डिगरी होने पर न्याय-पंचायत स्वयं डिग्री पूर्ति का समय देती है। यदि न हो तो फिर न्यायालय को निर्णय भेज दिया जाता है, जो उसका अपने निर्णय की तरह पालन करवाता है।

माल-सम्बन्धी

कुछेक राज्यों ने तो माल-सम्बन्धी अधिकार साधारण कोटि के दे रखे हैं। कुछेक ऐसे अधिकार देने के विरुद्ध हैं। परन्तु इन्तकाल, वापसी कब्जा तथा साधारण लगान-प्राप्ति के मामलों में न्याय-पंचायतों को अधिकार रहने ही चाहिए।

साधारणतया इन्हीं आधारों पर हर राज्य में न्याय-पंचायतों का संगठन हो रहा है।

पिछली दो योजनाओं में न्याय-पंचायतों के कार्य में पर्याप्त प्रगति हुई है। अब न्याय-पंचायतों की उपादेयता में कोई दो मत नहीं हैं।

यह एक बड़ा ही उत्साहवर्धक लक्षण है कि भारत का वकील समु-

दाय भी इनके पक्ष में है। हाल ही में न्याय-पंचायतों के कार्य की समीक्षा के लिए विधि-आयोग ने एक अध्ययन-मण्डली नियुक्त की है, जिसकी रिपोर्ट शीघ्र प्रकाशित होने की सम्भावना है। उसके सम्मुख प्रस्तुत होनेवाले गवाहों ने भी इस बात की पुष्टि की है।

न्याय-पंचायतों के सम्बन्ध में जो प्रयोग विभिन्न राज्यों में चल रहे हैं, उनका संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है :

विभिन्न राज्यों में न्याय-पंचायतें

असम

पंचों व सरपंचों के गुण : न्याय-पंचायत का सदस्य २५ वर्ष का तथा गांव-सभा का रहनेवाला ही होता है। अदालत का चेयरमैन अदालत की कार्यवाही लिखने में भी समर्थ होता है।

अदालत (न्याय-पंचायत) का निर्माण : पंचायती अदालत की स्थापना पांच और ज्यादा ग्राम-सभाओं के लिए की जाती है। प्रत्येक ग्राम-सभा पंचायती अदालत के लिए दो सदस्य चुनती है, जिनमें से जिला न्यायाधीश पांच व्यक्तियों को चुन लेता है, जिसमें कोई भी व्यक्ति ग्राम व आंचलिक पंचायत का सदस्य प्रधान और उप-प्रधान नहीं होता। यह व्यक्ति विधान-सभाई, संसद-सदस्य और वकील भी नहीं होते। अदालत के सदस्य अपने में से किसी व्यक्ति को, जो कि कार्यवाही लिखने में समर्थ हो, चेयरमैन चुन लेते हैं। ग्राम-पंचायत के प्रधान को भी [illegible] यदि वह धारा १२७ में वर्णित अभियोग में कोई [illegible] न [illegible]।

समझौता-कार्य तथा न्याय : [illegible]

कराने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है।

पंचायती अदालत अपने इलाके में [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

३५२, ३५६, के बारे में यदि अपराध-ग्रस्त सम्पत्ति ५० रु० तक हो। ४२६ (घाटा और नुकसान, यदि अपराधग्रस्त सामग्री ५० रु० तक हो) ४४७, ४४८, ४६१, ३०४, ५०६ (पहला भाग) तथा ५१०।

२. पशुओं का अत्याचार से बचाव अधिनियम, १८८०, धारा ४, ५, ५ अ, ६, ६ ग, और ७।

३. पशु-अतिक्रमण-अधिनियम, १८७१ के अधीन अनुभाग २० से २४ तक।

४. टीका लगाने अधिनियम, १८८० के अन्तर्गत धारा ६ और १८।

५. उत्तर भारतीय घाट अधिनियम १८७८ की २६ और २८ की धाराएं।

६. जनता नशा-अधिनियम, १८६७ की धारा ३, ४ और ७।

७. असम विद्यार्थी तथा नवयुवक धूम्रपान अधिनियम, १९२३ के अन्तर्गत सब अपराध।

इसके अतिरिक्त सरकार की इच्छानुसार अन्य अपराध की जांच भी न्याय-पंचायत को दी जा सकती है।

न्याय-पंचायत ऐसे किसी भी अपराधी के मुकद्दमे की जांच नहीं करेगी, जोकि पहले भारतीय दण्ड संहिता के १७वें अध्याय के अधीन जेल में रह चुका हो और जैसा कि बिहार अधिनियम में है, भारतीय दण्ड संहिता के अनुभाग १०९ और ११० के अधीन जिसका कि चाल-चलन अच्छा न हो। यह पंचायत शराब पीने के आदी अपराधी के मुकद्दमे की भी जांच नहीं कर सकती। इसे कैद की सजा देने के अधिकार भी नहीं है, परन्तु यह २५ रु० तक जुर्माना कर सकती है। यदि कोई अपराधी १६ वर्ष से कम आयु का हो तो पंचायत चेतावनी देकर धारा १०४ के अन्तर्गत छोड़ सकती है। धारा १०५ और १०६ के अधीन पंचायत जुर्माने में से आवेदक की इस दशा में सहायता कर सकती है, जबकि मुकद्दमा झूठा निकले। पंचायत को धारा १०९ के अधीन जुर्माना करने का भी अधिकार है।

बिहार अधिनियम की धारा ६५ (ख) (ग) और (घ) के अनुसार

असम की न्याय-पंचायतें भी २५० रु० मूल्य तक के दीवानी मुकद्दमे की जांच करती हैं। इसके अतिरिक्त यह पंचायत झूठे मुकद्दमे किये जाने द्वारा नुकसान पहुंचने तथा अचल सम्पत्ति के बारे में किये गए अभियोगों के अतिरिक्त सट्टे आदि से प्राप्त की जानेवाली रकम के बारे में किये गए मुकद्दमों की भी सुनवाई करती है। धारा ११ के अधीन सरकार इसे किसी अन्य मुकद्दमे की सुनवाई के लिए भी कह सकती है। यह पंचायत सहकारी हिसाब-किताब की बाकी पर किये गए अभियोगों की जांच भी नहीं करेगी जबतक कि यह बाकी दोनों पक्षों और कार्यकर्ताओं द्वारा न निकाली गई हो।

यह अदालत ऐसे किसी मामले को, जो कि न्यायालय में विचाराधीन हो, या पहले उसके द्वारा निर्णीत हो, की सुनवाई नहीं कर सकेगी। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से अधिकार इन पंचायतों को दिये गए हैं।

आन्ध्र

निर्माण : न्याय-पंचायतों की स्थापना कुछ ग्रामों के समूह के लिए होती है। प्रत्येक ग्राम-पंचायत का प्रधान न्याय-पंचायत का पदेन सदस्य होता है। इन सदस्यों द्वारा हरिजन तथा आदिम जातियों और स्त्रियों में से सदस्य सहयोजित करने की व्यवस्था है। न्याय-पंचायत के सदस्य अपने प्रधान और उप-प्रधान को चुनते हैं। प्रत्येक न्याय-पंचायत के साथ समझौता-समिति को भी स्थापित किया गया है। न्याय-पंचायत किसी अभियोग की जांच नहीं करती जबतक कि समझौता-समिति का प्रयत्न-[illegible] साध न हो। समझौता-समिति में तीन सदस्य होते हैं। न्याय-पंचायत का उप-प्रधान इसका प्रधान होता है।

फौजदारी अभियोग : न्याय-पंचायत निम्नलिखित अभियोगों की जांच करती है—

१. भारतीय दण्ड संहिता की धारा १६०, [illegible] ३२३, ३३४, ३५२, ३५८, ५०४ और ५१० [illegible] और ४२६ के अन्तर्गत अभियोग [illegible] नुकसान की रकम ५० रु० तक हो।

२. मद्रास नगर [illegible] १८८८ की धारा [illegible]

गंत उप-धारा ६, ११ और १२।

इसके अतिरिक्त न्याय-पंचायत भारतीय दण्ड संहिता तथा विशेष और स्थानीय कानून के अन्तर्गत निर्दिष्ट किये हुए ऐसे वाद की जांच कर सकती है, जिसमें जुर्माना तथा छः महीने से ज्यादा कैद न दी जा सकती हो। भारतीय दण्ड संहिता की धारा ५१० के अधीन यह १० रु० जुर्माना कर सकती है और दूसरे अभियोगों में १५ रु० तक, परन्तु कैद की सजा नहीं दे सकती।

कई बार, जहां कि पंचायत इस विचार की हो कि जुर्माना प्राप्त नहीं किया जा सकता, तो यह मामले को प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट को भेज देती है, जो कि मुजरिम को एक सप्ताह तक कारावास में रख सकता है।

न्याय-पंचायत किसी ऐसे अभियोग की जांच नहीं करती, जिसमें कि मुजरिम पहले जेल काट चुका हो और न्याय-पंचायत को भी जुर्माना अदा कर बैठा हो।

न्याय-पंचायत को जुर्माने में से आवेदक की सहायता तथा झूठे दायर किये गए वादों में मुजरिम की सहायता आवेदक पर हर्जाना डालकर करने का भी अधिकार है।

न्याय-पंचायत किसी ऐसे अभियोग की सुनवाई नहीं करती, जो कि न्यायालय के विचाराधीन हो या उसके द्वारा निर्णीत हो।

दीवानी तथा मालगुजारी वाद १०० रु० तक की मालीयत के न्याय-पंचायत द्वारा सुने जाते हैं, जैसा कि बिहार अधिनियम की धारा ६५ की उपधारा (बी०) और (डी०) में प्रावधान है। परन्तु पक्षों की स्वीकृति-नुसार २०० रु० तक के वादों की सुनवाई भी की जाती है। यह पंचायत किसी ऐसे वाद में, जो कि न्यायालय में विचाराधीन हो या उसके द्वारा निर्णीत हो, हस्तक्षेप नहीं करेगी।

उड़ीसा

धारा ५८ के अनुसार पंच लोग शिक्षित होते हैं और प्रधान कार्यवाही लिखने में भी समर्थ होता है।

जिला के प्रत्येक सरकल के लिए न्याय-पंचायत का निर्माण किया गया है। प्रत्येक ग्राम-सभा तीन ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति करती है, ज

कि वयस्क हों तथा उचित योग्यता रखते हों। यह व्यक्ति तत्पश्चात् न्याय-पंचायत का रूप धारण करते हैं और अपने में से किसी ऐसे व्यक्ति को, जो कि कार्यवाही आदि लिखने योग्य हो, प्रधान चुन लेते है।

सालिसी अधिनियम १९४० के अन्तर्गत न्याय-पंचायत समझौता करा सकती है, यदि दोनों पक्ष रजामन्द हों।

न्याय-पंचायत निम्नलिखित अभियोगों की जांच करती है—

१. भारतीय दण्ड संहिता की धारा १६०, १७३, १७९, २७७, २८९, २९०, २९४, ३२३, ३४१, ३५२ तथा ३७९, ४११, ४२५ (यदि अपराध-ग्रस्त सम्पत्ति ५० रु० तक हो) और धारा ५०४, ५०९ व ५१०।
२. पशु-अतिक्रमण-अधिनियम १८७१ की धारा २४, २६ और २७।
३. पोलिस एक्ट १८६१ की धारा ३४।

यह पंचायत मैजिस्ट्रेट द्वारा हवाले किये गए निम्नलिखित अभियोगों की सुनवाई भी करती है—

भारतीय दण्ड संहिता की धारा २८३, ४०३ (यदि वाद ग्रस्त सम्पत्ति का मूल्य ५० रु० तक हो), ४२८ (जहां पशु की कीमत १० रु० हो), ४३०, ५०६, ४४७ और ४४८।

न्याय-पंचायत कैद की सजा नहीं दे सकती। यह पंचायत किसी ऐसे वाद की सुनवाई भी नहीं कर सकती, जिसमें कि मुजरिम पहले [illegible] या ज्यादा कारावास में काट चुका हो। यह ५० रु० तक या हानि के [illegible] मूल्य तक जुर्माना कर सकती है तथा दोषी को जुर्माना अदा न करने पर १५ दिन तक जेल में भेज सकती है।

पंचायत को २५ रु० तक दोषी की मदद [illegible]
यदि वाद झूठा हो तो फौजदारी [illegible]
[illegible] बिहार अधिनियम की धारा [illegible]
[illegible] प्रथम [illegible] २५ रु० तक [illegible]
[illegible] १०० रु० तक [illegible]
[illegible]

६९ में २०० रु० तक, अचल सम्पत्ति के किराये की प्राप्ति २५ रु० तक। इसके अतिरिक्त पंचायत को और भी कई अधिकार दिये गए हैं।

यदि दोनों पक्ष रजामन्द हों तो वाद एक पंचायत से दूसरी पंचायत में भी तब्दील किया जा सकता है। पंचायत किसी भी ऐसे वाद में हस्त-क्षेप नहीं करेगी, जो कि न्यायालय के विचाराधीन हो अथवा उसके द्वारा जिसका निर्णय हो चुका हो।

उत्तर प्रदेश

गुण—पंच आवश्यकतानुसार पढ़े-लिखे होते हैं। यह शर्त उठाई भी जा सकती है, यदि पढ़े-लिखे व्यक्ति प्राप्य न हों। सरपंच और सहायक पंच कार्यवाही लिखने में भी समर्थ होते हैं।

निर्माण—जिला को सरकलों में विभक्त करके प्रत्येक सरकल के लिए एक न्याय-पंचायत का निर्माण किया गया है। पंचों का चुनाव गांव-पंचायत के सदस्यों में से निर्धारित अधिकारी द्वारा किया जाता है। वैसे तो शिक्षित व्यक्ति ही रखने की व्यवस्था है, परन्तु ऐसे व्यक्तियों की अनु-पस्थिति में दूसरे व्यक्ति भी नियुक्त कर लिये जाते हैं। यह लोग अपने में से सरपंच तथा सहायक सरपंच को चुन लेते हैं। यह व्यक्ति कार्यवाही लिखने की भी योग्यता रखते हैं।

न्याय-पंचायतों को दीवानी, फौजदारी तथा माल-सम्बन्धी अभियोगों के निर्णय करने के अधिकार भी हैं। न्याय-पंचायतें १०० रु० तक जुर्माना कर सकती हैं। दीवानी वादों में भी अधिकार-सीमा ५०० रु० तक की है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा १४०, १६०, १७२, १७४, १७९, २६९, २७७, २८३, २८५, २८९, २९०, २९४, ३२३, ३३४, ३४१, ३५२, ३५७, ३५८, ३७४, ३७९, ४०३, ४११ (५० रु० तक के मूल्य), ४२६, ४२८, ४३०, ४३१, ४४७, ४४८, ५०४, ५०६, ५०९ और ५१० के अन्तर्गत किये गए अपराधों तथा उनके लिए किये गए प्रयत्न और प्रोत्साहन से सम्बन्धित अभियोगों में निर्णय देने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त पशु-अतिक्रमण-अधिनियम १८७१, जिला बोर्ड प्राइमरी शिक्षा अधिनियम १९२६ तथा सार्वजनिक जुआ अधिनियम के अन्तर्गत अभि-योगों के सुनने का अधिकार भी इन पंचायतों को प्राप्त हैं। पंचायत-क्षेत्र

में शान्ति बनाये रखने के लिए १५ दिन की जमानत और मुचलका लेने का अधिकार भी इन पंचायतों को प्राप्त है।

केरल

कोई भी व्यक्ति न्याय-पंचायत का सदस्य बन सकता है, क्योंकि शिक्षित आदि होने का प्रावधान नहीं रखा गया है।

निर्माण—न्याय-पंचायतों का क्षेत्र एक गांव या गांवों के समूह के लिए होता है। शासन को अधिकार है कि वह छः पंचों तथा अध्यक्ष को मनोनीत करे। राज्य-सरकार पचायतों के परामर्श से इन पचो को मनोनीत करती हैं।

अधिकार—भारतीय दण्ड संहिता की धारा १६०, १७२, १७४, १७६, २६७, २६६, २७६, २८३, २८५, २८६, २६०, २६१, ३२३, ३३४, ३३६, ३५२, ३५८, ५०४ और ५१० के अन्तर्गत किये गए अपराधो तथा उनसे सम्बन्धित प्रयत्न और प्रोत्साहन से सम्बन्ध रखनेवाले अभियोगो के सम्बन्ध में निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है।

न्याय-पंचायत को १०० रु० तक जुर्माना करने का अधिकार है। जुर्माना न अदा करने की दशा में एक महीने की सादी कैद की सजा दी जा सकती है।

न्याय-पंचायत किसी ऐसे अभियोग की जांच नहीं कर सकती, जो कि न्यायालय द्वारा निर्णीत हो या विचाराधीन हो।

उपरिलिखित अधिकारों के अतिरिक्त यह अन्य ऐसे अभियोगो की सुनवाई भी कर सकती है, जो सरकार द्वारा भेजे जायं।

गुजरात और महाराष्ट्र

गुण—पंचों के लिए कोई गुण निर्धारित नहीं किये गए हैं।

निर्माण—न्याय-पंचायतें ग्रामों के समूहों के लिए स्थापित होती हैं, जिनकी संख्या पांच से कम नहीं होनी चाहिए। प्रत्येक ग्राम-पंचायत-क्षेत्र से ग्राम-पंचायत द्वारा एक पंच का चुनाव होता है, जो न्याय-पंचायत का काम करते हैं। ग्राम-पंचायत के प्रधान और उप-प्रधान पंच के रूप में नहीं चुने जाते। पंच अपने में से एक सरपंच का चुनाव करते हैं जो न्याय-पंचायतों की कार्यवाहियों की अध्यक्षता करता है। न्याय-पंचायत [illegible]

क्लर्क की सहायता भी दी जाती है।

अधिकार—समझौता कराने की कोई व्यवस्था नहीं की गई है। न्याय-पंचायत को भारतीय दण्ड संहिता की धारा २२०, २७७, २८३, ३२३, ३५२, ३६८, ३७९ (२० रु० तक मलकीयत की चोरी), ४२६ (जब हानि का मूल्य २० रु० तक हो), ४४७, ४४८, ४६१, ५०४, ५०६ तथा ५१० के अन्तर्गत अभियोगों के निर्णय का अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त पशुओं-सम्बन्धी अधिनियम, बम्बई जिला वैक्सीनेशन अधिनियम, प्रारम्भिक शिक्षा अधिनियम आदि के अन्तर्गत भी मुकद्दमे सुनने का अधिकार प्राप्त है। सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध मुकद्दमे सुनने का अधिकार इन पंचायतों को नहीं है। न्याय-पंचायतों को २५ रु० तक के जुर्माने करने का अधिकार प्राप्त है और शासन द्वारा यह राशि १०० रु० तक बढ़ा दी जा सकती है।

जम्मू और काश्मीर

गुण—इस राज्य में न्याय-पंचायत के पचों के लिए कोई विशेष गुण निर्धारित नहीं किये गए हैं।

निर्माण—प्रत्येक ग्राम-पंचायत-क्षेत्र के लिए एक पंचायती अदालत की स्थापना की जाती है, जिसमें पांच सदस्य होते हैं। यह सदस्य ग्राम-पंचायतों द्वारा निर्वाचित होते हैं, इन सदस्यों द्वारा एक चेयरमैन का चुनाव होता है। न्याय-पंचायत को एक क्लर्क भी मिलता है।

अधिकार—न्याय-पंचायत को भारतीय दण्ड-संहिता की धारा २००, २६९, २७७, २८२, २८५, २९४, ३२३, ३५२, ३५७, ३७९ (जबकि चोरी की सम्पत्ति का मूल्य १०० रु० तक हो), ४२०, (वादग्रस्त राशि ७५ रु० तक हो), ४३०, ४४७, ४४८, ५०४, के अन्तर्गत किये गए अभियोगों के निर्णय का अधिकार प्राप्त है। चोरी का अपराध उसी हालत में यह पंचायती अदालत सुन सकती है, जबकि अभियुक्त पकड़ लिया गया हो या पहचान लिया गया हो। पंचायती अदालत को २५ रु० तक जुर्माना करने का अधिकार है। अन्य अधिकारी, जैसे पशु-अतिक्रमण-अधिनियम, जुआ-अधिनियम, बाल-धूम्रपान-अधिनियम, आदि के अन्तर्गत दूसरे राज्यों के समान हैं।

यह पंचायत कैद की सजा नहीं दे सकती। ऐसे अभियोगों की सुनवाई, जो कि न्यायालय में विचाराधीन हों या उसके द्वारा निर्णीत हों, भी नहीं की जाती है।

दिल्ली

गुण—सरकल पंचायत का पंच हिन्दी और उर्दू लिखने तथा पढ़ने योग्य होता है।

निर्माण—लगभग आठ ग्राम-सभाओं के लिए एक अदालती (न्याय) पंचायत की स्थापना की जाती है। पंचों का चुनाव गुप्त निर्वाचन-प्रणाली के आधार पर होता है। पंच अपने में से सरपंच और नायब-सरपंच का चुनाव करते हैं। सरपंच अभियोगों के निर्णय के लिए बैंचों का निर्माण करता है।

न्याय-पंचायत को १०० रु० तक जुर्माना करने का अधिकार है। न्याय-पंचायतों को फौजदारी-सम्बन्धी तथा अन्य अधिकार उत्तर प्रदेश की न्याय-पंचायतों को दिये गए अधिकारों के समान है।

पंजाब

गुण—पंचायत के पंच और सरपंच गांव-सभा के सदस्य होते हैं। यह लोग इतनी योग्यता रखते हैं, जैसी कि विधान-सभाओं को चुने जाने के लिए निर्धारित है।

निर्माण—पंजाब में पृथक् न्याय-पंचायतों की स्थापना का विधान नहीं है। ग्राम-पंचायत ही को न्याय-पंचायत का भी अधिकार प्राप्त है। यदि किसी ग्राम-पंचायत को सरकार द्वारा न्याय-पंचायत-सम्बन्धी अधिक अभियोगों के निर्णय का अधिकार प्रदान किया जाता है, तो ऐसी अवस्था में पंचायतों को अधिकार है कि वे अदालती पंचों का निर्वाचन करें और इस दशा में चुने गये पंच अपने में से एक सरपंच का चुनाव कर सकते हैं और इनको अदालती पंचायत कहते हैं।

अधिकार—इन पंचायतों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा [illegible], १४३, १४४, १४५, १४८, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], २८८, २८९, २९०, २९१, २९४, ३२३, [illegible], [illegible] और [illegible] के अन्तर्गत अभियोगों के निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है। [illegible]

१०० रु० तक जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त है। यदि शासन चाहे तो इस सीमा को २०० रु० तक बढ़ा सकता है।

पंजाब वैक्सीनेशन एक्ट की धारा १६, पशु-प्रतिक्रमण अधिनियम की धारा २४ और २६, पंजाब प्राइमरी शिक्षा अधिनियम, १६१६ की धारा १३ और, उत्तर भारतीय नहर अधिनियम १८७३ की धारा ७० (४), तोल और माप अधिनियम की धारा २५ और ३५, पंजाब बाल-धूम्रपान एक्ट की धारा ३ और ४ तथा सार्वजनिक जुआ अधिनियम की धारा ३, ४ और ७ के अन्तर्गत भी अधिकार इन पंचायतों को प्राप्त हैं।

पश्चिमी बंगाल

गुण—राज्य में पंच बनने के लिए कोई गुण निर्धारित नहीं किये गए हैं।

निर्माण—प्रत्येक आंचल-पंचायत के लिए एक न्याय-पंचायत की स्थापना की जाती है। प्रत्येक न्याय-पंचायत में पांच ऐसे सदस्य होते हैं, जो कि आंचल-पंचायत द्वारा ग्राम-सभा के सदस्यों में से चुने जाते हैं और निर्धारित अधिकारी द्वारा स्वीकृत होते हैं। इन व्यक्तियों को विचारक के नाम से पुकारा जाता है। यदि एक आंचल-पंचायत में पांच ग्राम-सभाएं हो तो प्रत्येक में से एक विचारक की नियुक्ति कर ली जाती है, परन्तु यदि पांच से अधिक ग्राम-सभाएं हों तो उन्हें पांच समूहों में विभक्त किया जाता है और प्रत्येक समूह में से एक विचारक की नियुक्ति कर ली जाती है। यदि पांच-पांच से कम सभाएं हो तो प्रत्येक सभा एक विचारक की नियुक्ति करती है और कमी को निर्दिष्ट ग्राम-सभाओं में से पूरा किया जाता है। विचारक अपने प्रधान विचारक की नियुक्ति करते हैं। यदि किसी बैठक में प्रधान विचारक अनुपस्थित हो तो विचारक अपने में से किसीको प्रधान चुन लेते हैं। आंचल-पंचायत का सचिव ही न्याय-पंचायत के सचिव का काम भी करता है।

अधिकार—न्याय-पंचायत के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आनेवाले अभियोगों की सुनवाई अन्य अदालत नहीं कर सकती। न्याय-पंचायत को ५० रु० तक जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त है। जुर्माना की राशि में से सम्बन्धित व्यक्तियों के नुकसान को भी पूरा किया जा सकता है। न्याय-पंचा-

यतों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा १६०, २६६, २७७, २८६, २६०, २६४, ३२३, ३३५, ३३४, ३४१, ३५२, ३५८, ४२६, ४४७, ४४८, ५०४, और ५१० के अन्तर्गत मुकद्दमों के निर्णय के अधिकार प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त पशु-अतिक्रमण अधिनियम, बंगाल फैरीज एक्ट, बंगाल पुलिस एक्ट के अन्तर्गत भी कुछ प्रकार के अपराधों की सुनवाई के अधिकार प्राप्त है।

मद्रास

गुण—गुणों आदि की कोई व्यवस्था नहीं है।

निर्माण—हर गांव के लिए एक पंचायत की स्थापना की जाती है, जिसकी आबादी पांच सौ से कम न हो। पांच से पन्द्रह तक की सदस्य-संख्या का निर्धारित ढंग से चुनाव कराया जाता है।

अधिकार—न्याय-पंचायतों को १५ रु० तक के जुर्माने के अधिकार दिये गए हैं। एक सप्ताह की कैद का आदेश भी न्याय-पंचायतें दे सकती है। पंचायतों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा १६०, २७७, २८३, २६०, ३२५, ३३४, ३५२, ३५८, ३७६, ५०४, ५१०, के अन्तर्गत मुकद्दमे सुनने के अधिकार प्राप्त है।

बिहार

गुण—न्याय-पंचायतों की स्थापना ३ से ७ तक के गांवों के लिए होती है। प्रत्येक ग्राम-पंचायत का प्रधान न्याय-पंचायत, जिसे ग्राम-कचहरी कहते हैं, पदेन सदस्य होता है। इन सदस्यों को अधिकार है कि वे स्त्रियों तथा परिगणित जातियों में से कुछ सदस्यों को ग्राम-कचहरी में सह-योजित करे तथा अपने में से एक प्रधान और उप-प्रधान का चुनाव करे।

अधिकार—न्याय-पंचायत को भारतीय दण्ड संहिता की धारा १६०, २७७, २८३, २६०, ३२३, ३३४, ३५२, ३५८, ५०४ और ५१० के अन्तर्गत किये गए अभियोगों में निर्णय देने का अधिकार है। ३८६ के अन्तर्गत यदि चोरी के माल का मूल्य १० रु० से कम हो तो ग्राम-कचहरी इस प्रकार के अभियोगों का निर्णय कर सकती है। अन्य अधिकार दूसरे प्रदेशों के समान हैं।

अन्य विशेषताएं—बिहार पंचायत अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था की गई है कि ग्राम-कचहरी उन गांवों के लिए, जिनका

सम्बन्ध सार्वजनिक हित से हो, लोगों से अनिवार्य रूप से श्रम-कर ले सकें।

मध्य प्रदेश

गुण—पंचों तथा सरपंचों के लिए शिक्षा की कोई शर्त नहीं रखी गई है, परन्तु न्याय-पंचायत के लिए सचिव की व्यवस्था की गई है।

निर्माण—विकास-खण्ड-क्षेत्र को कई भागों में विभक्त करके न्याय-पंचायतों की स्थापना की जाती है। प्रत्येक क्षेत्र में एक से अधिक पंचायतें होती हैं। जिलाधीश प्रत्येक पचायत में से चुने जानेवाले सदस्यों की संख्या निर्धारित करता है। न्याय-पंचायत में आदिवासी, परिगणित जातियों तथा स्त्रियों में से सदस्यों को सहयोजित किये जाने की भी व्यवस्था है। पंच अपने में से एक प्रधान और एक उप-प्रधान का चुनाव करते हैं।

अधिकार—न्याय-पंचायतों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा १४०, १६०, १७२, १७४, १७८, १७६, २६६, २७७, २७६, २८३, २८५, २६०, २६४, ३२३, ३३४, ३३८, ३४१, ३५२, ३५५, ३५७, ३५८, ३७४, ३७६, ३८०, ३८१, ४०३, ४११, ४२०, (५० रु० तक), ४२८, ४२६, ४३०, ४४७, ४४८, ४५१, ५०४, ५०६, ५०६, और ५१० के अन्तर्गत किये गए अपराधों के विषय में निर्णय देने के अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त पशु-अतिक्रमण-अधिनियम, वैक्सीनेशन अधिनियम, बाल-धूम्रपान अधिनियम के अधीन भी पंचायतों को अधिकार प्राप्त हैं। न्याय-पचायत १०० रु० तक जुर्माना कर सकती है।

राज्य में समझौता-बोर्ड की स्थापना भी की गई है। यह बोर्ड प्रत्येक अभियोग में समझौता कराने की कोशिश करता है, ताकि लोग फजूल-खर्ची से बच सकें।

मैसूर

गुण—न्याय-पंचायत के सदस्य पढ़ने-लिखने में समर्थ हैं। पंचायतके लिए एक सचिव की नियुक्ति भी की गई है। यह सचिव क्लर्क का कार्य भी करता है।

निर्माण—मैसूर पंचायत अधिनियम १६५६ के अनुसार यह व्यवस्था

की गई है कि प्रत्येक पंचायत-क्षेत्र या पंचायतों के समूह के लिए यह स्थापना की जाय। पंचायत या पंचायत-समूह के क्षेत्र के ग्राम-पंचायतों के सदस्यों द्वारा उनमें से पांच सदस्यों का चुनाव कराया जाता है। ये पंच अपने में से एक चेयरमैन का चुनाव करते हैं, जो कि न्याय-पंचायत की कार्यवाही के लिखने-पढ़ने का कार्य करता है।

अधिकार—न्याय-पंचायतों को भारतीय दण्ड संहिता की धारा २६६, २७७, २८३, ३२३, ३५८, ३७६, ४२६, ४४७, ४४८, ४५१ और ५०४ के अन्तर्गत मुकद्दमों के निर्णय करने के अधिकार प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, पशु-अतिक्रमण-अधिनियम के अन्तर्गत भी इन्हें सामान्य अधिकार प्राप्त है। इन न्याय-पंचायतों को ५० रु० तक के जुर्माने के अधिकार प्राप्त है। यह पंचायत समझौता कराने का कार्य भी करती है।

इसके साथ-ही-साथ न्याय-पंचायत, यदि सरकार का हुक्म हो, किसी अन्य अभियोग की जांच भी करती है।

राजस्थान

गुण—न्याय-पंचायत के सदस्य ३० वर्ष की आयु से कम नहीं होते। यह व्यक्ति हिन्दी को शीघ्रतापूर्वक पढ़ तथा लिख सकते हैं।

निर्माण—एक से अधिक पंचायतों के समूह के लिए न्याय-पंचायत की स्थापना की जाती है। न्याय-पंचायत के क्षेत्र में सम्मिलित प्रत्येक पंचायत में एक पंच का चुनाव होता है, जो अपने चेयरमैन का चुनाव करते हैं।

अधिकार—न्याय-पंचायत भारतीय दण्ड संहिता की धारा १४०, १६०, १७२, १७४, १७५, १७८, १७६, १८०, १८८, [illegible], [illegible], २६४, [illegible], २६६, [illegible], २७८, २७६, २८३, २८५, २८६, २८८, २८६, २६०, २६४, ३२३, ३३४, ३३६, ३४१, ३५२, ३५६, [illegible], ३५८, ३७४, ३७६, ३८८, ३२१, ४०३, ४११ (जब [illegible] का मूल्य ५०,२० तक हो), ४२६, ४४८ (जब [illegible] सम्पत्ति का मूल्य ५० रु० तक हो), ४३०, ४४७, ४४८, ४५१, ५०४, ५०६, ५०९ और ५१० के अन्तर्गत आनेवाले अपराधों की सुनवाई कर सकती है।

इसके अतिरिक्त पशु-अतिक्रमण अधिनियम (१८७१), [illegible]

१८८०, पशु अत्याचार निवारण अधिनियम १८६०, राजस्थान सार्वजनिक जुआ अधिनियम १९४६, सिगरेट रोकथाम एक्ट १९५०, आदि के अन्तर्गत आनेवाले अभियोगों की जांच करने का न्याय-पंचायत को अधिकार है।

न्याय-पंचायत केवल ५० रु० तक जुर्माना कर सकती है।

जहांतक दीवानी तथा माल के अभियोगों का सम्बन्ध है, यह पंचायत केवल २५० रु० की मालियत तक के वाद की सुनवाई कर सकती है, परन्तु सरकार की स्वीकृति पर ५०० रु० तक के भी।

पंचायतें समझौता कराने में भी कदम उठा रही है।

हिमाचल प्रदेश

गुण—न्याय-पंचायत के पन्द्रह पंचों को चुनते समय, जो कि प्रदेश के निवासी ही होते हैं, ग्राम-सभा यह देख लेती है कि इनमें से लगभग तीन-चार व्यक्ति पंचायत की कार्यवाही हिन्दी में लिखने योग्य हैं।

निर्माण व अधिकार—हिमाचल प्रदेश पंचायत-राज अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि न्याय-पंचायतों के सम्मुख अभियोग दायर किये जाने से पहले ग्राम-पंचायत की समझौता-समिति वादी-प्रतिवादी में आपसी सुलह कराने का प्रयत्न करे और यदि सुलह न हो सके तो अभियोग स्थानीय न्याय-पंचायत के सम्मुख दाखिल किया जाय।

प्रत्येक ग्राम-पंचायत एक समिति नियुक्त करती है, जिनमें तीन से पांच तक सदस्य होते हैं। इस समिति को समझौता-समिति कहते हैं। यदि समझौता-समिति विभिन्न पक्षों में समझौता कराने के अपने उद्देश्य में सफल न हो तो अभियोग न्याय-पंचायत के सम्मुख दाखिल किये जाते हैं।

प्रत्येक ग्राम-सभा-क्षेत्र के लिए एक न्याय-पंचायत की स्थापना की जाती है। इसमें पन्द्रह सदस्य होते है, जो अपने में से एक सरपंच और एक या दो नायब सरपंचों का चुनाव करते हैं। इन न्याय-पंचायतों को दीवानी, फौजदारी तथा माल-सम्बन्धी तीनों प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं। दीवानी वादों की सीमा १०० रु० तक है। माल-सम्बन्धी अधिकारों के अधीन सीमा-सम्बन्धी वादों का निर्णय करना न्याय-पंचायत

का काम है। फौजदारी के अभियोगों का न्याय-पंचायतों को १०० रु० तक जुर्माना करने का अधिकार प्राप्त है। अपने क्षेत्र में शान्ति बनाये रखने के लिए पन्द्रह दिन की जमानत व मुचलका लेने का अधिकार भी इन्हें प्राप्त हैं।

भारतीय दण्ड संहिता की निम्नलिखित धाराओं के अन्तर्गत किये गए अपराधों तथा उनसे सम्बन्धित प्रोत्साहन-सम्बन्धी अभियोगों में निर्णय देने का अधिकार प्राप्त है :

१६०, १७२, १७८, २२८, २६४, २६५, २६६, २६७, २७७, २७९, २८३, २८५, २८६, २८८, २९०, ३२३, ३३४, ३३६, ३४१, ३५२, ३५८, ४०३, ४०६, ४११, ४१७ (१०० रु० तक) ४२६ (५० रु० तक), ४२९ (५० रु० तक), ४४७, ४९८, ५०४, ५०६, ५०९ और ५१० आदि।

इनके अतिरिक्त पशु-अतिक्रमण-अधिनियम, सार्वजनिक जुआ अधिनियम, तथा वैक्सीनेशन एक्ट आदि के अधीन भी अधिकार हैं।

न्याय-पंचायतों के क्रम में अपील तथा निगरानी का भी प्रावधान रहता है, जिसका संक्षिप्त विवरण भूमिका में किया जा चुका है। और आमतौर पर अपील के अधिकार न्याय-पंचायत के समस्त सदस्यों [illegible] देने को अथवा ऊपरवाली पंचायत को है और निगरानी [illegible] अदालतों को।

न्याय-पंचायतों के कार्य का [illegible] तथा कुछ सुझाव

न्याय-पंचायतों के विकास के सम्बन्ध में पहला [illegible] का कमीशन [illegible] सन् १९५८ में किया और इसने कुछ सुझाव दिये। [illegible] इस आयोग की रिपोर्ट के अध्याय [illegible] में [illegible] है। [illegible] के [illegible] में जून १९६० में विचार हुआ। [illegible] नियुक्त करने का निश्चय किया और अक्टूबर १९६० में [illegible] हुआ, जिसके निम्नलिखित सदस्य थे—

१. श्री जी० आर० राजगोपाल,

स्पेशल सेक्रेटरी —अध्यक्ष

२. श्री ए० प्रकाश,
कमिश्नर, पंचायती-राज —सदस्य

३. श्री के० आर० प्रभु,
डेपुटी सेक्रेटरी —सदस्य

श्री के० आर० प्रभु को अन्य कार्यवश यह सदस्यता छोड़नी पड़ी और उनका स्थान श्री एल० एम० नादकरणी, ज्वाइंट सेक्रेटरी ने लिया।

इस मण्डली ने समस्त राज्यों तथा संघ-क्षेत्रों से विवरण मंगवाये, प्रश्नावली भेजकर मत प्राप्त किये और सारे देश का भ्रमण करके राज्यों, अधिकारियों, नेताओं तथा जनता से सम्पर्क स्थापित करके लोगों के विचारों का संकलन किया तथा न्याय-पंचायतों का चलन देखा। इस मण्डली की रिपोर्ट अप्रैल १९६२ में प्रकाशित हुई और जिन निष्कर्षों पर यह मण्डली पहुंची, उसका सार उन्हींके शब्दों में इस प्रकार है—

१. न्याय-पंचायतों को भारत के इतिहास में एक महत्व का स्थान प्राप्त है और अतीत में उनकी सफलता इस बात की ओर संकेत करती है कि इनके पुनर्जीवन तथा समयानुसार ठीक सांचे में ढालने से हम सही रास्ते में एक ऐसा कदम उठायेंगे, जिससे कि कानून तथा न्याय-प्रदान के कार्य में जन-मानस के भाव प्रतिविम्बित होंगे तथा यह पद्धति एक बार फिर जन-मूलक हो जायगी।

२. न्याय-वितरण-कार्य में जन-साधारण के सहयोग का कतिपय मुख्य देशों में अध्ययन यह स्पष्टतया प्रकट करता है कि युक्त प्रतिबन्धों सहित जन-साधारण में से लिये गए न्यायाधीशों की संस्था को सफल बनाना कठिन नहीं होगा, यदि इसकी आवश्यकता अनुभव की जाय।

३. संविधान की धारा ४० में वर्णित लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के क्रम के चलन से गांव के लोगों में साधारण जागृति आई है और अब यह स्पष्ट है कि उपयुक्त सुझाव के अनुसार पंचायती संस्थाएं सफलता-पूर्वक चल सकती हैं।

४. जहां भी न्याय-पंचायतें हैं, वे जनता की इस वास्तविक आव-

श्यकता की पूर्ति करती हैं कि वह उनके विवादों को कम-से-कम समय तथा व्यय में सुचारु रूप से सुलझा देती हैं। गो न्याय-पंचायतों के विरुद्ध की गई कुछ आलोचना में सचाई है, परन्तु समुचित उपायों से इन आलोचनाओं द्वारा प्रकट की गई त्रुटियों को दूर किया जा सकता है।

५. ग्राम-पंचायतों को, जो प्रबन्ध-सम्बन्धी अधिकारों से सम्पन्न हैं, न्याय-सम्बन्धी अधिकार देना न तो आवश्यक है, न ही वांछित और न्याय को प्रबन्ध से पृथक करने का सिद्धान्त ग्राम-स्तर तक अनुकरणीय होना ठीक ही है।

६. दलबन्दी के बुरे प्रभावों से बचने के लिए न्याय-पचायतें ग्रामों के समूह के वास्ते बनाई जानी चाहिए। इन समूहों का निर्माण, क्षेत्र, समीपता, जन-संख्या, यातायात के साधनों, आदि बातों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। जहां ग्राम इतना बड़ा हो कि एक ही ग्राम के लिए एक न्याय-पंचायत की स्थापना जरूरी समझी जाय तो ग्राम को वार्डों में बांटा जा सकता है।

७. न्याय-पंचायतों के निर्माण में किसी प्रकार के मनोनीतिकरण को स्वीकार नहीं किया जा सकता। ग्रामीणों को इस कार्य में स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष चुनाव में से किसी एक पद्धति को स्वीकार किया जा सकता है। अप्रत्यक्ष चुनाव ही इस समय सर्वोत्तम रूप मालूम देता है और अप्रत्यक्ष चुनाव के विभिन्न तरीकों में से सर्वोत्तम यही मालूम देता है कि हर ग्राम-पंचायत न्याय-पंचायत-क्षेत्र के लिए निर्धारित संख्या में पंच चुने।

८. एक ही व्यक्ति को न्याय तथा ग्राम, दोनों पंचायतों पर रखा जाना उचित नहीं होगा।

९. सर्व-सम्मति से न्याय-पंचायत के सदस्यों के निर्वाचन को प्रोत्साहन देना उचित होगा।

१०. न्याय-पंचायत का प्रधान उस पंचायत के सदस्यों [illegible] [illegible] चुना जाना चाहिए।

११. न्याय-पंचायत के कार्य में सफलता लाने के लिए आवश्यक

है कि सदस्यों का एक भाग एक बार पद त्याग करे।

१२. न्याय-कार्य में स्त्रियों का शामिल करना बड़ा ही जरूरी होगा। इसलिए यह प्रावधान रहना चाहिए कि कम-से-कम महिलाएं हर न्याय-पंचायत में सहयोजित की जायं।

१३. अनुसूचित जातियों में से भी न्याय-पंचायत में सहयोजन उस समय तक आवश्यक होगा जबतक कि उन्हें संविधान के अधीन सुविधाएं प्राप्त हैं।

१४. ३० वर्ष की न्यूनतम आयु तथा भली प्रकार लिखने-पढ़ने की क्षमता न्याय-पंचायत के पंच की योग्यता रहनी चाहिए। सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यता रखना ठीक नहीं होगा। पिछड़े वर्गों की दशा में कुछ ढील दी जानी आवश्यक रहेगी।

१५. न्याय-पंचायतों के सुचारु रूप से संचालन के वास्ते यह जरूरी होगा कि पंच भली प्रकार प्रशिक्षित हों। यह प्रशिक्षण-कार्य एक सुबोध पथ-प्रदर्शिका के इर्द-गिर्द केन्द्रित हो। प्रशिक्षण-शिविर तथा पत्रिकाएं भी सहायक हो सकती हैं। अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए आवश्यक होगा कि प्रोग्राम अखिल भारतीय हो।

१६. न्याय-पंचायतों को, जहां मामलों को सुनने के अधिकार हों, उनके सुनने का किसी और को साथ-ही-साथ अधिकार नहीं होना चाहिए।

१७. नागरिक न्याय में इनके अधिकार साधारण लेन-देन के वादों तक रहने चाहिए, जिनका विशेष विवरण अध्याय ९ के पैरा २ में है।

१८. श्रवण हेतु आर्थिक सीमा २५० रु० तक होनी चाहिए, जो पक्षों की स्वीकृति से ५०० रु० तक जा सके। यह सत्ता २५० रु० से ५०० रु० तथा ३०० से १००० रु० तक बढ़ाई जा सकती है।

१९. न्याय-पंचायतों के अधिकार असीमित परिधि तक पक्षों की स्वीकृति से नहीं बढ़ सकने चाहिए।

२०. विवाह-सम्बन्धी वादों में न्याय-पंचायतों को अधिकार देने का समय अभी आने को है। परन्तु इन्हें भारतीय दण्ड प्रक्रिया की धारा ४८८ आदि में रिपोर्ट लेने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

२१. फौजदारी में न्याय-पंचायतों को छोटे-छोटे मामलों के अधिकार दिये जाने चाहिए, जिनका वर्णन अध्याय ६, पैरा १३, १४, १५ में किया गया है।

२२. न्याय-पंचायतों को ५० रु० तक जुर्माना करने का अधिकार होना चाहिए, जो १०० रु० तक बढ़ाया जा सके। परन्तु कारावास-दण्ड देने का अधिकार इन्हें किसी भी दशा में न होना चाहिए।

२३. धारा १४४ आदि के अधीन पंचायतों को मनाही की आज्ञा जारी करने अथवा शान्ति कायम रखने के लिए जमानत लेने के अधिकार नही होने चाहिए।

२४. अधिक अधिकार देने के लिए पंचायतों का वर्गीकरण उचित नहीं होगा।

२५. माल के मामलों में न्याय-पंचायतों को कोई भी अधिकार देना उचित नहीं होगा। अलबत्ता उन्हें रिपोर्ट लेने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

२६. मुकद्दमों को निर्णय हेतु प्रस्तुत करने से पूर्व राजीनामा की पद्धति की उपयोगिता से कोई इन्कार नही कर सकता।

२७. यह कार्य न्याय-पंचायत के अधीन रहना चाहिए कि वह राजी-नामे के लिए पृथक् कमेटी बनाये या नही।

२८. जिन मुकद्दमों में राजीनामा किया जा सके वह वे ही होने चाहिए, जिन्हें उनको सुनने का अधिकार प्राप्त है।

२९. न्याय-पंचायतों को साक्ष्य अधिनियम आदि में [illegible] में नही जकड़ा जाना चाहिए।

३०. यद्यपि अधिनियम लागू नहीं [illegible] मामलों में तीन वर्ष तथा फौजदारी में एक वर्ष की [illegible] चाहिए।

३१. [illegible]

३२. न्याय-पंचायत को गवाहों के संक्षिप्त बयान लिखने चाहिए और फैसले में कारण दर्ज रहने चाहिए।

३३. मुलजिम (अभियुक्त) की अनुपस्थिति में मुकद्दमा नहीं चलना चाहिए। यदि वह स्वयं उपस्थित न हो तो अदालत की मार्फत गिरफ्तार करके अभियुक्त को हाजिर करने का प्रवधान रहना चाहिए।

३४. न्याय-पचायतों में फीस आदि बहुत कम होनी चाहिए।

३५. वकील को न्याय-पंचायतों में पेश होने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।

३६. इजराए की दशा में न्याय-पंचायतों को चल-सम्पत्ति की कुर्की तथा उसके बेचने के अधिकार रहने चाहिए। इन उपायों से वसूली न होने पर इजराए कलेक्टर को हस्तान्तरित हो जानी चाहिए, जहां रकम माल या बाकी की तरह वसूल की जाय।

३७. न्याय-पंचायतों के रिकार्ड अच्छी तरह रखे जाने चाहिए और उनका समय-समय पर निरीक्षण होता रहना चाहिए।

३८. न्याय-पंचायतों के लेखन-सम्बन्धी कार्य के वास्ते एक सचिव रहना चाहिए। कार्य-भार के अनुसार एक-दो अथवा तीन न्याय-पंचायतों के लिए एक सचिव रखा जा सकता है। इनको पर्याप्त प्रशिक्षण दिया जाना आवश्यक है। यह दशमी कक्षा पास होने चाहिए।

३९. पंचायतों के सचिवों का एक पृथक केडर हर राज्य में कायम किया जा सकता है, जिसको किसी विभागीय केडर के साथ जोड़ा जा सकता है, जिसमें इनको तरक्की मिल सके।

४०. विशेष अधिकारी अथवा न्यायाधिकारी हाईकोर्ट की सलाह से नियुक्त किये जा सकते हैं, जो न्याय-पंचायत के कार्य का निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण करें।

४१. किसी अयोग्यता पर अथवा राजनैतिक दलों से सम्बन्ध पर अथवा साम्प्रदायिक दलों में सक्रिय भाग लेने पर पचों के निष्कासन के अथवा पंचायत के निरसन के अधिकार रहने चाहिए, परन्तु इनकी अपील का प्रावधान रहना चाहिए।

४२. न्याय-पंचायत के निर्णयों की अपील की कोई आवश्यकता नहीं।

४३. न्याय-पंचायतों के निर्णयों से निगरानी (रिवीजन) सुनने के अधिकार न्याय-सम्बन्धी अधिकारी के पास रहना चाहिए। इस अधिकारी को हस्तक्षेप के अधिकार उसी दशा में हों, जबकि उन्हें निर्णय के ठीक होने पर विश्वास न हो। यदि वास्तविक न्याय हो चुका हो, तो उसमें परिवर्तन नहीं होना चाहिए।

४४. एक न्याय-पंचायत से दूसरी अथवा न्याय-पंचायत से अदालत को वाद हस्तान्तरित करने प्रावधान रहना चाहिए, परन्तु ऐसे वादों में सरपंच को तलब नहीं करना चाहिए। रिपोर्ट मंगवाई जानी चाहिए।

४५. सीनियर न्याय अधिकारी द्वारा, दीवानी कार्रवाई को, अन्याय होने की दशा में, रद्द किये जाने के अधिकार रहने चाहिए। इस दशा में यदि प्रार्थना झूठी हो तो प्रार्थी पर खर्चा डाला जाना चाहिए।

४६. अदालतों को पंचायतों से वाद वापस लेने का अधिकार नहीं होना चाहिए, परन्तु न्याय-पंचायतों को यह अधिकार रहने चाहिए कि वह वाद अदालत को, वाद की कठिनाई के कारण, हस्तान्तरित कर सकें।

४७. न्याय-पंचायत की स्टेशनरी आदि की आवश्यकताएं पूर्ण की जानी चाहिए।

४८. पंचों को कोई वेतन नहीं मिलना चाहिए, परन्तु उनको असल खर्च मिलना चाहिए, जो उनको बैठक में हाजिर होने पर आये।

४९. न्याय-पंचायतों के पंचों को एक न्याय-अधिकारी की तरह मान तथा रक्षण प्राप्त होना चाहिए। इन्हें लोक-सेवक समझा जाना चाहिए। पुलिस तथा अन्य विभागों द्वारा इन्हें पूर्ण सहयोग प्राप्त रहना चाहिए।

५०. न्याय-पंचायतों द्वारा किये गए कार्य का संकलन तथा वितरण बहुत आवश्यक है।

५१. न्याय-पंचायतों को अपने कार्य में प्रोत्साहित करने के लिए इनामों आदि का क्रम जारी करना लाभप्रद होगा।

५२. समस्त राज्यों में न्याय-पंचायतों को एक नमूने पर ढालना उचित कार्य नहीं है।

इन सुझावों पर अब सब राज्य विचार कर रहे हैं। हम परिशिष्ट में न्याय-पंचायत-अधिनियम का एक मसविदा भी प्रस्तुत किया है।

: ८ :

लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण

१५ अगस्त १९४७ को जब भारत ने प्रभुसत्ता ग्रहण की और उसके भली प्रकार उपभोग हेतु २६ जनवरी १९५० को अपना संविधान ग्रहण किया तब भी सत्ता की चाबी केन्द्र तथा राज्य स्तर के प्रतिनिधियों तक ही पहुंची। सत्ता-प्राप्ति तथा लोकतन्त्र के फल राज्य-स्तर से नीचे गांवों तक न पहुंच सके।

प्रथम पंचवर्षीय योजना १९५१ में प्रारम्भ हुई। और जैसा कि संविधान में निर्दिष्ट था कि ग्राम-पंचायतें प्रशासन की इकाई के तौर पर संगठित होंगी, योजना में विकास-सम्बन्धी कार्यों के लिए पंचायतों को एजेन्सी स्वीकार किया गया और सिफारिश की गई कि इन्हें कानून के अधीन ऐसे कार्य सौंपे जायं। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी इस बात पर जोर दिया गया और यह भी कहा गया कि ये अपने बजट बनायें। ग्राम-स्तर की योजनाएं बनायें तथा समस्त सरकारी सहायता पंचायतों द्वारा ही ग्रामीण जनता तक पहुंचे। सामुदायिक विकास-कार्यक्रम में पंचायतों को पूरा-पूरा महत्व दिया और यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि पंचायतों को पुष्ट करने तथा उनका महत्व बढ़ाने का श्रेय सामुदायिक मन्त्रालय तथा सामुदायिक विभाग को है। इन दो योजनाओं के काल में पंचायतों की संख्या ८१,३७० से बढ़कर १,६४,३५८ हो गई और समय-समय पर सामुदायिक विकास के कार्य के मूल्यांकन से यह प्रकट होता रहा कि गो जनता विकास-कार्य में बड़ा सहयोग देती रही, परन्तु प्रेरणा का स्रोत जनता न बन सकी। यह कार्य सरकारी कर्मचारियों के पास ही रहा। ध्येय तो यह था कि यह कार्यक्रम जनता का कार्यक्रम बने और जनता से ही प्रेरणा प्राप्त करे।

श्री बलवन्तराय मेहता कमेटी की रिपोर्ट

राष्ट्रीय विकास-मण्डल ने विकास-कार्य की गतिविधि देखने के लिए एक प्लान प्रोजेक्ट्स नामक कमेटी ने सन् १९५७ में श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में सामुदायिक विकास-कार्य के मूल्यांकन के लिए एक अध्ययन-मण्डली की नियुक्ति की। इस मण्डली को अब आमतौर पर श्री बलवन्तराय मेहता कमेटी कहा जाता है। उक्त मण्डली की नियुक्ति सामुदायिक विकास-कार्यों में दक्षता तथा मितव्ययता लाना था। जो विवरणात्मक प्रश्नावली रखी गई, उसमें एक यह प्रश्न भी था कि इस कार्य में, उपरिलिखित उद्देश्य की पूर्ति हेतु, संगठनात्मक सुधार क्या होने चाहिए। इस मण्डली के अन्य भी बहुत सुझाव हैं, परन्तु लोकतन्त्री विकेन्द्रीकरण की तो मानो यह रिपोर्ट बाईबल बन गई है। इसका विस्तृत विवरण रिपोर्ट के अध्याय द्वितीय में है, जिसे संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है—

३ (२·८) सरकार को चाहिए कि विकास-सम्बन्धी कुछेक कार्यों में समस्त शक्ति ऐसी संस्थाओं को हस्तान्तरित कर दे, जिनके सुपुर्द उसके सीमाधिकार में विकास-कार्य किया जाय और अपने पास केवल सलाह, पर्यवेक्षण तथा उच्चस्तरीय योजना-निर्माण कार्य रखे।

४ (२·१२) विकास-खण्ड के स्तर पर विकास-खण्ड की सीमा के अन्तर्गत एक निर्वाचित स्वशासित संस्था का निर्माण किया जाय, जिसका नाम पंचायत-समिति हो।

५ (२·१५) पंचायत-समिति का निर्माण ग्राम-पंचायतों से अप्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा हो।

६ (२·१६) विकास-खण्ड में पड़नेवाली नगरपालिका अपने सदस्यों में से एक प्रतिनिधि को पंचायत-समिति में भेजे। शासन को अधिकार रहे कि ग्राम-प्रधान नगरपालिकाओं को पंचायतों में बदल दे।

७ (२·१७, २·१८) जहां स्थानीय परिस्थितियां ऐसी मांग करें, १० प्रतिशत प्रतिनिधि सहकारी संस्थाओं से, चुनाव अथवा मनोनीतिकरण द्वारा लिये जायं। पंचायत-समिति का कार्यकाल पांच वर्ष होना चाहिए।

८ (२·१९, २·२०) पंचायत-समिति के कार्यों में कृषि के सब पहलू, पशु-विकास, स्थानीय उद्योगों का विकास, जन-स्वास्थ्य, कल्याणकारी

प्रारम्भिक शिक्षा का प्रशासन तथा आंकड़ों का संग्रह, इत्यादि समाविष्ट रहेंगे। यह समिति विकास के समस्त कार्य करने के लिए शासन की एजेन्ट होगी। शेष कार्य अनुभव होने पर धीरे-धीरे दिये जायंगे।

९ (२·२१) समिति के आय के साधन यूं हो सकते हैं—

१. सीमा-अधिकार से भूराजस्व का कुछ भाग
२. भूराजस्व पर अधिशुल्क तथा लोकल रेट
३. व्यवसाय-कर
४. अचल सम्पत्ति के हस्तान्तरण पर शुल्क
५. अपनी अचल सम्पत्ति का किराया
६. पट्टों तथा किरायों द्वारा आय
७. यात्री-कर, मनोरंजन-कर, प्रारम्भिक शिक्षा शुल्क, मेला-कर तथा हाट-कर।
८. मोटर-कर का भाग
९. दान
१०. शासन द्वारा अनुदान

१० (२·२१) राज्य सरकारों को चाहिए कि इन समितियों को प्रतिबन्ध-सहित अथवा प्रतिबन्ध बिना उनकी आवश्यकताओं को देखते हुए अनुमान दे।

११ (२·२२) केन्द्रीय तथा राजकीय धनराशि, जो विकास-खण्ड में विकास-कार्यों पर व्यय होनी हो, वह इसी कार्य के लिए समिति को दी जानी चाहिए।

१२ (२·२५) समिति के तकनीकी कर्मचारी सम्बन्धित जिला-अधिकारियों के तकनीकी नियन्त्रण में रहने चाहिए, परन्तु उनपर प्रशासनिक तथा कार्य-नियन्त्रण मुख्य प्रशासनिक अधिकारी का रहना चाहिए।

१३ (२·२५) समिति का वार्षिक बजट जिला-परिषद् द्वारा अनुमोदित होना चाहिए।

१४ (२·२६) जनहित हेतु पंचायत-समितियों के पर्यवेक्षण के अधिकार शासन के पास ही रहने चाहिए।

१५ (२·२८) साधारणतया पंचायतों का निर्माण निर्वाचन द्वारा होना चाहिए, केवल दो महिलाओं तथा एक-एक अनुसूचित व आदिम जाति सदस्यों की नियुक्ति का प्रावधान रहेगा।

१६ (२·२९) ग्राम-पंचायतों के प्रमुख आय के साधन, गृह-कर, मण्डी-कर, वाहन-कर, चुंगी, प्रदेश-कर, सफाई-कर, जल तथा बिजली शुल्क, कांजी हाऊस द्वारा आय, पंचायत-समितियों द्वारा अनुदान तथा अन्य शुल्क इत्यादि होंगे।

१७ (२·३०) ग्राम-पंचायतों को कमीशन पर भूराजस्व संग्रह का कार्य भी दिया जा सकता है।

१८ (२·३०) भूराजस्व का जो भाग पंचायत-समिति को मिले, उसका तीन-चौथाई तक ग्राम-पंचायत को मिलना चाहिए।

१९ (२·३१) पंचायतों द्वारा स्थानीय साधनों से प्राप्त आय, जो आज तक चौकीदारों आदि पर खर्च होती है, विकास-कार्यों पर खर्च होनी चाहिए।

२० (२·३२) अधिनियम में ऐसा विधान होना चाहिए कि जिस व्यक्ति ने गत वर्ष कर न दिये हों, वह मताधिकार से वंचित हो जाय।

२१ (२·३३) ग्राम-पंचायतों के बजट पंचायत-समितियों द्वारा पड़ताल किये जाकर अनुमोदित होंगे।

२२ (२·३४) ग्राम-पंचायतों के निम्नलिखित आवश्यक कर्तव्य होने चाहिए—

१. पीने के पानी की व्यवस्था
२. स्थानीय स्वास्थ्यवर्धक सफाई आदि कार्य
३. प्रकाश की व्यवस्था
४. सड़कों का प्रबन्ध
५. भूमि-व्यवस्था
६. आंकड़ों का संग्रह
७. मवेशियों का संरक्षण, तथा
८. पिछड़ी जातियों का कल्याण

२३ (२·३७) न्याय-पंचायत का अधिकार-क्षेत्र [illegible]

से भी बड़ा होना चाहिए और पंचों की नियुक्ति ग्राम-पंचायत द्वारा प्रस्तावित सूची में से सब-डिविजनल अथवा जिलाधीश द्वारा निर्दिष्ट संख्या में मनोनयन द्वारा होनी चाहिए।

२४. (२·३८) पंचायत-समितियों में तालमेल रखने के लक्ष्य से जिला-परिषद् का निर्माण समितियों के प्रधानों, क्षेत्रीय विधान-सभा-सदस्यों, तथा संसद-सदस्यों द्वारा होना चाहिए। इसमें जिला-स्तरीय अधिकारी भी रहने चाहिए और जिलाधीश इसका अध्यक्ष होना चाहिए।

२५. (२·४६) लोकतन्त्रीय विकेन्द्रीकरण के प्रयोग की सफलता के लिए आवश्यक है कि तीनों स्तरों की संस्थाएं अर्थात् ग्राम-पंचायत, पंचायत-समिति तथा जिला-परिषद् का निर्माण तथा संचालन एक ही समय में होना जरूरी है।

२६. (२·४७) निर्वाचित सदस्यों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी बहुत जरूरी होगा।

उक्त कमेटी ने इस बात का भी जिक्र किया है कि कई राज्यों का प्रस्ताव था कि अधिक सत्ता जिला-परिषद् में होनी चाहिए। परन्तु कमेटी की राय में जिला-स्तरीय अधिकार परिषद् को होने पर भी इकाई विकास-खण्ड को ही समझना चाहिए और उसके द्वारा काम होना चाहिए। सीधे तौर पर परिषद् वहीं काम करें, जहां पंचायत-समितियां न हों।

अर्थशास्त्री, डा० ई. एफ. शूमाखर ने भी, जो इंगलैण्ड में कोयला बोर्ड के आर्थिक सलाहकार थे और जिन्होंने गांधीवादी अर्थशास्त्र का गहरा अध्ययन किया है, तृतीय पंचवर्षीय योजना, स्वावलम्बन, लघु उद्योगों का विकास साधारण जनता के लिए निम्नतम गुजारा-प्राप्ति की समस्याओं का अध्ययन करते हुए लिखा है कि भारत के उपयुक्त विकास के लिए योजना की इकाई जिला होनी चाहिए, जिसकी लगभग २० लाख आबादी हो। और इस तरह भारत १०० से ३०० ऐसे जिलों का संघ होगा और योजना का विकास जिला-स्तर की स्वावलम्बन की भावनाओं से होगा। यहीं योजना का प्रधान रूप से निर्माण होगा और यहीं उसे पूरा किया जायगा।

प्रधान पदात् सदस्य होता है। प्रसाराधिकारी भी बैठकों में शामिल होकर विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। जिला-परिषद् का निर्माण पंचायत-समितियों के प्रधानों, स्थानीय लोक-सभा तथा विधान-सभा-सदस्यों, प्रधान केन्द्रीय सहकारी अधिकोष द्वारा होता हैं। जिलाधीश पदात् सदस्य होता है। जिला-स्तरीय अधिकारी मताधिकार बिना विचार-आदान-प्रदान में भाग ले सकते हैं। जिलाधीश भिन्न-भिन्न स्तरों की पंचायतों में तालमेल रखता है तथा उनके सुचारु संचालन में सहायता देता है।

इसके पश्चात् ११ अक्तूबर, १९५९ को प्रधान मन्त्री ने आन्ध्र प्रदेश में तृस्तरीय पंचायत-राज का उद्घाटन किया। वहां भी क्रम लगभग इसी प्रकार का है। पंजाब ने इसी प्रकार का क्रम १९६१ में जारी किया है। मद्रास, महाराष्ट्र, मैसूर, उड़ीसा, तथा पंजाब में अधिनियम पारित हो चुके है। उत्तर प्रदेश ने इसी प्रकार के अधिनियम का मसविदा तैयार कर लिया है। पंचायतों की जो वर्तमान शैली विभिन्न प्रदेशों में चल रही है, उसका विवरण पिछले अध्याय में दिया जा चुका है। इस तृस्तरीय पंचायती राज की स्थापना से महात्मा गांधी के विचारानुकूल मीनारात्मक शासन-पद्धत्ति का निर्माण हो रहा है। अब ग्राम-पंचायत का सजीव सम्बन्ध खण्ड-विकास-समितियों तथा जिला-परिषदों द्वारा विधान-सभाओं तथा संसद से हो रहा है। विधान-सभा तथा संसद-सदस्यों के इन संस्थाओं में आने से यह सम्बन्ध और भी सजीव करने का प्रयत्न किया गया है। योजना के निर्माण तथा उसे पूरा करने में जनता का सीधा तथा प्रभावपूर्ण हाथ होने से योजना पूर्ण रूपेण जनता की योजना बन गई है। नौकरशाही पृथक् ढांचा न रहकर जनता का अंग बन गई है और इससे ग्राम तथा ग्रामीण जनता पूर्ण राष्ट्रीयता की भावना से पुष्ट होकर देश को पुष्ट कर रही है। पंचायती प्रथा के सम्बन्ध में जो यह भ्रान्त धारणा थी कि इससे राष्ट्रीयता निर्बल होती है, उसका अब निराकरण हो रहा है। इस पद्धति के विकास द्वारा ज्यों-ज्यों ग्राम-विकास-खण्ड तथा जिले स्वावलम्बन और उन्नति की ओर अग्रसर होंगे और कृषि-उत्पादन के साथ-साथ कुटीर तथा लघु उद्योग

: ९ :

सर्वोदय और पंचायतें

सर्वोदय शब्द का वर्तमान अर्थों तथा पद्धति के रूप में जन्म सन् १९०४ में तब हुआ जब महात्मा गांधी ने रस्किन की पुस्तक "अन टू दी लास्ट' पढ़कर वास्तविक प्रजातन्त्र के लिए 'बहुतों के बहुत भले' के स्थान 'सबके बहुत भले' का घोष देकर एक नई विचारधारा को विश्व के सामने रखा। प्रजातन्त्र के प्रागैतिहासिक स्वर्ण युग की बातें तो अधिकतर अनुमान तथा कथानक मात्र ही रह गये हैं। हमारे युग के जाने तथा माने हुए इतिहास में तो सर्वप्रथम लोकतन्त्री क्रान्ति फ्रान्स की क्रान्ति ही है, जब लुई १४वें के विलास तथा आतंक के विरुद्ध निरीह, निस्सहाय, तथा निर्बल समझी जानेवाली जनता एक खूंखार सिंह की तरह जाग उठी थी। विलासियों के लहू से फ्रान्स की भूमि रंजित हो गई थी। जनता-न्यायालय कायम करके शोषक समुदाय को सूली चढ़ाकर मानव-समुदाय को 'बराबरी, भाईचारे, तथा स्वतन्त्रता' का घोष दिया गया था। परन्तु कुछ ही वर्ष बीते कि सम्राटों ने इस घोष को अपना लिया। फ्रान्स का गणतन्त्र कई बार गिरा और आखिर एक ऐसी शासन-शैली बनकर रह गया, जहां कर्मचारी वर्ग की सत्ता बढ़ी। आर्थिक शोषण जारी रहा और जिसने मानवीय भाईचारे के सिद्धान्त को स्वयं ठुकराकर अपना साम्राज्य बढ़ाया। अल्पविकसित राज्यों को हथियाकर उनका आर्थिक शोषण किया।

उधर नई दुनिया अर्थात् अमरीका में स्वतन्त्रता-संग्राम चल रहा था। उसके विजेता श्री अब्राहम लिंकन ने लोकतन्त्री पद्धति को नया घोष 'जनता का राज्य, जनता द्वारा और जनता के लिए' दिया।

जहां पूर्व घोष के अधीन संसद् की सत्ता अधिक थी और फ्रांस का

शक्तिशाली होना स्वाभाविक था। कुछ ऐसे ही प्रभावों के अधीन उन्होंने 'सर्वोदय' की विचारधारा को सूत्र-रूप में विश्व-समाज के समक्ष रखा और उसकी भारतीय रूप-रेखा 'हिन्द-स्वराज' पुस्तिका में १९१२ में लिख दी।

धीरे-धीरे सर्वोदय-विचारधारा का एक स्वरूप व्यक्त और स्पष्ट होने लगा। इस विचारधारा के अधीन आर्थिक तन्त्र कैसा होगा, उद्योग का क्या स्वरूप होगा, शिक्षा कैसी होगी, शासन-पद्धति क्या होगी, आदि विषयों पर विचार होने लगा, साहित्य लिखा जाने लगा और महात्मा गांधी के निधन के बाद आचार्य विनोबा ने साम्य-सूत्र एवं अन्य साहित्य की रचना करके तथा अपने भूदान, सम्पत्ति-दान, ग्राम-दान एवं शान्ति-सेना आदि के विभिन्न अभियानों से सर्वोदय का स्वरूप और स्पष्ट तथा व्यक्त किया।

बराबरी, भाईचारा के घोष को पूर्ण रूप से चरितार्थ करने के लिए इसने मानव-समाज को नया घोष दिया—सबका भला तथा सबका विकास। जैसे बीमार का भला उसे कड़वी औषध तथा अंग काटने तक में होता है, इसी प्रकार सर्वोदय में यदि कोई अमीर अथवा धनवान अपनी सम्पत्ति गरीबों को देने के लिए आवाहन करता है, तो यह गरीब का नहीं अमीर का भला है; वरना कल वही अमीर या तो स्वयं नाश करनेवाले कुटेवों में पड़ सकता है अथवा इस विषमता द्वारा उत्पन्न समाज-विरोधी चोर-समुदाय उसका धन हरण कर सकता है। परन्तु जिस तरह बीमार के इलाज के पीछे स्नेह होता है, उसके लिए हिंसात्मक उपायों का अभाव रहता है, और अन्ततः उसे स्वस्थ करने की भावना रहती है, इसी प्रकार समाज में सर्वोदयी विचारधारा के अनुसार कार्य होता है।

यह सब किस क्षेत्र में और कैसे हो? लड़ाई की अवस्था में इसका क्या स्वरूप हो, आदि ऐसे विषय हैं, जिनका इस पुस्तक में वर्णन सम्भव नहीं। यहां केवल इसी प्रश्न पर विचार करना जरूरी है कि पंचायत-प्रणाली का इसके साथ क्या सम्बन्ध है?

हम यह देख चुके हैं कि सबके भले के ध्येय की उपलब्धि के लिए स्नेह की भावना की बड़ी आवश्यकता है और स्नेह के पनपने के लिए

मौलिक इकाई ग्राम-पंचायत ही होगी, न कि कोई बीच का स्तर। इसका आधिक ढांचा बनेगा वास्तविक सहकारिता के आधार पर, जहां धनिक स्वेच्छया अपनी आय पर अंकुश लगाकर निर्धनों के सहायक बनेंगे, उद्योग जहां उत्पादक तथा श्रम जुटाने के लिए विकेन्द्रित होगा।

इन कतिपय शब्दों से स्पष्ट है कि पंचायती राज तथा सर्वोदय का पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा है जैसा कि सिद्धान्त का आचरण से होता है। सर्वोदय एक सिद्धान्त है और पंचायत-राज उसको चरितार्थ अथवा क्रियान्वित करने का एक क्रम।

यही कारण है कि सर्वोदयी विचारक पंचायतों को वास्तविक सत्ता तथा स्वरूप प्रदान के कार्य में जुटे हुए हैं। देश के प्रसिद्ध सर्वोदयी विचारक श्री जयप्रकाशनारायण ने इस विषय में अपना प्रसिद्ध निबन्ध प्रस्तुत किया है। इन निबन्ध का नाम है 'ए प्ली फार रिकंस्ट्रक्शन ऑफ इंडियन पॉलिटी'। उनका कथन है कि ग्राम-पंचायतें तो वयस्क-मताधिकार द्वारा बनें, परन्तु पंचायत-समिति का चुनाव ग्राम-पंचायतों द्वारा हो, उनके सदस्यों द्वारा। जिला-परिषद् का निर्माण पंचायत-समितियां करें, जिला-परिषदें राज्य विधान-सभा का निर्वाचन करें और राज्य-विधान-सभाएं लोक-सभा का निर्माण करें।

जयप्रकाशजी की यह योजना सर्वोदय के सिद्धान्तों को चरितार्थ करने के लिए ही प्रस्तुत की गई है। यह प्रस्ताव अभी जनता तथा विचारकों के समक्ष है। रूपात्मक लोकतन्त्र हमारे सामने है और उसका बल भी। पंचायती राज का एक प्रयोग चल भी रहा है और सन् १९६३ तक सारे देश में वह प्रयोग चला जायगा। अब यह समय ही बतायेगा कि भारतीय सर्वोदयी लोकतन्त्र का अन्तिम स्वरूप क्या होगा।

न वै राज्यं न राजासीन्न दण्डो न च दाण्डिकाः।
धर्मेणैव प्रजा सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्॥

यूनान की छोटी-छोटी नागरिक इकाइयां भी कुछ ऐसे ही काल की ओर संकेत करती हैं। परन्तु यह सब छोटी-छोटी इकाइयों में ही सम्भव था। ज्यों-ज्यों समाज का विस्तार हुआ, परिस्थितियों में भेद पड़ता चला गया। ग्रामों, मीरों, कम्यूनों, तीपाओं आदि के छोटे-छोटे गणतन्त्र भंग हुए और वर्तमान कल्पना के राज्य स्थापित होने लगे। युद्ध, अत्याचार तथा सामाजिक अन्याय ने मानव की आत्मा को क्षुब्ध किया और ऐसे सामाजिक रोगों के उपचार की तलाश भी शुरू हुई। धार्मिक नेताओं ने अध्यात्मिकता पर जोर दिया, जैसा कि विभिन्न मतों के प्रवर्तकों के विचारों से प्रकट है। व्यक्तियों की अनेकता के पीछे जीवात्मा की एकता पर उन्होंने जोर दिया और 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्' का पाठ पढ़ाया। परन्तु जहां इन घुमक्कड़ कबीलों ने सम्राट् तथा बादशाहों की सृष्टि करके इन छोटे-छोटे ग्रामीण संगठनों को भंग किया, वहां इसी सत्ता का आध्यात्मिक विरोध करनेवाले सन्तों पर भी घोर अत्याचार किये। ईसा को सूली मिली। तबरेज की खाल उतारी गई। मंसूर फांसी पर लटका। राजनैतिक क्षेत्र में भारत ने अराजक राज्य, गणराज्य, विरुद्ध राज्य, चक्रवर्ती राज्य, द्वैराज्य तथा वैराज्य आदि के प्रयोग किये। पश्चिमी जगत् ने संसदीय लोकतन्त्र का अन्वेषण किया। कहीं-कहीं तानाशाही के क्रमों का भी परीक्षण किया गया। नई-नई पद्धतियां जगत् के सामने आईं। और जीव तथा शरीर की धारणाओं का सामंजस्य प्रदर्शन करते हुए जहां महाभारत ने 'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' का घोष दिया, वहां इसीका मानो अनुवाद करते हुए मौलाना हाली ने कहा—

फरिश्ते से बेहतर है इन्सान बनना,
मगर इसमें पड़ती है मेहनत ज्यादा।

परन्तु समय के बीतने के साथ-साथ विज्ञान के अन्वेषण, संचार के द्रुतगामी साधनों को जुटा रहे थे। रेल, मोटर, हवाई जहाज, तार, टेलीफोन ने विश्व की दूरियों को पाट दिया। एक भाग के दूसरे भाग से सम्पर्क बने। युद्धों के कारण बदले। धार्मिक विचार अधिक उदार हुए। स्वामी

प्रयोग यदि पूर्ण शोध के पश्चात् न किया जाय तो उसमें की प्रारम्भिक भूलें सारे प्रयोग को असफल भी कर सकती हैं। आखिर सफल पंचायतों के युग में ही तो भारत परतन्त्र हुआ था। पंचायत-राज का आज कोई क्रम किसी देश या देश-भाग में तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक यह तन्त्र इस आशा तथा प्रण के साथ प्रस्तुत न हो कि वह विश्व के लिए आज के समस्त राज-तन्त्रों से अधिक उपादेय तथा उपयुक्त है। आज के वैज्ञानिक युग में, जबकि विश्व का एक भाग दूसरे के बहुत निकट आ चुका है, कोई पद्धति किसी स्थान-विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती। न ही पंचायत-राज पद्धति को साधारण 'स्थानिक स्वराज्य' अर्थात् लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट का पर्यायवाची समझा जा सकता है। पंचायती लोकतन्त्र में तो वस्तुतः लोकतन्त्र का वैज्ञानिक स्वरूप विकसित हो रहा है। परन्तु इसकी सफलता के लिए आवश्यक है कि हम इससे सम्बन्धित सब प्रश्नों पर पूरी-पूरी शोध करें। कुछ प्रश्न जो अभी उपस्थित हो चुके हैं, इस प्रकार हैं—

१. पंचायत-राज में विधान-सभाओं तथा संसद् का निर्माण कैसे हो ?

२. उद्योगों का संगठन किस प्रकार हो ?

३. विभिन्न प्रकार तथा विभिन्न श्रेणियों के राष्ट्रीय, राज्यीय तथा स्थानीय कर्मचारी-वर्ग का संगठन किस प्रकार हो ?

४. पंचायत-राज के संगठन में राष्ट्रीय भावनाओं का किस प्रकार तथा किस मात्रा में पोषण हो ?

५. कानून बनाने की प्रथा क्या हो ?

६. आर्थिक तन्त्र तथा कर-पद्धति क्या हो ?

७. भूमि-प्रबन्ध किस प्रकार हो ?

८. राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध किस प्रकार निर्धारित हों ? आदि-आदि।

मानव-समाज पहले परिवार तथा ग्राम में संगठित हुआ। जब आगे बढ़ा तो ये प्रारम्भिक संगठन टूटने लगे। परन्तु भारत के स्वतन्त्रता-संग्राम तथा महात्मा गांधी ने उस लोकतन्त्री विकास के सूत्र को वहां से पकड़ा, जहां से वह अवरुद्ध होकर भटक गया था और ग्रामों पर आधारित

संदर्भ-ग्रंथ-सूची

अथर्ववेद
आपस्तंब गृह्य सूत्र
आईन-ए-अकबरी
इम्पीरियल गज़ेटियर
ऋग्वेद
ए प्ली फॉर रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ इंडियन पोलिटी
कर-जांच-समिति-रिपोर्ट
कैपिटल —कार्ल मार्क्स
कौटिल्य अर्थशास्त्र
न्यू ह्यूमैनिज्म —एम. एन. राय
प्रथम पंचवर्षीय योजना
बलवन्तराय मेहता-कमेटी की रिपोर्ट
बृहदारण्यक उपनिषद्
भागवत महापुराण
भारतीय इतिहास —हैवेल
भारतीय इतिहास —विन्सेन्ट स्मिथ
भारतीय इतिहास —वाजपेयी
भारतीय इतिहास —आल्तेकर
महाभारत
महात्मा —तेंदुलकर
मुग़लकालीन इतिहास —श्रीराम शर्मा
म्यूचुअल एड —प्रिन्स क्रोपाटकिन
रामायण